विज्ञापन ।

हमने चिरकालसे परमात्माकी उपासनासे जो फल प्राप्त किया है अर्थात् जगत्मध्यमें जिन समस्त पदार्थोंका दर्शन किया है, एवं जिस प्रकार उपासना द्वारा हमको दर्शनादि हुआ है वह सब इस सप्तर्षि ग्रन्थमें सविस्तर लिखा है । इस ग्रन्थको बंगला, हिन्दी अङ्गरेजी, इन तीन भाषाओंमें मुद्रण करानेके लिये बहुसङ्ख्यक रुपया खर्चकर हमने कायिक और मानसिक परिश्रम उठाया है । हमारा मुख्य उद्देश्य यही है कि मनुष्य देह पाकर प्रत्येक मनुष्यको ईश्वरकी आज्ञा जो कि, वेद शास्त्र पुराणादिमें सविस्तर कर्तव्यपरायण होकर नित्य सुख प्राप्त करनेके लिये निर्दिष्ट हुई है उसको बहुत कम लोग कर्तव्यमें लाते हैं । यद्यपि कोई भाग्यवान् पुरुष वेदादिशास्त्रोंमें विहित आज्ञाओंके अनुसार चलै भी तो उसको आयुष्यभरमें भी कठिनतासे आत्मज्ञानका लाभ होसके आजकलके लोगोंके बल, बुद्धि, पराक्रम आदिका विचार करके और ब्राह्मणादि वर्णोंको सरलतासे आत्मबोध होनेके लिये भगवान् ओङ्कारकी उपासनासे प्राप्त हुए सरल मार्गसे लब्ध आत्मज्ञान हमने इस ग्रन्थमें यथावस्थित लिखा है । हमैं आशा है कि इसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य शुद्ध हृदय होकर अपने अपने संकल्पको पूर्ण करसकेगा ।

परमहंस श्यामाप्रसन्नदेव ।

भूमिका ।

किसी समय एक शिष्यने अपने गुरु किसी ऋषिसे जिज्ञासा की कि "कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" ? अर्थात् हे भगवन् ! किसके जाननेसे यह सब प्रपञ्च जाना जा सकता है ? ऋषिने उत्तर दिया था कि–"द्वे विद्ये

वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च" तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तञ्छन्दो ज्यौतिषमिति, अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते" अर्थात् ब्रह्मविद् कहगये हैं कि विद्या दो प्रकारकी हैं जिन्हें अवश्य जानना चाहिये। परा विद्या और अपरा विद्या। उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण; निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इसका नाम अपरा वा निकृष्ट विद्या है। और जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म जाना जाय उसको परा अथवा उत्कृष्ट विद्या कहते हैं। इन्ही दो प्रकारकी विद्याओंको भली भांति विचार करके हम (आत्मा) ने शरीरत्रययुक्त होकर बाल्यावस्थाके शेष और युवावस्थाके आरम्भमें इस संसारमें बहुत रोज परमात्माका अनुसन्धान अर्थात् परमात्माकी उपासना करके जगत्के बीच समस्त पदार्थ अर्थात् सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रोंके ऊपर बहुत प्रकारके आश्चर्ययुक्त पदार्थ अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष करके अत्यन्त आनन्द मग्न होकर मनही मन विचार किया कि वह सब अद्भुत पदार्थ संसारके समस्त मनुष्योंको दर्शन करावेंगे। यह संकल्प स्थिर करके बङ्गभाषामें कईएक ग्रन्थ (धर्मतत्त्ववारिधि, जीवेर मुक्तितत्त्व, बंगेर मानवचरित्र) प्रणयन करके वंगदेशमें प्रचार किया। एवं भारतवर्षमें अनेक देशदेशान्तर भ्रमण करने लगे और नानाजातीय मनुष्य और नानाप्रकारके सम्प्रदाय (हिन्दु, बौद्ध, यहूदी, खिष्ट, मुसल्मान, जैन, शिख इत्यादि) को मौखिक उपदेश करने लगे। परन्तु बहुत परिश्रम करके भी कृतकार्य न हुए। क्योंकि इस भारतवर्षमें मनुष्यगण अधिकांश ब्रह्म

चारी गृहस्थ, वानप्रस्थ धर्मावलम्बी मिले, किन्तु सन्न्यासी तो अतिदुर्लभ होगये । क्योंकि वानप्रस्थ धर्मतक ही पालन जब कठिन होगया तो सन्न्यास आश्रमकी कौन बात । सुतरां तत्त्व उपदेश ग्रहणकरनेमें अधिकांश मनुष्य असमर्थ हैं । इसवास्ते इस कार्यमें पारदर्शी होकर भी हम सफलमनोरथ नहीं होसके । पश्चात् विचार किया कि हमारे वेद, वेदान्त शास्त्रादि अति कठिन निबन्ध हैं । गृहस्थाश्रममें पण्डित महोदयगण वेदके तत्त्व जाननेमें जब असमर्थ हैं तब साधारण जनोंकी क्या बात । इसी लिये अति सरल भाषामें पंडित महाशयोंकी सहायतासे सप्तर्षिनामक यह ग्रन्थ वेदका सार मर्म अर्थात् ओंकारको किस प्रकार ऋषिगणने प्राप्त किया, एवं इस ओंकारशब्दसे ऋषिगणने किस प्रकार ब्रह्मज्ञान लाभ किया है और परमात्माका इस जगतकी उत्पत्ति का कारण तथा किस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई और निर्विकल्प परमात्माकी इच्छा क्यों कर इसके निर्माणमें उद्युक्त हुई, तीन गुणोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, जीवसृष्टि आदि आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध, द्वैताद्वैत विचार और मीमांसा, "तत्त्वमसि" आदि ब्रह्मवाक्यों की व्युत्पत्ति, जगत्तत्व ब्रह्मनिरूपण, मानवशरीरत्रयका कार्य पञ्चकोश आदिका वर्णन, आत्मा और अनात्माका विचार और मीमांसा, गृहस्थाश्रममें मनुष्योंके विवाहादि, वर्णाश्रम जातिभेद, जीवात्माकी मुक्ति अमुक्तिका विचार, देहके नाश होनेपर आत्माकी अवस्था अर्थात् मुक्त अमुक्तका विचार एवं श्राद्धादिकक्रियाका तात्पर्य, दानादिफल, परोपकारके लाभ, गृहस्थाश्रममें शान्ति और अशान्तिका कारण, मुक्ति किसको कहते हैं उसकी क्या आवश्यकता है ?

विकार निर्विकार वर्णन इत्यादि अर्थात् जीवात्माको जन्मसे मृत्युपर्यन्त जो कुछ कार्यकी आवश्यकता है वह समस्त अतिसरलभाषामें इस ग्रन्थमें लिखा गया है । स्वर्ग और नरक किसका नाम, मुक्तिका कार्य क्या है ? स्वर्ग भोगादि-का सुख, धातु और रत्नादिकी उत्पत्ति, परमात्माके निर्गुण और सगुण होनेका समय, परमात्मा सदा सगुण और सर्वदा निर्गुण है, चारों युगोंकी अवस्था, ओङ्कारका विराट् स्वरूप अर्थात् जगत्की स्वरूपवर्णना इत्यादि बहुत प्रकारसे अति संक्षेपमें इस ग्रन्थमें लिखा गया है । स्वायम्भुव मनु प्रश्नकर्ता हैं और सप्तऋषि द्वारा प्रश्नोंकी मीमांसा हुई है । एवं जयन्ती दासी प्रश्नकर्त्री और महारानी शतरूपा देवी उन प्रश्नोंकी मीमांसाकर्त्री हैं । इन प्रश्नोत्तरोंके सम्बन्धमें शास्त्रोंके कठिन कठिन मर्मों अर्थात् आध्यात्मिक भावार्थ द्वारा मीमांसा हुई है विज्ञान शास्त्र भी कहीं कहीं चर्चामें आया है । मूल बात यह कि मनुष्यगणोंके दो कार्य हैं । पहला गृहस्थाश्रम दूसरी मुक्ति । इन उभयसम्बन्धी कार्योंके विषयमें इस सप्तर्षि ग्रन्थमें पूर्ण विचार है जो मनुष्य इस ग्रन्थके मर्मोंको जानकर कार्य करेंगे वे सुख स्वच्छन्दतासे संसारयात्रा निर्वाह करके अन्तमें भयावह इस भवयन्त्रणासे छुटकारा पा सकेंगे ।

ग्रन्थकार.

ग्रन्थकारका आशीर्वाद ।

हिन्दुकुलतिलक, धर्मप्राण, कुशवंशोद्भव, निर्मल पवित्र गङ्गाजल, राजाधिराज जयपुराधिपति महाराज श्रीमाधव-सिंह बहादुर महोदयको आशीर्वाद करते हैं कि महाराज चिरजीवी होकर इसी प्रकार पुत्र पौत्रादि क्रमसे निर्विघ्न अपना राज्य शासन संरक्षण करके परमानन्दसे उत्तरोत्तर हिन्दुधर्म संरक्षण करते रहें ।

राजप्रतिनिधिस्वरूप धर्म प्राण ख्वाजी श्रील श्रीयुक्त बाला-बकस् रायबहादुर महाशयके साहाय्यसे मेरा यह सप्तर्षिग्रन्थ बङ्गला, हिन्दी, अङ्गरेजी भाषाओंमें मुद्रित होकर भारतवर्ष और योरुपखण्डमें ब्रह्मविद्या और सनातन धर्मादि प्रचारार्थ प्रस्तुत हुआ; इसलिये आपको सहर्ष अनेक आशीर्वाद हैं। ईश्वर आपको चिरंजीवी करके इसी प्रकार वंशानुक्रमसे धार्मिक कार्योंमें उन्नति कराते रहें । ॐ तत्सत् ।

भूमिका ।

विदित हो कि स्वामी परमहंस श्यामाप्रसन्नदेवजी एक बङ्गदेशीय महात्मा हैं । इन्होंने योगविद्यासे आत्मानुभव द्वारा इस असार संसारके सकल पदार्थोंका तत्त्व जानकर जगत्के मायाजालमें फँसेहुए गृहस्थ व संन्यासी सर्वसाधारणके लिये परम कृपाके साथ भरतखण्डमें पर्यटन करके अनेक बड़े बड़े योगी महात्माओंके साथ अपने अनुभवकी एकवाक्यता करके बड़े परिश्रमके साथ "सप्तर्षि" नामक एक ग्रन्थ सरल हिन्दीभाषामें निर्माण किया है । उसमें आपने अपने प्रत्यक्ष अनुभवको सप्त ऋषियोंका अनुभव कहकर वर्णन किया है ।

इसमें निम्नलिखित विषयोंकी मीमांसा है:-

आत्मा और परमात्माका विचार । आत्मा किस समय निर्गुण और किस समय सगुण रहता है । परमात्माका इस जगत्को व इस जगत्में वृक्ष लता आदि स्थावर तथा मनुष्य आदि जंगम पदार्थोंको उत्पन्न करनेका उद्देश्य क्या है ? एवं उसने किस प्रकार सृष्टि की । सप्त-ऋषि गणको अपनी बुद्धि शक्ति द्वारा कैसे आत्मज्ञान लाभ हुआ तथा प्राणायाम व योगादिसे उन्होंने किस प्रकार युक्तिपूर्वक कार्य किया । गार्हस्थ्यधर्ममें रहकर भी मनुष्य किस प्रकार मुक्तिलाभ करसक्ते हैं । ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमोंका मर्म अर्थात्

जन्मसे मृत्यु पर्यन्त मनुष्यका क्या कर्तव्य है। स्वायंभुव मनुके कठिन कठिन प्रश्नोंको ऋषियोंने किस प्रकार उत्तर देकर समझाया। ज्ञान विज्ञानमें क्या भेद है। उपासना द्वारा मुक्तिलाभ कैसे होसक्ता है। गायत्री त्रिकालसंध्या मन्त्र आदि कैसे बने। वेदका आविर्भाव किस प्रकार हुआ। देवादि सम्बन्धी भक्तियोग कब और किस प्रकार प्रवृत्त हुआ। विवाहादि किस रीतिसे होना उचित है और श्राद्धादि क्रियाका क्या तात्पर्य है?

इन सब विषयोंकी इस ग्रन्थमें पूर्णरीत्या विचारपूर्वक मीमांसा की है। इस ग्रन्थके पढ़नेसे क्या क्या लाभ होगा यह वर्णन नहीं किया जासक्ता है, केवल इसको पढ़नेसे और इसके अनुसार आचरण करनेसे मालूम होगा।

इस ग्रन्थके पहिले स्वामीजीने और भी दो ग्रन्थ बङ्गभाषामें लिखे हैं जिनके नाम 'धर्मतत्त्व वारिधि' और 'जीवेर मुक्तितत्त्व' है।

श्रीमन्महाराजाधिराज जयपुराधिपति करनल मेजर जनरल सर श्री १०८ सवाई माधवसिंहजी बहादुर जी. सी. एस. आई. जी. सी. आई. ई. जी. सी. व्ही. ओ. एल्. एल्. डी. जिन्होंने वर्तमान कालमें श्रीगङ्गाजीके सतत प्रवाहकी रक्षा करके, अपने भगीरथवंशमें जन्मको कृतार्थ किया है और देशदेशान्तरमें धर्मपताकाके आरोपण करनेसे जिनकी कीर्ति समस्त भूमण्डलमें फैली हुई है इससे जिनको साक्षात् भगीरथ व विष्णुके अवतार भी कहें तो अत्युक्ति न होगी, उनके योग्य तथा धर्मज्ञ प्रतिनिधि रायबहादुर श्रीमान् खवास बालाबक्सजीकी परम उदारताका कहां तक वर्णन किया जासक्ता है जिनके साहाय्यसे यह ग्रन्थ हिन्दी, बङ्गला और इङ्गलिश इन तीनों भाषाओंमें पण्डित बदरीनाथशास्त्री एम. ए. से शुद्ध करवाकर प्रकाशित कियागया है। यदि श्रीमान् राय बहादुर खवासजी साहबकी सहायता न होती तो और

किसीसे इस ग्रन्थका प्रचार होना असंभव था और तब स्वामीजीने देशादिपर्यटन करके अतिपरिश्रमके साथ जो जो अपूर्व वस्तुएँ संग्रह की थीं वे सब व्यर्थ ही रहतीं और स्वामीजीका मनोरथ भी जैसा कि किसीने कहा है "उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः" इसीका उदाहरण होता।

इस उदारताके लिये श्रीमान्को स्वामीजी अपने अन्तःकरणसे असंख्य व परम आशिष देते हैं और मैं भी अपने अन्तःकरणसे आशीर्वादके साथ अनेक धन्यवाद देता हूं और प्रार्थना करताहूं कि परमेश्वर श्रीमान् महाराजा साहेबको आप सहित सुख संपत्ति पुत्र कलत्रादि ऐश्वर्यके साथ चिरायु करै और आपके हाथसे सदा इसी तरह धर्म सम्बन्धी परोपकार होते रहैं।

इस अवसर पर परमयोग्य मुन्शी जगन्नाथप्रसादजी नाजिम और वकील मथुराप्रसादजी सकसेनाने जो स्वामीजीके साथ सहानुभूतिका परिचय दिया है वह भी भूलने योग्य नहीं है। और इस ग्रन्थको पण्डित हरिहरजी मथुरानिवासीने सर्व साधारणके लाभार्थ शुद्ध करके मनोनीत किया है अतः इनका भी धन्यवाद करताहूं।

प्रकाशक,

श्रीवामनदेव वन्द्योपाध्याय,–जयपुर.

Dated the Forteenth of July 1915

Jaipur City

(Rajputana).

उर्दूका तर्जुमा) ता० १४ जौलाई सन् १९१५ को लिखकर खवासजी साहबके खिदमतमेंगया फक्त.

खाकसार गोरधननाथशर्मा जयपुर–सिटी.
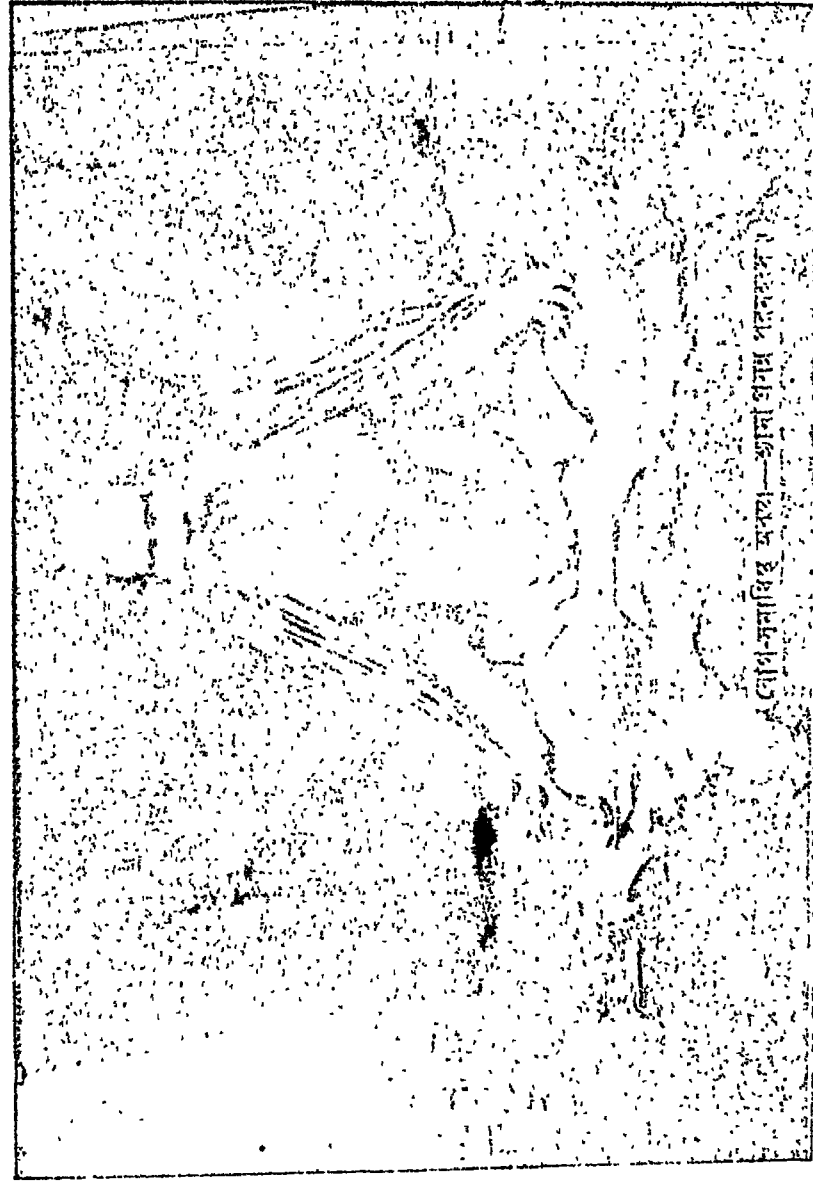
परमहंस श्यामाप्रसन्न देवजी.

श्रीमहाराजाधिराज सवाई सर माधवसिंह बहादुर
जी. सी. एस. आइ., जी. सी. आइ ई., जी. सी.
व्ही. ओ., एल.एल. डी.—जयपुर नरेश.

श्रीयुत रायबहादुर बालाबक्सजी खवास जयपुर.

॥ ॐ तत्सत्परमात्मने नमः ॥

अथ सप्तर्षिग्रन्थप्रारम्भः ।

आत्मा और परमात्माका विचार ।

आत्मा और परमात्मा एक ही पदार्थ है जैसा समुद्रका खारा पानी, मृत्तिका, बालू, पत्थर आदि अग्नि पवन और सूर्यके तेज द्वारा संशोधित होकर पर्व्वतके ऊपर आरोहण करके झरनेके पानीके बहावसे

---

१ सूर्य त्रिगुणयुक्त है, सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण कहे जाते हैं, सूर्यमण्डल रक्त रेखासे घिरा हुआ है उसीको रजोगुण कहते हैं। सूर्यका प्रकाश सत्वगुण है, और सूर्याग्नि तमोगुण है, क्योंकि वही अग्नि जगतके समस्त पदार्थोंको प्रलय (भस्म) कर देता है। उसी त्रिगुणयुक्त सूर्यके मध्यमें एकांश आत्मा अर्थात् ओंकार प्रवेश करके सत्त्वगुणमें स्थित है। सुतरां उसी अग्नि और आत्माकी शक्तियोंके योगसे सदा भयावह समुद्रमन्थन होता है। उसी समुद्रमन्थनकी शक्तिसे समुद्रका लवणाक्त जल मिट्टी, बालू, पत्थर आदिको भेदकर परिष्कृत होता है। फिर वही जल लवणाक्त दोषसे—

मृत्तिका लय होकर नदीरूपमें परिणत होता है. फिर उसी नदीके पानी की सहायतासे पृथ्वीमें जगत्के समस्त जीवोंकी रक्षाके वास्ते शस्यादि भोज्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसी शस्यके खानेसे जीवके देहमें रक्त उत्पन्न होता है और उसी रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे मज्जा, मज्जासे शुक्र उत्पन्न होताहै

शुद्ध होजानेपर पर्वतके ऊपर आरोहण कर झरनारूपमें परिणत होता है । फिर वही पृथिवीमें पतित होकर नदीरूप धारण करता है । तदनन्तर सूर्यात्माके तेजसे नदी, पृथिवी और समुद्रका खारा पानी संशोधन होकर बाष्परूप होजाता है, पीछे आकाशमार्गमें वायुद्वारा आकर्षण होता है, तदनन्तर वह एकत्रित और घनीभूत होकर मेघ-रूपमें परिणत होजाता है । पश्चात् वही वायुकी सहायतासे प्रत्येक मेघमें घर्षण होके अग्नि उत्पन्न करता है, वह अग्नि कुछ ऊपर चढ़के उस मेघपर जोरसे पतित होता है, जिसको वज्रपात कहते हैं, आशय यह कि मेघका पवित्र जल सहस्र २ धारामें पृथिवीमें पड़ता है।

---

१ शुक्रके द्वारा शरीर रक्षा होनेका तात्पर्य यही है कि जैसे तेलसे दीपाग्निकी रक्षा होती है वैसे ही शुक्रसे देहाग्निकी रक्षा होती है । वही देहाग्नि जीवात्माका वासस्थान है । और उसी देहाग्निके नहीं, रहनेसे जीवात्मा भी देहमें नहीं रहता है जैसे अग्नि और ज्योति । अग्नि बुझजानेसे ज्योति भी नहीं रहती है ऐसा ही आत्मा और देहाग्निका सम्बन्ध है इससे सिद्ध हुआ कि सूर्य्य ज्योति ही आत्मा है । इस

इस लिये देखते हैं कि इस जगतमें उसी जलसे समस्त कार्य्य सम्पन्न होता है और पर्व्वतके ऊपरके जलसे कोई कार्य्य नहीं होता । परन्तु पर्व्वतके ऊपर जल न होनेसे नीचे (पृथ्वीमें) नदी शस्य जीवका देह इत्यादि कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होसकता जैसे वृक्षका मूल मृत्तिकाके अंदर है परन्तु उससे वृक्षका किसी प्रकारका उपकार कोई नहीं देखता उस मूलके न होनेसे वृक्ष, पत्ते, फूल, फल इत्यादि कुछ भी नहीं होते, पर्व्वतके ऊपरके जलका नदीके जलके संग तथा वृक्षके मूलके साथ वृक्षका जैसा सम्बन्ध है, परमात्माके साथ भी ठीक वैसा ही सम्बन्ध है । इस लिये आत्मासे ही यह जगत् और इसमें जितने पदार्थ और जीव हैं सब उत्पन्न होते हैं । इसी लिये आत्माको क्रियावान् कहते हैं । परमात्मासे यह सृष्टि नहीं हुई इसी कारण परमात्माको निर्गुण कहते हैं, परमात्मा गुणातीत है इस लिये जीव

लिये हमको अपने शुक्रकी रक्षा करना बहुत ही जरूरी है । कारण कि शुक्र ही हमारे शरीरका रक्षक है 'पुत्रार्थं क्रियते भार्य्या' अर्थात् पुत्रके वास्ते ऋतुरक्षा करना चाहिये ।

परमात्माको सहजमें नहीं देख सकते परन्तु परमात्मा जो उसका गुणातीत है कई भाग्यवान पुरुषोंने उपलब्ध करके शास्त्रमें गुणकीर्तन किया है, परन्तु उसका रूपवर्णन कोई भी न करसका। रूप वर्णन न करनेका कारण यह है कि योगी समाधिके अंतमें क्या दर्शन किया यह भूल जाते हैं, जैसे कि पूर्वजन्मकी बातें इस जन्ममें किञ्चिन्मात्र भी याद नहीं रहतीं और परमात्माके दर्शन न होने का एक कारण और भी है, वह यह है कि इस जगत् में जो परमात्माका अंश है वही सूक्ष्मशरीर त्रिगुण (रज, तम, सत्त्व) युक्त है; इसी त्रिगुणमें परमात्माका अंश वास करनेके कारण अग्नि और साधारण ज्योतिसे मिलाहुआ ब्रह्मज्योति दर्शन होता है और सूर्यसे ऊपरमें केवल सत्वगुणयुक्त नाना प्रकारके वर्णसे कमल (पद्म) पुष्पके आकार पाञ्चभौतिक साधारण ज्योति दर्शन होता है उसी ज्योतिमें परमात्माका एकांश वास करताहै। इन दोनों आत्माके अंशोंका पृथक् पृथक् स्पष्ट दर्शन नहीं होता। वह अतीत और जगत्से अतीत परमात्मा स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी प्रकारका शरीर

नहीं रखता केवल शुभ्र ज्योतिमात्र है। यह अनु-
भव करके दर्शन करना अत्यंत कठिन है। इस
लिये आत्मा और परमात्माका रूप वर्णन करनेमें
आत्मज्ञानी मनुष्य सभी असमर्थ हुए हैं। इस
लिये परमात्माका रूप "अरूप रूपम्" और निष्क्रि-
यम्" कहकर शास्त्रकारोंने व्याख्यान किया है। अब
देखनेमें आता है कि परमात्मा नहीं होनेसे इस
जगत् इत्यादिकी उत्पत्ति केवल आत्माकी शक्तिसे
नहीं होसकती, कारण यह है कि परमात्मा ही
मूलाधार है। इस वास्ते ऋषियोंने परमात्माको
"निर्गुणाय गुणात्मने" कहके शास्त्रमें लिखा है।
अब हमको देखना चाहिये कि परमात्मा, किस
समय निर्गुण और किस समय सगुण होता है।
जब आत्मा परमात्मासे अलग अर्थात् योगरहित
होता है तब परमात्मा निर्गुण निष्क्रिय कहलाता
है। हम लोग चंद्र और सूर्य्य ग्रहण देखते हैं
वही ग्रहणका स्थितिकाल आत्मा और परमा-
त्माको अलग करता है, कारण यह है कि उस समय

सत्व गुणके मार्गको तमोगुण रोध करता है जैसे नदी समुद्रके संगम स्थानमें वन्ध बांधनेसे नदी और समुद्रका पानी अलग होजाता है अर्थात् नदी

---
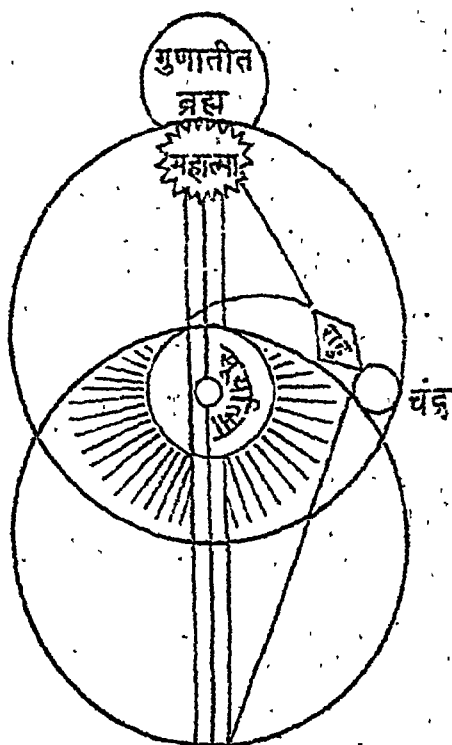
१ तमोगुण देखनेमें भयङ्कर सर्पाकृति है, उसका शिर सांपके फणके समान वडा और बहुत ही काला है। कुछ चौडे तीन मार्ग हैं उनके बीचमें दक्षिणकी तरफके मार्गमें तमोगुणका वासस्थान है उसी तमोगुणके मार्गसे संलग्न उत्तरकी ओर सत्त्वगुणका मार्ग है। इसीमें आत्माका वासस्थान है। यह सत्त्वगुणके मार्गके संग गुणातीत परब्रह्मके साथ मिला हुआ है। इस कारण आत्मा और परमात्मा भी

और समुद्र परस्पर पृथक् होते हैं वैसे ही आत्मा और परमात्माके संयोगका मार्ग जिसको सत्वगुण का मार्ग कहतेहैं तमोगुणके द्वारा चंद्र और सूर्य्य ग्रहणके समय रुद्ध होता है, इस लिये आत्मा और परमात्मा दोनों परस्पर अलग होते हैं।

इसी तमोगुणको शास्त्रमें राहु कहकर वर्णन कियाहै। जब तक तमोगुण सत्वगुणका मार्ग नहीं त्याग करेगा अर्थात् जब तक राहु (तमोगुण) चन्द्र अथवा सूर्य्यको छोड़कर अपने स्थानमें नहीं जावैगा तब तक, आत्मा और परमात्मा दोनों ही अलग रहैंगे। और जब तक आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध रहता है तब तक परमात्मा सगुण समझा जाता है। और मनुष्य देह भी एक छोटासा जगत् है। जब मनुष्यके शरीरमें तमोगुण अपने स्थानसे निकलकर सत्वगुणके मार्गको बंद

—सर्व्वदा मिले हुए हैं। इसी सत्त्वगुणके मार्गसे संलग्न उत्तरदिशाके मार्गमें रजोगुणका वासस्थान है। जब वही तमोगुण सर्पके बिलमें से निकलकर सत्त्वगुणका मार्ग बंद करता है रजोगुण विशिष्ट चन्द्र (सुधा) अथवा सूर्य्यको तेजस्वी देखकर फैलता है तब निश्चय सत्त्वगुणका मार्ग बन्द होता है इस वास्ते आत्मा और परमात्माका अलग होना माना जाता है।

करदेता है तब जीवात्माके संगसे परमात्मा अलग होता है। नहीं तो तमोगुण जब तक सत्वगुणका मार्ग बंद करके रहता है तब तक जीवात्मा और परमात्मा परस्पर अलग अलग रहते हैं। जब जीवात्माके सङ्गसे परमात्मा अलग होता है तब जीवको निद्रा आजाती है, इस लिये जीवके देहमें जीवात्मा और परमात्माकी अलग अवस्थाको निद्रा कहते हैं। जीवात्मा और परमात्मा आपसमें तमोगुणसे अलग होते हैं, इस लिये तमोगुणके अलग होनेका कारण कहते हैं। इस ही अलग होनेको निद्रा कहते हैं और तमोगुण ही निद्राका कारण है। जो मनुष्य तमोगुणको अपने वशमें रख सकते हैं उनको निद्रा नहीं आती है, इसी कारण परमात्माके संगसे जीवात्मा अलग भी नहीं होता। जैसा पति और पत्नी हैं वैसा ही आत्मा और परमात्मा हैं। पत्नी संसारके समस्त कार्य्य सम्पन्न करती है, गृहस्थाश्रम सजाती है और घरकी अधिकारिणी भी रहती है; परन्तु पति नहीं होनेसे केवल पत्नीकी शक्तिसे कुछ भी नहीं होसकता,

क्योंकि संसारमें अर्थ और सन्तानकी आवश्यकता है, इन सबका मालिक पति ही है। उसी प्रकार पुरुष-रूपी परमात्मा पति और प्रकृतिरूप आत्मा ही पत्नी है। परन्तु जिसको पुरुष कहते हैं वही प्रकृति है, अर्थात् आत्मा सर्व मनुष्योंमें एक ही है भिन्न नहीं। 'निर्गुणेन गुणात्मना' इसका दूसरा भी अर्थ है अर्थात् अद्वैत परमात्मा सर्वदा निर्गुण और द्वैत आत्मा सर्वदा सगुण है, आत्मा एक ही है।

सत्त्व रज तम ये तीनों गुण प्रीतिरूप, अप्रीतिरूप, और विषादरूप हैं, तीनोंमेंसे प्रीतिरूप सत्त्वगुण है प्रीति नाम सुखका है सो सुखरूप ही सत्त्वगुण है, और अप्रीति नाम दुःखका है सो दुःखरूप रजोगुण है। विषाद नाम मोहका है सो मोहरूप तमोगुण है। प्रीति शब्द उपलक्षण करके आर्जव, लज्जा, श्रद्धा, क्षमा, दया, ज्ञानादिका है, वही सतोगुणके धर्म हैं, अप्रीति शब्द उपलक्षण करके द्वेष, द्रोह, मत्सरता, निन्दादिका है, वही रजोगुणके धर्म हैं, और विषाद शब्द उपलक्षण करके कुटिलता, कृपणता और अज्ञानता आदिका है, वही तमोगुणके धर्म हैं।

सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाका नाम ही प्रकृति है, और सत्त्वादिक गुण द्रव्य हैं । नैयायिकने जो इनको विशेष गुण माना है सो उसका मानना ठीक नहीं है, क्यों कि ये संयोगवाले हैं और लघुत्व गुरुत्वादिक धर्मवाले भी हैं और गुणमें गुण नहीं रहते हैं, और इनमें संयोग वियोगादिक त्रिगुणात्मक महदादिरूप रज्जुकी रचना ये गुण ही करते हैं, इसीवास्ते ये बन्धनके हेतु हैं । तथा "प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः"—अर्थ शब्दका अर्थ समर्थ है अर्थात् प्रकाश करनेमें समर्थ सत्त्वगुण है और प्रवृत्ति करानेमें समर्थ रजोगुण है और स्थिति याने आलस्य करानेमें समर्थ तमोगुण है तथा "अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च" अन्योन्याभिभव परस्पर एक दूसरेको तिरस्कार करते हैं। प्रीति, अप्रीति आदिक धर्म्मों करके एक दूसरेको दबालेते हैं । जब सत्त्व गुण उत्कट होता है, याने अधिक होता है तब रज और तमको दबा करके अपने गुण प्रीति प्रकाशादिक सहित स्थित होता है । और जिस कालमें पुरु-

षमें रजोगुण अधिक होता है तब सत्त्व और तमोगुणको दबाकर अपने प्रवृत्ति, अप्रवृत्ति आदिक धर्म्मों करके युक्त स्थित होता है और जब तमोगुण अधिक होता है तब वह सत्त्व और रजको विषादादिक धर्मोंसे दबाकर स्थित होता है। तथा "अन्योऽन्याश्रयाश्च ।" परस्पर एक दूसरेको आश्रयण करके ही रहते हैं । 'अन्योन्यजननाः' जैसे मृत्पिण्ड घटको उत्पन्न करता है तैसे गुण भी एक दूसरेको उत्पन्न करते हैं याने जब एक गुण लय होजाता है तब दूसरा उदय होता है वास्तवमें तीनों गुण सदैव बने रहते हैं । "अन्योन्यमिथुनाश्च।" जैसे स्त्री पुरुष परस्पर मिले रहते हैं। तैसे गुण भी परस्पर मिले रहते हैं। "रजसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रजः । उभयोः सत्त्वरजसोर्म्मिथुनन्तम उच्यते।" रजोगुणका तमोगुणके साथ मिथुन याने मेल रहता है और सतोगुणका मेल रजोगुणके साथ रहता है अर्थात् एक दूसरेके सहायक हैं "तथाऽन्योऽन्यवृत्तयश्च।" एक दूसरेमें वर्त्तते हैं जैसे सुन्दर रूप, शील और स्वभाववाली स्त्री अपने पतिके सर्व

सुखोंका हेतु है पर वही सपत्नीके दुःखका हेतु है और रागी पुरुषोंको मोहका कारण है । जब राजा सत्वगुण करके युक्त हुआ प्रजाका पालन करता है तब वही दुष्टोंका निग्रह करता है और जब श्रेष्ठपुरुषोंको सुख उत्पन्न करता है तब दुष्टोंको दुःख उत्पन्न करता है इसी प्रकार सत्त्वगुण अपने कालमे भी रज और तमकी वृत्तिको उत्पन्न करता है और रजोगुण अपने कालमें भी सत्त्व और तमकी वृत्तिको उत्पन्न करता है तैसे ही तमोगुण भी अपने आवरणरूप स्वरूपद्वारा सत्त्व और रजकी वृत्तिको उत्पन्न करता है जैसे मेघ आकाशको आच्छादन करके जगत्को सत्त्वगुण द्वारा सुख उत्पन्न करता है रजोगुण द्वारा वर्षा करके किसानोंको हल जोतनेका उद्यम उत्पन्न कराता है और तमोगुणद्वारा वियोगी पुरुषोंको मोह उत्पन्न करता है इस प्रकार गुण परस्पर एक दूसरेकी वृत्तिको उत्पन्न करते हैं ।

किसी किसी ऋषिने इसी जगत् आत्माको अर्थात् ओङ्कारको पुरुष कहकर व्याख्या की है, फिर कोई कोई ऋषि प्रकृति कहकर भी व्या-

ख्या करगये हैं। परन्तु यह प्रकृतिरूप जगदात्मा और पुरुषरूपी जगदतीत परमात्मा यह दोनों विकार शून्य हैं। रज और तमोगुणको विकार कहते हैं। मनुष्योंमें रज और तमोगुण विद्यमान हैं इस लिये मनुष्य विकारयुक्त हैं। यदि प्रकृतिरूप जगदात्मा, और जगदतीत पुरुषरूपी परमात्मा रज और तमोगुणमें लिप्त रहकर विकारयुक्त होते तो विकारयुक्त मनुष्य भी आत्मा परमात्मा-का दर्शन पाते। असल बात यह है कि जिस आत्माका स्थूल देह नहीं है उस आत्माको विकार भी नहीं है। जो मनुष्य निर्व्विकार आत्मा और परमात्माका दर्शन करनेकी इच्छा करे उसको उचित है कि स्थूल देहका कार्य्य (जिस कार्य्यके करनेसे यह स्थूल देह नष्ट होताहै) न करे और जिस कामके करनेसे यह स्थूल देह रक्षा पाताहै वैसा ही करना चाहिये, परन्तु कलियुगमें बहुतसे मनुष्य धर्माधर्मका

---

१ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, शौच, संतोष, तप, जप, स्मरण, धारणा, ध्यान, आसन, प्राणायाम, इत्यादि अनेक प्रकार कार्य्य करके देहकी रक्षा करनेसे आत्मा और परमात्माका दर्शन होता है
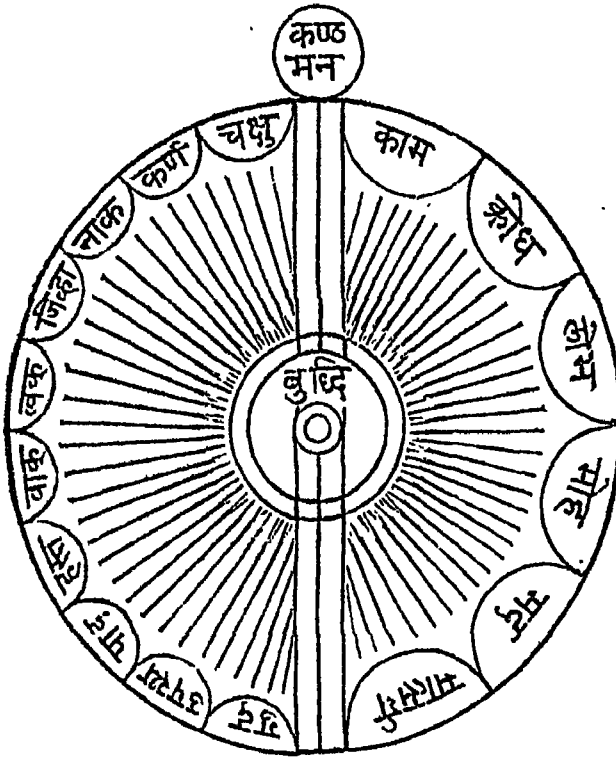
जीव और उसकी उत्पत्ति ।

१ (प्रश्न)—जीव किसको कहते हैं और उसकी उत्पत्ति कहांसे हुई ?

२ (”)—जीवका वासस्थान कहां है ?

३ (”)—जीवका कार्य क्या है ?

४ (”)—जीवात्मा कहनेका कारण क्या है ?

५ (”)—जीवात्माका कार्य क्या है ?

६ (”)—जीवात्माकी मुक्ति क्या है ?

१ (उत्तर)—मनुष्यके देहके भीतर हृदय-स्थानमें गोल आकार काम, क्रोध, मोह, मद,

विचार त्याग करके केवल अधर्ममे लिप्त रहते हैं। यह शरीर निश्चय नाशको प्राप्त होगा और जितनी वस्तु हम संसारमें चक्षु द्वारा देखते हैं वह सब अस्थिर हैं, अर्थात् कभी न कभी नाशको प्राप्त होंगी; यह विचार न लाकर समझते हैं कि हम सर्वदा योंही इस संसारमें जीवित रहकर संसारी आनन्द जो वास्तवमें नरकानन्द कहना चाहिये भोगते रहेंगे। बड़े खेदकी बात है कि आज उन बातोंको चिल्ला चिल्लाकर पुकारनेसे भी कोई ध्यानसे नहीं सुनता, जिनको किसी समयमें हम लोग हमारा निज कर्तव्य समझते थे।

—अर्थात् मनुष्यदेह नीरोग पवित्र निर्विकार रहनेसे देहमें अग्नि और ज्योति दीप्त होता है, इस लिये सत्त्वगुण युक्त साधारण ज्योतिमें ब्रह्मज्योतिका दर्शन होता है, अर्थात् मनुष्यके शरीरमें साधारण पाञ्चभौतिक तेज और ज्योति अधिक होनेमें नेत्रकी ज्योति भी बढ़ती है, इस कारण ज्योतिसे ही ज्योति खींची जाती है इसका यही कारण है। अत एव शरीरकी रक्षा करना ही धर्म है, इस लिये सब मनुष्योंको अपने आत्मा व शरीरकी रक्षा करना सर्वदा उचित है।
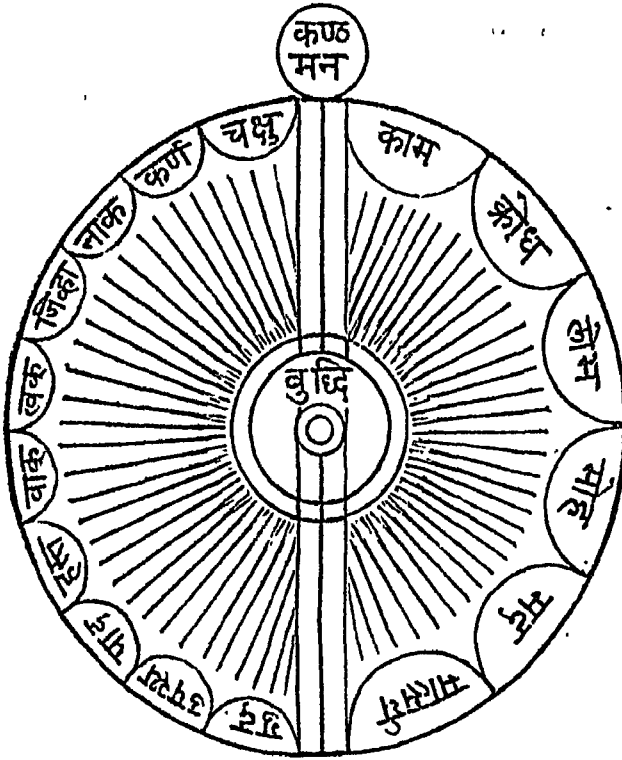
जीव और उसकी उत्पत्ति ।

१ (प्रश्न)—जीव किसको कहते हैं और उसकी उत्पत्ति कहांसे हुई ?

२ (")—जीवका वासस्थान कहां है ?

३ (")—जीवका कार्य क्या है ?

४ (")—जीवात्मा कहनेका कारण क्या है ?

५ (")—जीवात्माका कार्य क्या है ?

६ (")—जीवात्माकी मुक्ति क्या है ?

१ (उत्तर)—मनुष्यके देहके भीतर हृदय-स्थानमें गोल आकार काम, क्रोध, मोह, मद,

मत्सर, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् (ज्ञानेन्द्रिय) हस्त, पाद, वाणी, उपस्थ, गुद, कर्मेन्द्रिय, यह सब उस वर्तुलाकार हृदयके समस्त स्थानोंको वेष्टित करके स्थित हैं; इसके ठीक मध्यस्थानमें सत्वगुणमें आत्माका वासस्थान है। उस दर्पणस्वरूप अग्नि और ज्योतियुक्त आत्मामें उक्त षड् रिपु और इन्द्रियादिका प्रतिविम्ब विद्यमान है। उस अग्नि और ज्योतियुक्त आत्मामें जो प्रतिविम्ब है उसीको जीव कहते हैं। कदाचित् यह शङ्का कीजाय कि उस पवित्र आत्मामें किसी पदार्थका प्रतिविम्ब नहीं पड़सकता तो यह उत्तर है कि उस पवित्र आत्मामें किसी पदार्थका प्रतिविम्ब नहीं है, ठीक है; परन्तु वह पवित्र आत्मा अग्नि और ज्योतिके साथ मिला हुआ है, अर्थात् अग्निके मध्यस्थित ज्योतिमें मिलरहा है, इसी कारण समस्त पदार्थोंका प्रतिविम्ब पड़ता है जैसे काचका एक गोल लालटैन है उसमें किसी पदार्थका प्रतिविम्ब नहीं पड़सकता, किन्तु उस काचमें एक भागमें पारा और रांग मिलाकर लगादेनेसे वह काच दर्पणरूपमें परिणत होता है। इसी प्रकार

आत्मा और अग्निज्योतिमें मिलनेसे उन पूर्वोक्त कामादिका प्रतिबिम्ब पड़ता है। क्योंकि आत्माका वासस्थान अग्नि और ज्योतिके मध्यमें है, इससे भिन्न इस जगतमें आत्माका वासस्थान नहीं है। कदाचित कहो कि आत्मा सर्वव्यापक है, वह केवल अग्नि और ज्योतिके मध्यमें ही है अन्यत्र नहीं यह कैसे सङ्गत होसकता है? इसका उत्तर यही है कि आत्मा सर्वव्यापक किस प्रकारका? सूर्यात्माको हम लोग सर्वदा ही देखते हैं परन्तु उस सूर्यात्माके बीचमें जो ज्योति उसके मध्यमें आत्मा मिलकर रहा, वह सूर्यरश्मि समस्त जगत्में व्यापक होगया, जैसे घरके बीचमें दीपकी अग्नि, क्यों कि उसके न होनेसे घरमें अन्धकार रहता है, अतः उस ज्योतिका वासस्थान दीपाग्नि है। इसी प्रकार आत्माका वासस्थान सूर्याग्नि है, जैसे पृथिवीके समस्त मनुष्योंका शासनकर्ता एक राजा है वह राजा समस्त राज्यको अपने नेत्रपथमें रखकर समस्त रक्षणावेक्षण करता है। परन्तु वह राजा अपने एक स्थानमें रहता है । ऐसे ही वह ओङ्कार (आत्मा) सूर्यमण्डलमें वास करके समस्त

जगत्को दृष्टिपथमें रखकर रक्षणावेक्षण करता है। इसको ही आत्माकी सर्व व्यापकता कहते हैं।

सूर्यात्मामें निर्विकार पृथक् पृथक् पञ्चभूतोंके प्रतिविम्ब रहते हैं इसवास्ते सूर्यात्मा निर्विकार है। मनुष्यशरीरमें पञ्चभूत एकत्रित होकर काम क्रोधादि रिपु, एवं इन्द्रियादियोंकी रचना हुई है। इसीसे विकारयुक्त वस्तुके प्रतिविम्ब आत्मामें पड़नेसे विकारयुक्त जीवात्मा हुआ है। क्योंकि जीवयुक्त आत्मा ही जीवात्मा कहा जाता है।

२ (उत्तर)—जीवका वासस्थान आत्मा है।

३ (")—कामादि षड् रिपु और इन्द्रियादि समस्तको आत्माके दृष्टिपथमें रखनेवाला जीव है। उस जीवके न होनेसे कामादि षड् रिपु और इन्द्रियादिकोंके संवादकी खबर आत्माको नहीं होसकती, और बुद्धिकी उत्पत्ति तथा वासस्थान भी आत्मा ही है। इसीसे सबका ज्ञान उस आत्माको सदा गोचर रहता है। मनका भी वासस्थान उस आत्माके ऊपर आत्मासे संलग्न कण्ठमें है। मन और बुद्धिका सहयोग है, अत एव विचार करके देखनेसे प्रतीत होता है कि जीव

शरीरस्थ समस्त कार्योंका संवाद आत्माको देता है।

४ (उत्तर)—जीवका वासस्थान आत्मा है, इस कारण जीवयुक्त आत्मा ही जीवात्मा है।

५ (उत्तर)—इस संसारके समस्त कार्य अर्थात् पाप और पुण्य जीवात्मा ही करता है, वह जीवात्मा हम ही हैं।

६ (उत्तर)—उस पापकार्यका परित्याग कर पुण्य कार्य करनेसे मुक्ति होती है। अर्थात् जीव ही संसार है, उस जीवको छोड़के विशुद्ध आत्मरूपमें परिणत होकर अद्वैत विशुद्ध आत्मामें मिलजाना ही मुक्ति है।

अब हमको यह जानना आवश्यक है कि इस विशाल संसार और इसमें नाना प्रकारके पदार्थ और अनेक प्रकारके जीवोंकी सृष्टि किस प्रकार हुई।

परमात्माने किसी समयमें गुणयुक्त होकर इच्छा की कि मैं पहलेके अनुसार निर्विकल्प होऊं, इस प्रकार चिन्ता करके पूर्ण परमात्मा समान दो अंशोंमें विभक्त हुआ जैसे एक चने-

की दो दाल समानाकार होती हैं वैसा । उस समय पूर्ण परमात्माका दक्षिण अङ्ग पुरुषरूपी अद्वैत, निर्विकल्प होकर रहा और वामाङ्ग प्रकृतिआत्मा द्वैत गुणयुक्त हुआ उसने मनमें चिन्ता की कि मुझे अद्वैत होकर परमात्माके साथ मिलना होगा ।

इसी चिन्ताके समकाल ही प्रकृति आत्माने अपनी अङ्गज्योति विस्तार करके अण्डाकृति ऊर्ध्वदिक एक सूक्ष्मरन्ध्र रखकर एक परदा उत्पन्न किया । पीछे उसी अण्डाकृति परदाको ऊर्ध्वस्थित रन्ध्रमें प्रकृति आत्माने एक निश्वांस छोड़दिया वही निश्वास उसी

---

१ इसी रन्ध्रका नाम ब्रह्मरन्ध्र है, इसीसे स्वर्ग मृत्यु पाताल तक एक मार्ग है, उसी मार्गमें सत्त्वगुणका वासस्थान है, अर्थात् उसी सत्त्वगुणमें प्रकृति आत्मा बराबर तीन अंशके दो अंश पवित्र होकर वास करेंगे, उसी मार्गके संग गुणातीत परमात्माके संग योग रहेगा वही दो अंश प्रकृतिआत्मा एक अंशसे रन्ध्रके स्थानमें वास करेंगे. दूसरा अंश सत्त्वगुणके ठीक मध्यस्थानमें वास करेंगे ।

२ इस जगतके निर्माणमें जिन जिन पदार्थोंकी आवश्यकता है वह सब निश्वासके बीचमें हैं, उस निश्वाससे वायुकी उत्पत्ति, वायुके मध्यमें वही वर्तमान पञ्चभूत परमाणु व्यष्टिरूपमें थे, वही समस्त पदार्थ परमाणु समष्टि होकर यही दृश्य जगत् प्रस्तुत होगया ।

अण्डाकृति परदाके मध्यमें प्रवेश करके वायु-रूपमें परिणत हुआ, पीछे उसी वायुसे अग्नि, अग्निसे जल उत्पन्न हुआ. जब अग्निसे जल उत्पन्न हुआ तब वही अग्नि समद्रजलमें भासमान हुआ, पीछे उसी साधारण समुद्राग्नि (वाडवा-नल) के मध्यमें प्रकृति आत्माने प्रवेश किया, पीछे उस समुद्राग्निके सूर्यके समान तेजस्वी होनेपर भयानक समुद्रमन्थन होने लगा. उसी समुद्रमन्थ-नसे नाना प्रकारके फेनकी उत्पत्ति हुई वही फेन क्रमसे गाढ़ा होगया। फिर नाना प्रकारका मेद उत्पन्न हुआ, कोई कोई मेद जमकर चन्द्र नक्षत्रादि स्वरूप होकर ऊर्ध्वपथमें चलने लगे, और क्रमसे निर्दिष्ट स्थानोंमें जाकर स्थित होगये । और दूसरे दूसरे मेदोंमें उसी समुद्राग्नितेज और प्रकृति आत्माकी शक्तिसे जमकर नाना प्रकारकी मृत्तिका, बालू, पत्थर, पर्वतादि और नानाविध धातु पदार्थ, और नाना प्रकारके पत्थर आदि और औषध आदि खनिज पदार्थ उत्पन्न हुए। पीछे उसी स्थलके मध्यमें क्रम क्रमसे नाना प्रकारके वृक्ष लतादि अर्थात् पृथिवीके मध्यमें जिस २

पदार्थकी आवश्यकता है उस सबकी उत्पत्ति हुई । पीछे वही समुद्राग्निसंवलित प्रकृति आत्माने अपनी शक्तिसे ऊर्ध्वपथमें इसी जगतके हृदय देशमें उसी अग्नि (वडवानल) को स्थापित करके जगदतीत स्थानोंमें जाकर जगतमध्यमें दृष्टिपात करके देखा जो जगत्का हृदयस्थित रज सत्त्व तमोगुण युक्त अग्निसे सत्त्वगुण-विशिष्ट साधारण ज्योति बड़े जोरसे ऊर्ध्वपथमें जगतके ललाटमें सञ्चित हुआ, जल्दी जल्दी वही ज्योति इस प्रकार घनीभूत होगया कि जो और ज्योति उसमें प्रविष्ट होना असम्भव है । वह ज्योति देखनेमें नाना वर्णविशिष्ट पद्मपुष्पाकृति अतिमनोहर हुआ जिसके समान और कोई भी पृथिवीमें नहीं हुआ परन्तु वह ज्योति अपरिष्कार है । तब प्रकृति आत्माने जगतमध्यमें प्रवेश करके जगतके हृदयस्थित अग्नि व ललाटस्थित ज्योति इन दोनोंसे अपरिष्कार अग्नि और ज्योति

---

१ इस जगत्में उस सूर्याग्निको ही महाग्नि कहते हैं 'सामवेद' अर्थात् जिस अग्निमें आत्मा स्थित है उसी अग्निको महाग्नि कहते हैं । एतद्भिन्न जगतके समस्त अग्नि साधारण अग्नि काष्ठाग्नि, प्रदीपाग्नि इत्यादि ।

ग्रहण करके ये ही उभय अंश पृथक् करके नीचे जल स्थलमें और पर्वतमें निक्षेप किया है, सुतरां जगतके हृदयस्थित अग्नि और ललाट-स्थित ज्योति सोलह आना मध्यमें ६ आना परि-माण कम होगया। वही अपरिष्कार अंश पृथक् होनेसे वह अग्नि और ज्योति परिमाण कम हुआ सही परन्तु वह निर्मल है। पीछे प्रकृति आत्माने चिन्ता किया कि उसी अपरिष्कृत अग्नि और ज्योति परिष्कार करनेके लिये मझको जग-तमध्यमें प्रवेश करना होगा, अर्थात् अपरिष्कृत त्रिगुण युक्त जो अग्नि जगत्के हृदयसे नीचे जल स्थल और पर्वतमें निक्षेप किया है उसीको विशुद्ध करनेके लिये जगतके हृदयस्थित परिष्कृत अग्निके संग मिलाना होगा, और जो अपरिष्कृत सत्व-गुणविशिष्ट साधारण ज्योति जगतके ललाटसे नीचे जल स्थल और पर्वतमें निक्षेप किया है उसे भी निर्मल करके उसी ललाटस्थित ज्यो-तिके साथ मिलानेके हेतु अर्थात् मनुष्य जीव सृष्टिकें लिये परिष्कृत तेज और परिष्कृत ज्योतिकी आव-श्यकता है। अर्थात् मनुष्यजीवसे मेरी (प्रकृति-

आत्माकी) मुक्ति अर्थात् अद्वैत परमात्माके साथ मिलन होगा, जितने समय तक हमारी (प्रकृति आत्माकी) मनुष्यजीवसे मुक्ति न होगी तब तक हमको जगत्मध्यमें ३ अंशमें विभक्त होकर अर्थात् उसी तीन अंशके दो अंश पवित्र आत्मारूपमें परिणत होकर वही दो अंशका एकांश आत्मा जगतके ललाट देशमें केवल सत्त्वगुणमें उसी पाञ्चभौतिक पवित्र ज्योतिके मध्यमें वास करना होगा । और दूसरा अंश पवित्र आत्मा जगत्के हृदयदेशमें त्रिगुणयुक्त पवित्र जो तेज (अग्नि) उसी तेजोमध्यमें वास करना होगा । जिस कारण उसी त्रिगुणमें निर्लिप्त रहकर उसी आत्मा और तेजकी स्वभावशक्तिसे सत्त्वरज और तमोगुणका कार्य सम्पन्न होगा । वही द्वितीय अंश आत्मा ओङ्कारनामसे जगद्विख्यात होगा । सृष्टिका तात्पर्य यही है, कि वही अपरिष्कृत पाञ्चभौतिक तेज और ज्योति परिष्कारक यन्त्र भिन्न और कुछ नहीं है । वही तेज और ज्योति क्रमान्वय वही ८४ लक्ष भिन्न भिन्न जीवदेह (यन्त्रविशेष) भ्रमण करके पीछे मानवदेहके मध्यमें प्रवेश

करनेसे ही उस तेज और ज्योतिका परिष्कार होगा, वाकी तृतीय अंश द्वैत प्रकृति आत्मा बहुअंशमें विभक्त होकर उसी बहु अंशके प्रत्येक अंश फिर दो अंशोंमें विभक्त होकर एक अंश प्रकृतिआत्मा पवित्र होकर मानव देहके मस्तिष्क पर गुणातीत स्थानमें पुरुषरूपी अद्वैत परमात्मा होकर रहेंगे द्वितीय अंश द्वैत प्रकृति आत्मा फिर दो अंशोंमें विभक्त हुआ, वही दो अंशोंका एक अंश आत्मा पवित्र आत्मामें परिणत होकर मानव शरीरके ललाटमें केवल सत्त्वगुणसे उसी पाञ्चभौतिक नानारंगविशिष्ट पवित्र ज्योतिके मध्यमें साक्षि-स्वरूप रहेगा। अवशिष्टांश प्रकृति आत्मा मानव-देहके हृदयदेशमें रज सत्त्व और तमोगुणके मध्यमें प्रवेश करके केवल सत्त्वगुणमें अवस्थिति करेगा, एवं प्रकृति आत्मा वा जीवात्मा नामसे जगत विख्यात होकर रजोगुणसे सन्तान आदि उत्पन्न करेगा, पीछे मुक्तिलाभका कार्य करके मुक्तिलाभ करेगा, अर्थात् विकारयुक्त मानव हृदय रज तथा तम गुणके मध्यमें सत्त्वगुणमें वही एकांश आत्मा रहेगा जिसको जीवात्मा वा प्रकृति आत्मा कहते हैं।

वही स्थूल, देहधारी विकार युक्त जीवात्मा देह अर्थात् इन्द्रियादि द्वारा पवित्र कर्म करके केवल सत्त्वगुणके आश्रय रहकर निर्विकार होके ऊर्ध्व मानवके ललाट स्थित सत्त्वगुणविशिष्ट पाञ्चभौतिक ज्योतिमध्यमें साक्षिस्वरूप महात्मा है, उसी महात्माके संग समाधियोग द्वारा मिलेगा। पीछे उभय आत्मा एक होकर मानवके मस्तकस्थित गुणातीत अद्वैत परमात्माके संग मिलेगा, फिर वही तीन अंश आत्मा एक होकर मानवदेहको छोड़ करके जगदात्माको (सूर्यको) अतिक्रम करके उसके अपर जगतके ललाटस्थित सत्त्वगुण-विशिष्ट पाञ्चभौतिक ज्योतिमध्यमें साक्षिस्वरूप जो महात्मा है उसको भी अतिक्रम करके जगदतीत, अद्वैत निर्विकल्प परमात्माके संग मिलेगा, और वही जीवात्मा जब प्रथममें मान-वके हृदयस्थित तेज (सूर्याग्नि) से ऊपर बहिर्गत होगा, तब वही तेज परमाणुरूप होकर पञ्चवायुओंके संग उसी आत्माके साथ क्रमसे बहिर्गत होंगे, पीछे जब मानवके ललाटस्थित साधारण ज्योतिको वही उभय आत्मा एक

होकर छोड़देगा तब वह ज्योति भी उसी प्रकार वायुके संग मिलके बाहर चला जायगा । वही पवित्र तेज (सूर्य) में मानवका पवित्र तेज मिलेगा और मानवका पवित्र ज्योति उसी जगतके ललाट स्थित पवित्र महाज्योतिमें मिलेगा। सुतरां क्रमसे वही तेज और ज्योति पूर्ण होगा । हमारा (प्रकृतिआत्मा) अंश भी थोड़ा थोड़ा करके वही एक एक मानवसे परमात्मामें लय होगा ।

यही जगतके परमाणु चारों युग पर्यन्त रहेंगे, जब वही चारो युगमध्यमें समस्त मनुष्य मुक्त नहीं होसकें तब चारों युगान्तमें वही पृथिवी लयको प्राप्त होगी । एवं जगतका समस्त अमुक्त जीवात्मा ॐकार (सूर्य) में मिलेगा जैसे पद्मपत्रमें जल पत्रके संग लिप्त नहीं है वैसे ही पीछे वही पृथिवी उत्पन्न होकर फिर वही अमुक्त आत्मा फिर जन्मलेंगे । इसी प्रकार जब तक वही अमुक्त आत्मा मुक्त न होंगे । तब तक यही पृथिवी जीवादि चारों युगोंके अन्तमें प्रलय और उत्पन्न होंगे ।

जब यही जगतके समस्त जीवात्मा वा प्रकृति आत्मा मुक्त होंगे तब पृथिवी, जल, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र इत्यादि समस्त पदार्थ परमात्माके स्वभावसे फिर एक प्रश्वाससे परमाणुरूप होकर परमात्माके वाम अंगमें (प्रकृतिअंगमें) व्यष्टिरूपमें मिलेंगे। सुतरां परमात्मा निर्विकल्पावस्थ पूर्ववत् होगा । जिस कारण एक एक परमाणुकी कोई शक्ति नहीं है। इसको महाप्रलय कहते हैं। किन्तु वही समस्त कार्य सम्पन्न होनेको किञ्चित् अंश बाकी (चतुर्थअंशका १ अंश) रहनेसे अत्यन्त क्लेश होगा। क्योंकि पाञ्चभौतिक तेज और ज्योति क्रमसे कम होगी इस वास्ते मनुष्यजातिकी बुद्धिशक्ति भी कम होगी। कारण कि जीवात्माका आश्रय वही पाञ्चभौतिक तेज और ज्योति है वही पाञ्चभौतिक तेज और ज्योति पृथ्वीमें अल्पपरिमाण होनेसे मानवगण ह्रस्वकाय होंगे एवं बुद्धिशक्ति भी लुप्त होगी। बुद्धिशक्तिके लुप्त होनेसे विचारशक्ति भी नहीं रहेगी. सुतरां भोजनादिके अविचारसे क्रियाविहीन होकर रोगाक्रान्त होंगे, पीछे शक्तिहीन होकर अकालमें

कालग्रासमें पतित होंगे, तब कौन मुक्त होंगे? सुतरां प्रेत योनिमें प्रवेश करेंगे। जो हो, वह कार्य सम्पन्न करना ही चाहिये।

इति प्रकृतिआत्मा इस प्रकार चिन्ता करके अत्यानन्द चित्त होकर जगत मध्यमें प्रवेश करके आप (प्रकृति आत्मा) बराबर तीन भागोंमें विभक्त हुआ, उसी तीन अंशका एक अंश प्रकृति आत्मा पवित्र होकर जगतके ललाट देशमें सत्त्वगुण विशिष्ट पाञ्चभौतिक पवित्र ज्योति मध्यमें प्रवेश करके अर्थात् कारणशरीर धारण करके साक्षि-स्वरूप रहा और एकांश प्रकृति आत्माने पवित्र आत्मारूपमें परिणत होकर जगतके हृदय देशमें त्रिगुणयुक्त पवित्र तेज (अग्नि) के मध्यमें प्रवेश करके सूक्ष्म शरीर धारण किया है।

एवं ॐकार नामसे जगत विख्यात होकर रहाहै उसी ओङ्कारकी शक्ति और सर्याग्निकी शक्ति द्वारा स्वभावसे जगत मध्यमें सृष्टि, स्थिति, प्रलय यही तीन कार्य आरम्भ हुए, पहले नाना प्रकारके जीव अर्थात् पशु, पक्षी, कीट पतंगादि ८४ लक्ष प्रकारके जीवोंकी सृष्टि हुई, पीछे जब यही

८४ लक्ष जीव देहसे पाञ्चभौतिक तेज और ज्योति बहुत परिमाणसे परिष्कार हुआ तब उसी पवित्र तेज और ज्योति द्वारा मानव सृष्टि होनेका आरम्भ हुआ और यह सृष्टि संसारमें बन्द नहीं होगी क्योंकि उन्हीं ८४ लक्ष जीव देहोंसे पाञ्च-भौतिक तेज और ज्योति क्रमसे परिष्कार होते रहेंगे, इसी पवित्र तेज ज्योति द्वारा मनुष्य भी उत्पन्न होते रहेंगे । और कुछ प्रबन्ध नहीं करना होगा उसी ओङ्कारसे इस प्रकार सुप्रबन्ध होकर पहले उसी रज सत्त्व और तमोगुणयुक्त परिष्कार तेज और ज्योति अर्थात् मनुष्य शरीर प्रस्तुत होने के वास्ते जो परिमाण आवश्यक है वह परिमाण एकत्र होकर मानव देहधारी एक महापुरुष और मानव देहधारिणी एक स्त्री (प्रकृति) सृष्ट हुई पीछे देववाणी हुई उसी मानव देहधारी महापुरुष को स्वायम्भुव मनु कहके सम्बोधन किया इसी मनुसे मनुष्य नाम हुआ पीछे वही स्वायम्भुव मनु प्रति फिर देववाणी हुइ "स्वायम्भुव ! उस मानवी रूपा शतरूपा नाम्नी प्रकृति द्वारा रजोगुणमें अपनी वंशवृद्धि करो और जिस भाषामें कथोप-

कथन चलताहै वही भाषा स्थापन करनेके लिये शतरूपाके पाससे देवाक्षर स्वर व्यञ्जन वर्ण किसी समयमें ग्रहण करके उसी द्वारा समस्त वाक्य संसारमें प्रचार करो अर्थात् तुम्हारे वंशोद्भव समस्त मनुष्यको ही उसी संस्कृत देवभाषामें शिक्षा दोगे। यह कठिन गृहस्थ धर्म किस प्रकार अवस्थामें चलसके अर्थात् मानवके जन्मसे मृत्यु तक कौन २ कर्म करना होगा उस समस्त शिक्षाकेवास्ते १ ग्रंथ स्मृतिशास्त्र प्रणयन करके संसारमें प्रचार करना। ऐसा होनेसे इस संसारमें मानवगणको शासन संरक्षण करनेमें कुछ कष्ट नहीं होगा और तुम्हारी सहायताके वास्ते सप्त जन मानवरूपी महापुरुष दैवयोगसे सृजन होकर तुम्हारे निकट जावेंगे, वह लोग संसारके हितके लिये विशेष चेष्टा करेंगे।" इतना मात्र कहके चुप होगयी।

इस ओर दैवयोगसे सप्त जन मनुष्यदेहधारी महापुरुष सृजन हुए और देववाणी द्वारा क्रमसे वही सप्तजन मनुष्योंके नामोच्चारण होने लगे। मरीचि, अत्रि, वशिष्ठ, आङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु।

इसी प्रकार नाम सम्बोधनके अन्तमें फिर देववाणी हुई, 'तुम लोग संसारके हितसाधनके वास्ते सर्वदा सचेष्ट रहोगे, अर्थात् संसारमें जीवात्मा जिस प्रकार मुक्तिलाभ करें उसी अनुसार कार्य करोगे और सम्प्रति तुम लोग समुद्रतीरमें जाकर वही समुद्रके पास दीक्षित होकर ब्रह्मज्ञान लाभ करके पीछे तुमलोग संसारमें स्वायंभुव मनुके पास जावोगे और इसी संसारमें सप्तऋषि नामसे विख्यात होयँगे और जगद्विख्यात होकर जगद्गुरुका कार्य आपही करेंगे।' यह कहकर चुप होगयी।

यह देववाणी सुनकर इधर स्वायंभुव मनु संसारमें प्रवेश करके रजोगुणसे सन्तान उत्पन्न करने लगे; इस प्रकार धीरे धीरे असंख्य वंश बढ़ने लगा, स्वायंभुव मनु बृहत् संसारशासनके वास्ते जो कुछ आवश्यक था सब धीरे धीरे संग्रह करने लगे इधर सप्त ऋषि सुमेरु पर्व्वतसे दक्षिण दिशाको उतरे और देखा कि मनु प्रजापतिसे

१ सुमेरु पर्व्वत पृथ्वीका नाभि देश अर्थात् मध्यस्थान है, इस पृथिवीको शास्त्रकारोंने शिव देवादिदेव महादेव कह कर व्याख्या किया है।

बहुतसी सृष्टि हुई है और होती है, नियमसे एक नगर भी बनगया खाने पीनेकी चीजें भी बिकने लगीं। सप्तऋषियोंने वहींसे दो लोहेके अस्त्र संग्रह करके दक्षिणदिशा की तरफ बहुत नदी, और पर्व्वत इत्यादि लंघन किये। थोड़े दिनके बीच समुद्र तटपर पहुंचे, वे सब उस अथाह अपार जलाकीर्ण सीमाशून्य गम्भीर समुद्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके मनमें विवेक उदय हुआ एक ऋषि बोले कि इसी स्थानमें अपना आसन जमाना उचित है। बहुत निकट जंगल होनेके कारण नाना प्रकारके बहुतसे फल मूल पानेकी संभावना है। इस लिये चलो हम सब उसी जंगलमें जाकर देखें कि फल मूल हैं या नहीं और इसका निश्चय करें। उनके कथनानुसार सब ऋषि जंगलके भीतर गये और नाना-प्रकारके मिष्टफल मूल देखे और थोड़ेसे संग्रह भी किये तब फिर समुद्रके तट पर आये।

एक ऋषिने कहा कि, इस समुद्रका पानी पीनेके योग्य नहीं, इस लिये अब जलकी खोज करना भी अति आवश्यक है। यह सुनकर दो ऋषि

उसी समय उठे और पश्चिम दिशाको चले। थोड़ी दूर जाकर देखा कि उसके सम्मुख एक सरोवरहै।तब एक ऋषिने उसका थोड़ा जल मुँहमें लेकर देखा कि यह खारा है अथवा मिष्ट। जलकी परीक्षा करने के पश्चात् थोड़ा जल लिया, क्योंकि वह जल अति श्रेष्ठ था तब वे दोनों ऋषि बहुत आनन्दके साथ वही जल दो कमंडलुओंमें भरकर समुद्रके तटपर आये और भोजनके अंतमें उसी स्थानपर सप्त आसन प्रस्तुत किये इस प्रकारसे कुछ दिवस बीतनेपर एक समय सातों ऋषियोंने अपने अपने आसनों-पर बैठकर धर्म्मकी आलोचना प्रारम्भ की।

एक ऋषि बोले—देववाणीने जो सदुपदेश दिया था वह आप लोगोंको स्मरण है?

तब दूसरे ऋषि बोले कि हां देववाणीकी आज्ञा है कि समुद्रसे दीक्षित होना चाहिये इस लिये चलो उनके पास चलकर प्रार्थना करें। तब सातो ऋषि आसन छोड़कर समुद्रके तट पर उपस्थित हुए और उनको भक्तिके साथ प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर विनीत भावसे स्तुति करना आरंभ किया-तुम जगतमाता तुम जगतपिता तुम ही जगत-

गुरु पृथ्वीप्रसवनी जीवकी जीवनी जीवमें करुणां-कुर देव हो गुरुदीक्षा यही मात्र भिक्षा चाहते हैं, गुरुजी, आपके पास हम देव उपदेश सुनने आये हैं उपदेश करके कृतार्थ कीजिये। इस प्रकार स्तुति-करते करते एक ऋषि बोले कि एक बार चुप रहकर देखो कि गुरुदेव (समुद्र) क्या कहतेहैं।

एक ऋषि बोले-वही गुरूजी (समुद्र) गंभीर स्वरसे (अउम) शब्द करते हैं।

एक ऋषि बोले-इस शब्दके द्वारा क्या कार्य्य होता है यह देखो।

तब एक ऋषि बोले—कि इस ॐशब्दसे सृष्टि, स्थिति, प्रलय ये तीन कार्य्य देखनेमें आते हैं।

फिर दूसरे ऋषि बोले—कि आपने जो कहा सब सत्य है। देखिये समुद्रमेंसे यह 'अउम्' शब्द होते ही समुद्रका जल ऊपर उठकर कुछ देर तक ठहरकर फट जाता है और ढेउरूपमें परिणत होकर हूँ हूँ शब्द करके भूमिमें फैल जाता है, पीछे लौटकर समुद्रमें ही लीन होजाता है, इससे अ उ म् इन तीन अक्षरोंसे सृष्टि, स्थिति, प्रलय यह तीन कार्य होते हैं।

दूसरे ऋषि कहने लगे—आपने जो कहा सब सत्य है वही अ (सृष्टि) उ (स्थिति) म (प्रलय) इन तीन अक्षरोंसे तीन कार्य्य समझे जाते हैं, और वही तीन अक्षर एकत्र करके उच्चारण करनेसे (ॐ) उच्चारण होता है ।

दूसरे ऋषि बोले—तुमने जो कहा सब सत्य है हम देखते हैं कि इसी अ उ म् शब्दसे तीन गुण (रज, सत्व, तम) का बोध होता है । अ (रज) उ (सत्व) म (तम) रजोगुणसे सृष्टि, सत्वगुणसे स्थिति, और तमोगुणसे प्रलय ।

एक ऋषि बोले—इस अ उ म् शब्दसे एक और आनन्ददायक कार्य्य उत्पन्न होता है, वह यह है कि तीन प्रकारके स्वर भी इस ही अ उ म् से निकलते हैं ।

दूसरे ऋषि बोले कि आपने ठीक कहा अ-से (उदात्त) उ—से (अनुदात्त) म्—से (स्वरित) और इन्हीं तीनोंसे भक्तिजोग भी बनसकता है ।

दूसरे ऋषि बोले कि इन तीनों स्वरोंको ऊंचा नीचा करनेसे सात स्वर और भी बनतेहैं । वह सात स्वर इस प्रकार हैं । सा[१], रे[२], ग[३], म[४], प[५], ध[६]

नि॰। इस प्रकार सात स्वरोंको फिर तीन हिस्सोंमें उलट पुलट करनेसे उनका नाम तेलेना होजाताहै।

एक ऋषि बोले—वही तेलेना चार भागोंमें विभाग करके उलट पुलट करनेसे उसको चतुरंग कहसकते हैं।

दूसरे ऋषि बोले—उसी चतुरंगके द्वारा नाना प्रकारके स्वरोंका उलट पुलट करके बहुत मीठी आवाजसे परमात्माका गुणकीर्तन कर सकते हैं। उसी गीतको ललित करनेके वास्ते अहोरात्रके बीच समयोचित स्वरोंका भेद करनेसे सुंदर मधुर शब्द होता है, उसीको रागिणी कहते हैं।

एक ऋषि बोले—उसी अ उ म् शब्दके द्वारा उसी गीतके साथ एक करके नाना प्रकारके शब्दोंके साथ संगत हो सकता है।

एक ऋषि बोले—हम लोगोंको अ उ म् शब्द सजानेके लिये नाना प्रकारकी चेष्टा करनी चाहिये।

दूसरे ऋषि बोले—आपने जो कहा सब सत्य है, इस संसारका कर्ता भी ओंकार है

अर्थात् ओंकार एक शब्दमात्र है, इस शब्दको पकड़नेसे इस असीम जगतका समस्त तत्त्व विदित हो जायगा ।

तब और एक ऋषि बोले—आपने जो कुछ कहा वह सब ठीक है । अब उसी ओंकार को सजाते सजाते जगतके तत्त्व मिल जायेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है । अब हमने जाना कि यह ओंकार मंत्र गुरुजी (समुद्र) ने हमको उपदेश किया है, यही सिद्ध मंत्र है । इस लिये इसी सिद्ध मंत्रके द्वारा हमको पूर्ण ज्ञान होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है । अब चलो एक बार आसनपर बैठकर विश्राम लें, यह कहकर ऋषि गुरुजी (समुद्र) को प्रणाम करके अपने अपने आसनपर बैठे, आन्दकी सीमा न रही ।

ऋषियोंने इस तरहसे कुछ देर तक विश्राम करके देखा कि सूर्य्य अस्त होनेपर आगया है पश्चिम दिशाकी ओर सूर्य्यदेवने लाल वर्ण धारण किया है, देखनेसे मालूम होता है कि जैसे अग्निकी उत्पत्ति होकर उसी अग्निसे पश्चिम दिशा दग्ध होरही है । ऋषियोंने यह देख कर आसन त्याग

कर खड़े होकर समुद्रकी तरफ दृष्टि करके गुरूजी (समुद्र) को प्रणाम किया और ओंकार उच्चारण करने लगे । इसी प्रकार ओंकार उच्चारण करते करते देखा कि आकाशमंडलमें एक दो तारे प्रकाशित हुए हैं और धीरे धीरे निबिड अंधकार होनेसे शरीरकी रोमावली अदृश्य होगई है । रात्रि बहुत अन्धकारमयी है । ऐसा कहकर ऋषियोंने काष्ठसे काष्ठ घर्षण करके अग्नि उत्पन्न किया । अग्नि उत्पन्न होनेसे अन्धकारका नाश होगया । तत्पश्चात् पहिलेके रक्खेहुए फल मूल इत्यादि भोजन करके अति आनन्दित होकर अपने अपने आसन पर बैठगये ।

प्रथम ऋषि बोले—इस अ उ म् शब्दको कौन करातेहैं और वे किस स्थानमें रहतेहैं? इसकी खोज करना बहुत आवश्यक है ।

द्वितीय ऋषि बोले—अउम् शब्द का जो कर्ता है उसको ऊपरकी ओर ढूँढना चाहिये क्यों कि जो स्वामी होगा वह कभी नीचे नहीं रहेगा। यह सुन सातों ऋषियोंने परस्पर ऊपर देखना आरंभ किया उस दिन कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथी

थी । एक प्रहर तक अन्धकारमय रहा उसी एक प्रहरके अंतमें पर्वकी तरफ बड़े आकारका एक चन्द्र उदय हुआ और धीरे धीरे ऊपरकी तरफ उठने लगा ।

तृतीय ऋषि बोले—वह जो ऊंचा (शून्यमार्गमें) एक ज्योतियुक्त पदार्थ देखतेहैं उस पदार्थके द्वारा जगत्के कौन कौन कार्य्य सम्पन्न होते हैं ।

चतुर्थ ऋषि बोले—इस ज्योतियुक्त पदार्थका जब ह्रास और वृद्धि दोनों हैं तब वह कभी भी कर्ता नहीं होसक्ता है, लेकिन उस पदार्थके द्वारा संसारके जीवोंकी प्राणरक्षा करनेके वास्ते उसी पदार्थके शीतलत्व गुण व भास्करके तेज (गरमी) इन दोनोंसे जगतका कार्य चलता है । इसीसे पृथ्वी खानेक पदार्थ प्रसव करती है, इसीसे जीव आहार करके जीवन धारण करतेहैं ।

पंचम ऋषि बोले—ठीक है कर्ताकी ह्रास वृद्धि क्या है । देखिये जीवके उपकारके वास्ते उसी ज्योतिने शीत और गर्मी इन दोनोंकी सृष्टि की है ।

षष्ठ ऋषि बोले—और कुछ समय तक ठहरो कर्त्ता स्वयम् उपस्थित होजायंगे अब अधिक

विलम्ब नहीं है । इस तरहसे बात चीत करही रहे थे कि पूर्व दिशासे नाना रंग उत्पन्न होने लगे । जैसे विदेशमें पति रहनेसे पत्नी पतिके आनेकी वार्ता सुनकर वसन भूषणसे सुसज्जित होजाती है तैसे ही इधर पूर्वदिशा रजोगुणयुक्त लाल रंगका आकार धारण कियेहुये सूर्य्यदेवके उदय समय[1] नानारंग युक्त मेघमालासे शोभित हुई ।

तब सम ऋषि बोले कि सूर्य्यदेव उदय होगये हैं।

तब प्रथम ऋषि बोले कि सूर्य्यके द्वारा जगत्का क्या क्या कार्य्य साधन होता है ?

द्वितीयऋषि बोले-सूर्य्य नहीं रहनेसे जीवका जीवन नहीं रहता कारण यह है कि किसी प्रकारकी खानेकी चीजें (शस्य इत्यादि) पैदा नहीं होसकतीं । क्यों कि सूर्य्यके तेज द्वारा सकल भूलोकका जल वाष्प होकर ऊंचा उठता है फिर वही वायुके द्वारा बादलके रूपमें परिणत होजाता है । मेघोंके परस्पर घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होता है वही अग्नि मेघके ऊपर जाकर जोरसे वायुको भेद

१ आदिमें (प्रथम जगत्की सृष्टिके समय) इसी सूर्य्यको प्रकृतिशक्तिने ओंकार भास्कर कहकर सम्बोधन किया है ।

करके गिरता है। उसीको वज्रपात या विजलीका गिरना कहतेहैं । इसलिये मेघका मृत्यु (मेघ-वर्षण) होता है। देखनेमें आताहै कि यही सूर्य्य जल और ताप ये दोनों पदार्थ दान करके पृथ्वीमें शस्य आदि प्रसव करतेहैं, और जगत्के समस्त जीव उन्हीं खानेकी वस्तुओं (शस्य आदि) को खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं । इसलिये इसी सूर्य्यसे यह एक प्रधान कार्य्य सम्पन्न होता है।

तृतीय ऋषि बोले—आपने जो कहा यह निश्चय प्रत्यक्ष है इसमें कोई सन्देह नहीं है। हम भी देखते हैं कि सूर्य्यके न होनेसे यह जगत् अंधकारमय रहता है नक्षत्र और चंद्रका उजाला नहीं होता जैसा धातुका वनायाहुआ कोई पात्र रात्रिके अंधकारमें हम कुछ नहीं देखसक्ते हैं परन्तु अग्नि जलानेसे उस पात्रका प्रकाश होताहै, इस प्रकार सूर्य्य नहीं रहनेसे दिन रातमें भेद नहीं होता, जैसे जीवन नहीं रहनेसे देह मृतअवस्थामें होजाता है तैसे ही जगत्की अवस्था होती है। इसलिये हमारा दृढ़ विश्वास है कि सूर्य्य ही जग-

त्का और जगत्के अंदर समस्त जीवोंका जीवन है इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

चतुर्थ ऋषि बोले—आपने जो कहा वह सब ही सत्य है। हम भी देखते हैं कि सूर्य्यसे मनुष्य सम्पूर्ण ज्ञान लाभ करते हैं। मनुष्य जब माताके गर्भसे भूमिष्ठ होता है तब उसका देह और वर्ण अतिकोमल होता है पीछे माताके स्तन पान करते २ धीरे धीरे वर्द्धित होता है, पीछे बाल्यावस्था शनैः शनैः गत होकर यौवनावस्थामें पहुंचता है। इसी प्रकार फिर धीरे धीरे यौवनावस्थाके अंतमें प्रौढा-वस्था आजाती है फिर वृद्धावस्था आती है उसीमें प्राणी देहत्याग करते हैं। हम लोग सूर्य्यकी भी ऐसी ही दशा देखतेहैं, रात्रिके अंतमें जैसे मेघके गर्भसे एक रक्तका पिंड प्रसव होता है इसीको सूर्य्यकी बाल्यावस्था कहना चाहिये पीछे उसी सूर्य्यका तेज (ताप) धीरे धीरे बढ़ता है। फिर मध्याह्नके समयका तेज बहुत प्रखर होजाता है। इसीको सूर्य्यका पूर्ण यौवन काल समझना चाहिये, तत्पश्चात् वह तीसरे प्रहर तक प्रौढावस्थामें रहता है कारण कि सूर्य्यका तेज धीरे धीरे ह्रास होने

लगता है। पीछे तीसरे प्रहरसे सन्ध्या तक सूर्य्यकी वृद्धावस्था होती है और उसी समय सूर्य्य अस्तमित होजाता है । इसीको सूर्यकी मृत्यु कहसक्ते हैं । फिर वही सूर्य्य, जगत्में प्रति दिवस पूर्व दिशामें जन्म लेते हैं । इसलिये सूर्य्यका क्रमसे जन्म लेना और क्रमसे यौवनावस्था तथा प्रौढ व वृद्ध अवस्थामें होकर मृत्यु होना अर्थात् पश्चिममें जाकर लोप होजाना और फिर उसी प्रकार जन्म लेना (पूर्व दिशामें उदय होना) निश्चय प्रतीत कराता है, कि संसारमें सूर्य्यके समान मनुष्योंका जन्म और मृत्यु होता रहता है। इससे मालूम हुआ कि फिर जन्म होता है अर्थात् परजन्म होता है । तब सूर्य्यदेव ही जगदात्मा है और इस आत्माका विनाश भी नहीं है क्यों कि हम सूर्य्यको प्रतिदिवस देखते हैं जैसे सूर्य्यका नाश नहीं ऐसे ही आत्माका भी नाश नहीं अर्थात् सूर्य्य ही जगदात्मा है इसका विनाश नहीं है जीवरक्षाके हेतु केवल भास्करदेव शीत और उष्ण दान करके (दिवारात्रि) शस्यादिकी उत्पत्ति और मनुष्य जीवको ज्ञानदान करते हैं, यही उदय अस्तका कारण है ।

तब पंचम ऋषि बोले--आपने जो कहा सो सब ठीक है हम भी देखते हैं कि सूर्य्यसे और भी कई प्रकारके ज्ञान प्राप्त होते हैं यथा सूर्य्यदेव प्रातःकालमें रजोगुण देते हैं क्योंकि उस समय सूर्य्य लालवर्ण प्रतीत होते हैं उस समय सूर्य्यदेवको सृष्टिकर्ता बोलते हैं फिर मध्याह्नके समय वही सूर्य्य बहुत तेजस्वी होकर सत्त्वगुण देतेहैं क्यों कि सत्त्वगुणसे शस्य आदि उत्पत्ति करके जीवोंका प्रतिपालन करते हैं । इसलिये इन्हीं सूर्य्यको जीवोंके स्थितिकर्ता कहते हैं । फिर सन्ध्या समय वही सूर्य्य तमोगुण दान करते हैं कारण कि वही सूर्य्य अस्तमित होकर तमोगुण देते हैं । जैसे प्रलय अंधकार, रात्रि, निद्रा, मृत्यु, इत्यादि उन्ही सूर्य्यदेवसे सृष्टि स्थिति प्रलय यह तीन कार्य्य त्रिगुण (रजःसत्त्व, तम,) में प्रतिदिन होतेहैं । मनुष्य भी त्रिगुण युक्त रजोगुणमें सन्तानादिसृष्टि करते हैं । सत्त्वगुणसें धनादि उपार्जन करते हैं और उससे सन्तानादिपालन करते हैं । तमोगुणसें वे ही बालकोंको निद्रादेवीका आकर्षण करके सुलाते हैं । जब हमने समुद्रके तटपर यात्रा की थी तब हम संसारमें देख आये थे कि एक बालकको उसकी माता गोदीमें

लेकर निद्रादेवीको सम्बोधन करती थी । अब हम देखते हैं कि वही सूर्य्य त्रिगुण युक्त लेकिन त्रिगुणमें लिप्त न होकर संसारके जीवोंकी रक्षा करते हैं और इसी प्रकार मनुष्य भी त्रिगुणयुक्त हैं परन्तु बद्ध जीवात्मा त्रिगुणमें लिप्त हैं ।

षष्ठ ऋषि बोले—आपने जो कहा सब सत्य कहा क्यों कि सूर्य्य नहीं रहनेसे यह जगत् जड़-पदार्थमात्र है ।

तब सप्तम ऋषि बोले कि सूर्य्यदेव नहीं रहने से यह जगत् जड़ है इसमें कोई संशय नहीं है कारण कि सूर्य्य ही जगत्का आत्मा है और आत्माके बिना देह नहीं रहसकता । जब मनुष्यके देहका पतन होता है तब जगत्का भी पतन निश्चय जानना क्यों कि मनुष्य देह भी एक छोटासा जगत् है । अर्थात् महाब्रह्माण्डकी परमायु चार युग है इसलिये महाब्रह्माण्डकी मृत्यु (प्रलय) बहुत समय पश्चात् होती है और मनुष्यके शरीर (क्षुद्र ब्रह्माण्ड) की परमायु महाब्रह्मांडसे बहुत अल्प है इसी कारण क्षुद्रब्रह्माण्डका पतन पहिले है और महाब्रह्मांडका प्रलय ... ाण्डसे बहुत पीछे है ।

प्रथम ऋषि बोले—अब हमारा कर्तव्य यह है कि भास्करको परिवर्तन करके सूर्य्यनामसे सम्बोधन करें कारण कि जगत्में तेजस्वी पदार्थ सिवाय सूर्य्यके और नहीं है देखनेमें मण्डलाकार (गोलाकृति) स्पष्ट नानावर्ण विशिष्ट, यदि कुछ मलिन भी दृष्ट होता है तो वह रजःसत्व तमोगुण का मल है और यह मैल मिट भी नहीं सकती क्योंकि त्रिगुण तो रहैहीगा। परन्तु त्रिगुणयुक्त सूर्य्यकी जो मलिनता है उसको मानवदेहधारी जीवात्मा नहीं देखसकता कारण कि मानवदेहधारी जीवात्मा त्रिगुणमें लिप्त है।

तब द्वितीय ऋषि बोले कि आपने जो कहा सब सत्य है अउम् शब्दका अधिकारी इसी सूर्य्यमंडलमें वर्तमान है। यह हमारा पूरा विश्वास है। अब सूर्य्यकी उपासनाके सम्बन्धमें किसी तरहका उपाय करना चाहिये। परंतु सूर्य्य मध्याह्नके समय अतितेजस्वी होजाता है और वही समय हमको अधिक आवश्यक है कारण कि उसी समय पूर्णरूपसे सत्त्वगुण प्रकाशित होता है। तब प्रातःकाल चार घड़ी तक सूर्य्यके दर्शन ध्यान जो कुछ काम

करनेकी इच्छा होवे अनायाससे करसकते हैं क्योंकि सूर्य्यका ताप उस वक्त अल्प होता है। और तीसरे प्रहरसे सन्ध्या तक भी सूर्य्यका ताप उसी प्रकार न्यून होता है। तब प्रातःकाल और सायंकाल इन दोनों समयमें हमें सूर्य्यकी उपासना करनेमें कोई कष्ट नहीं होगा परन्तु अब मध्याह्नके दारुण तापको हमारी सामान्य आँखें कैसे सहसकती हैं इसकी व्यवस्था कीजिये।

तृतीय ऋषि बोले कि हमारी समझमें तो दो प्रहरके समय सूर्य्यका प्रतिबिम्ब दर्शन करनेसे हम सबका मनोरथ सिद्ध होजायगा इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। तब सबने आनन्दके साथ कहा कि इसी तरह सूर्य्यका प्रतिबिम्ब दर्शन करनेसे हमारा कार्य्य सिद्ध होगा और अब कोई चिंता नहीं है।

चतुर्थ ऋषि बोले कि अब उपासना सम्बंधमें निश्चिन्त होगए परन्तु हमको समयपर तमोगुण उपस्थित होता है अर्थात् रात्रिके समय निद्रा आती है उसका क्या करना चाहिये इसका विचार करें क्योंकि तमोगुण रहनेसे कोई कार्य्य नहीं होसकता।

पंचम ऋषि बोले-सात्त्विक, राजसिक, तामसिक, यह तीन प्रकारकी सामग्री जगत्‌में उत्पन्न होती है इन तीनों पदार्थोंमें मनुष्योंके लिये सात्त्विक सबसे श्रेष्ठ है।

षष्ठ ऋषि बोले-सात्त्विक भोजनमें क्या क्या पदार्थ हैं उनको तलाश करना चाहिये।

सप्तम ऋषि बोले कि प्याज लहसुन और मृगमांस इत्यादि भोजन करनेसे आलस्य निद्राकी अधिकता बहुत होती है यह तो प्रत्यक्ष फल देखते हैं।

प्रथम ऋषि बोले—गायका दुग्ध और मीठे फल मूल इत्यादि खानेसे मन स्वच्छ रहता है, और खूब आनन्दके साथ समय व्यतीत होता है किसी प्रकारका कष्ट नहीं रहता।

तृतीय ऋषि बोले कि, गायका दूध व मधुर फल मूल इत्यादि सब सात्त्विक खाद्य है, मांस जितने भी प्रकारके होवें व खट्टा मिर्च नमक उरदकी दाल तैल भैंसका दुग्ध व घी इत्यादि यह सब राजसिक पदार्थ हैं इनके

खाने या सेवन करनेसे रजोगुण उत्पन्न होता है, इसलिये हम लोगोंको यह सब पदार्थ, गायका दूध मीठे फल, मूल इत्यादि भोजन करना उचित है।

चतुर्थ ऋषि बोले कि हमारे काम चलनेके लायक कुछ थोड़ेसे ही पदार्थ हम चाहतेहैं, कि कौन कौनसे पदार्थ संसारमें राजसिक हैं और कौन कौनसे सात्त्विक हैं पीछे विचार करेंगे हम लोग गायके दूधसे तथा मीठे फल मूलोंसे भलीभांति अपना जीवन निर्वाह करसक्ते हैं। अव चलिये अपना कार्य्य प्रारंभ करें। यह कहकर सप्तऋषि सूर्य्यका प्रतिविम्ब किसतरहसे दर्शन करेंगे इसका विचार करनेलगे।

प्रथम ऋषि बोले—इस जगह किसी प्रकारका स्वच्छ पदार्थ (स्फटिक प्रस्तर इत्यादि) पानेकी संभावना नहीं है इससे जलके प्रतिविम्बमें सूर्य्यके दर्शन करेंगे परंतु केवल एक पात्रकी आवश्यकता है।

द्वितीय ऋषि बोले—पात्रके वास्ते कोई चिन्ता नहीं है चलिये प्रथम एक बार मृत्तिका तलाश करें क्योंकि मृत्तिकाके द्वारा पात्र तैयार

करेंगे आगमें पकानेसे वह पात्र पक्का होजायगा।

तृतीय ऋषि बोले—आपने जो कहा वह सत्य है लेकिन हमारा इस आसनसे कार्य्य नहीं चलेगा। कारण कि इस जगह सदा हवाका वेग रहता है इसलिये सूर्य्यका स्थिर होकर दर्शन नहीं होसकेगा क्योंकि जलमें प्रवाह होनेसे उसी प्रवाहके साथ साथ सूर्य्यका भी प्रवाह होता है। जलमें और सूर्य्याग्निमें इतना घनिष्ठ सम्वन्ध है।

चतुर्थ ऋषि बोले—हम जिस तालाबका पानी पीते हैं उसीके द्वारा हमारा कार्य्य सम्पन्न होसक्ता है कारण कि उसी तालाबके चारों तरफ जंगल है और बहुत बड़े बड़े वृक्ष भी हैं इसलिये वायु प्रवेश करनेकी संभावना भी नहीं है। इस कारण दो प्रहरको सूर्य्यका बहुत सुन्दर दर्शन होगा। इस कथाके अनुसार सप्तऋषि खूब आनन्दके साथ ठीक दो प्रहरके समय उसी स्थानमें उपस्थित हुए।

प्रथम ऋषि बोले-देखिये तालाव का पानी स्थिर है बस अब कुछ चिन्ता नहीं है केवल बैठनेकी जगह और साफ करके बैठनेसे ही सब कार्य सम्पन्न होंगे । यह देखके सूर्य्य गोलाकार स्थिर होरहा है । सप्तऋषि सूर्य्यदेवको जलके प्रतिबिम्बमें दर्शन करके आनन्दसागरमें मग्न होगए और तालावके तटपर अपने अपने स्थान ठीक करके आसन जमाये और उसी तालावमें स्नान करके सूर्य्यदेवको प्रणाम कर-नेके पश्चात् ओंकार उच्चारण करते करते समुद्र तटपर उपस्थित हुए । पीछे वे सब समुद्रके तटपर खड़े होकर उससे निकलेहुए ओंकार महा-मंत्रके संग अपना अपना स्वर मिलाकर थोड़े समय तक ओङ्कार उच्चारण करतेरहे । पीछे गुरुजी (समुद्र) को प्रणाम करके अपने अपने आसनपर

---

१ अब उसी तालावका नाम श्वेत गंगा होगया है और वह जगह पुरुषोत्तम कलियुगके स्थानसे विख्यात है । रथद्वितीयाके दिन बहुतसे यात्री एकत्र होतेहैं उस जगह इन्ही सप्त ऋषियोंके सात आसनोंके चिह्न अबतक मौजूद हैं और मालूम होताहै कि वे चिह्न प्रलयकाल तक रहेंगे ।

आकर बैठगये तत्पश्चात् भोजनका प्रबन्ध करनेमें तत्पर हुए। पहिले रोजके फल मूल इत्यादि प्रचुर रखे थे इसलिये ऋषियोंने उनको भोजन किया और भोजनके अन्तमें फिर अपने अपने आसनपर बैठे और धर्म्म आलोचना करने लगे।

द्वितीय ऋषि कहनेलगे कि कौनसा कार्य करनेसे शरीर पवित्र रहता है। जैसा कि लिखाहै-"आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्। ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥"

तृतीय ऋषि बोले-कि हमारा बीजमंत्र (ओंकार) उच्चारण और सात्त्विक भोजन इन दो प्रकारकी औषधि समान बातें करनेसे हमारा शरीर पवित्र रहता है।

चतुर्थ ऋषि बोले-शरीर पवित्र होनेके और भी नानाप्रकारके उपाय निकलेंगे परन्तु अभी तक हमको निश्चय नहीं ज्ञात हुआ है जब हमको ज्ञान उत्पन्न होगा तब शरीर पवित्र होनेके वास्ते और भी नाना प्रकारके उपाय तलाश करेंगे।

प्रथम ऋषि बोले–यह तो ठीक है कारण कि मूर्खके द्वारा कोई कार्य संपन्न नहीं होसकता ।

पृष्ठ ऋषि बोले कि आपका कहना सत्य है अज्ञ मनुष्य और जंगलके पशु ये दोनों समान हैं । तब ऋषियोंने उठकर देखा कि अपराह्णकाल होगया है ।

द्वितीय ऋषि बोले–कि अब सूर्य्यदेवकी तरफ यथा कथंचित् देखसक्ते हैं इसलिये इस समय देर नहीं करनी चाहिये, जल्दी चलिये समुद्रके तटपर पहुँचें इसके अनुसार सप्तऋषि आसन त्यागकर समुद्रके तटपर उपस्थित होकर ओंकार उच्चारण करने लगे और पश्चिमकी तरफ मुंह करके सूर्य्यदेवका दर्शन करनेलगे ।

सप्तऋषियोंके इस प्रकार दर्शन करते करते सूर्य्य छुपगया तब ऋषि पश्चिम दिशाके आकाशकी

---

१ इस समुद्रके तटपर सूर्य्यदेवका उदय और अस्तदर्शन होताहै अब इस जगहका नाम स्वर्गद्वार (जिस जगह पुरुषोत्तम दर्शन करके यात्री लोग समुद्रके तटपर जाकर समुद्रकी लहरमें स्नान करते हैं) आजकल इसीको–"जगन्नाथ" तीर्थ कलियुगका धाम कहते हैं ।

तरफ देखने लगे पीछे ओंकार उच्चारण करके गुरुदेवको (समुद्रको) नमस्कार किया और फिर प्रथम ऋषि बोले कि अब चलकर खाने पीनेकी वस्तुओंका प्रबन्ध करना चाहिये । यह कहकर आश्रमकी तरफको चलेगये । आश्रममें जाकर द्वितीय और तृतीय ऋषि जंगलमें गये और वहांसे पक्के फल (केला अमरूद, सीताफल इत्यादि) संग्रह करके ठीक जगहपर आगये । तब सप्तऋषियोंने प्रीतिके साथ उन फलोंका भोजन किया और भोजनके पीछे फिर अपने अपने आसनपर बैठगये ।

द्वितीय ऋषि बोले—हमारा विश्वास है कि सूर्य्यको हृदयमें धारण करके ध्यान करनेसे विशेष फल लाभ होगा ।

तृतीय ऋषि बोले—कि यह बहुत अच्छी बात है। हमारा भी इसमें पूरा विश्वास है कि सूर्य्यात्माको हृदयमें धारण करके ध्यान करनेसे जीवात्मा पवित्र होजायगा । क्योंकि बहुत सी पवित्र वस्तुओंके संगसे थोड़ी अपवित्र वस्तु भी पवित्र होजाती हैं । जैसे समुद्रके जलमें एक

कलश तालाबका पानी डालनेसे उस कलशका पानी भी समुद्रके जलसे मिलकर एकरूप होजाता है ।

चतुर्थ ऋषि बोले—जब सूर्य्यदर्शन होता है तब भ्रूभंगी करके(दोनों भृकुटियोंको जोरसे नीचेकी तरफ करके देखनेको भ्रूभंगी कहतेहैं)उसी आंखके द्वारा थोड़ा जोरसे देखनेसे सूर्य्य सम्पूर्ण दृष्टिगोचर होता है। फिर भृकुटि ऊंची करके सूर्य्यदर्शन करनेसे सूर्य्यमंडलमें बहुत प्रकारका रंग दिखलाई देता है। यह बात सुनकर ऋषियोंने कहा कि हम सबने उसी प्रकार दर्शन किया है। आंखोंमें जोर नहीं देनेसे (भ्रूभंगी नहीं करनेसे) तेजवान् सूर्य्यका पूर्णरूपसे कभी भी दर्शन नहीं होसकता।

इसी तरह ऋषियोंमें बातचीत होतेहोते रात्रि दो प्रहर व्यतीत होगई और अंधकार व समुद्रकी लहरका कलकल शब्द हवाका हूहूशब्द ओंकार शब्द और पशु पक्षी पतंग आदिका शब्द एकत्र होकर भीषण शब्द सुनाई दिया। आकाश मंडल तारोंसे परिपूर्ण होगया कृष्णपक्ष त्रयो-

दर्शीके दिन ऋषियोंने जगत्की अवस्था इसतरहसे दर्शन की इसलिये परस्पर मनमें नाना प्रकारके भाव उदय होनेलगे ।

प्रथम ऋषि बोले-यह तारे क्या पदार्थ हैं इनके द्वारा जगतका कौनसा कार्य्य होताहै ।

द्वितीय ऋषि बोले—शुक्ल और कृष्ण यह दो पक्ष हैं शुक्ल पक्षकी सहायताके वास्ते कृष्णपक्ष है । कृष्णपक्ष नहीं होनेसे शुक्लपक्ष भी नहीं होसकता । जैसे रज, सत्त्व, तम इन तीनों गुणोंमेंसे यदि एक गुण नहीं रहे तो कोई भी गुण नहीं होसकता, अर्थात् एक अग्निकुण्ड जलानेसे उस अग्निका वर्ण रजोगुण, उसी अग्निसे जो उजाला निकला वही सत्त्वगुण और अग्निको तमोगुण समझना चाहिये ।

तृतीय ऋषि बोले कि चन्द्रका ह्रास और वृद्धि सब कोई देखते हैं इस कारण चन्द्रको पूर्ण करनेके वास्ते बड़े २ सब तारे हैं उसी चन्द्रके साथ मिलाकर चन्द्रको पूर्ण करते हैं, जैसे तिथिके अनुसार ज्वारभाटा घटता और बढ़ताहै ठीक

चन्द्रकी अवस्था भी वैसी ही है । लेकिन इन दोनोंका कर्ता सूर्य्य ही है परंतु नक्षत्र नहीं रहनेसे केवल सूर्य्यकी शक्तिसे यह नहीं होसकता, इसी तरह चन्द्र नहीं होनेसे सूर्य्य भी नहीं रहसकता है जैसे काष्ठ नहीं रहनेसे अग्नि नहीं रहसकती इसलिये परस्परकी सहायता विना संसारका कोई पदार्थ नहीं बनसक्ता । जैसे भोजन करनेमें पंचभूतोंकी आवश्यकता है । भोजन तैयार करनेमें पंचभूतोंकी जरूरत अवश्य होती है क्योंकि जल नहीं होनेसे भोजन तैयार नहीं होसकता इसी तरह आकाश अगर नहीं हो तो हम अपनी चीजें किसके अन्दर रक्खें और अग्नि नहीं होनेसे भोजन कैसे पकसकता है । इसी तरह वायु नहीं होनेसे अग्नि नहीं जल सकती और फिर मृत्तिका आदि भोजन बनानेके यंत्र चूल्हा इत्यादि किससे बनावें और किस पर रक्खें और भोजन तैयार करें । इसलिये पृथ्वीतत्त्वकी भी आवश्यकता हुई । इसी तरह हरएक वस्तु बनानेमें पंचभूतों) अग्नि, जल, वायु आकाश, पृथ्वी) की आवश्यकता है । इसीतरह जगतका

कोई पदार्थ विना पंचभूतोंके नहीं वनसकता, तात्पर्य यह है कि हम लोग इस जगत्में आकाश व पाताल तक जितनी प्राकृतिक वस्तु देखते हैं उतनी वस्तुओंमेंसे यदि एक भी कम होजाय तो जगत्का कोई पदार्थ नहीं वनसकता बल्कि यों कहना चाहिये कि यह जगत् ही नहीं रहसकेगा।

चतुर्थ ऋषि बोले कि आपने जो कहा वह सत्य है परंतु इसका वैज्ञानिक विचार पीछे करेंगे अव अपना काम साधन करना मुख्य उद्देश्य है। वह देखिये पर्व दिशा साफ होगई है सूर्य्यदेवका प्रकाश होनेमें अधिक विलम्ब नहीं है, यह वात सुनकर सप्तऋषियोंने अपना अपना आसन त्याग कर समुद्रके तट पर उपस्थित होकर समुद्रकी लहरमें स्नान किया और प्रत्येक ऋषि सूर्य्यकी हृदयमें धारणा करके ध्यान करने लगे। इसी प्रकार ऋषियोंके ध्यान करते २ जगत्का अन्धकार धीरे धीरे दूर होगया। सूर्य्यदेव जैसे समुद्रके पूर्वभागके जलके भीतर अवगाहन करके ऊँचे (आकाश)में लालवर्ण रजोगुण-विशिष्ट धारण करके उदय हुए थे वैसे ही

थोड़ी देरमें ऋषियोंको नील वर्ण धारण करते-हुए दीखे और ऊँचे जलदी जलदी चलने लगे ऋषिगण अतिआनन्दसे उसी सूर्य्यात्माका दर्शन करने लगे। जब सूर्य्यदेव एक प्रहरका रास्ता तै करचुके तब ऋषियोंने सूर्य्यदर्शन त्याग किया कारण कि सूर्य्यका तेज धीरे धीरे वृद्धि होनेसे नेत्रोंको असहन होनेलगा। इसलिये वे तेजस्वी सूर्य्यको हृदयमें धारण करके ध्यान करते करते आकर अपने अपने आसनपर बैठगये। दो प्रहरके समय सप्तऋषियोंका ध्यान भंग हुआ।

प्रथम ऋषिके कहनेके अनुसार सब ही आसन त्याग करके उसी तालावके तट-पर अपने अपने नियत आसनोंपर बैठगये और तालावके पानीके प्रतिविम्बमें सूर्य्यात्माका दर्शन करनेलगे, तब तृतीय प्रहरके समयमें ऋषि अपने अपने आसन छोड़कर तालावके पानीसे स्नान आदि कार्य्य सम्पन्न करके निर्दिष्ट स्थानपर गये। ऋषियोंने भूख प्याससे कातर होकर पहले दिनके लायेहुए फल रखे थे उनका भोजन किया, भोज-नके पीछे हरीतकीफल (हरड) के द्वारा मुह शुद्ध

किया और अपने अपने आसनोंपर बैठकर धर्म्म सम्बन्धी नाना प्रकारकी बात चीत आरम्भ की। ऋषिगण इस तरहसे प्रतिदिन तीन दफा परमात्माकी उपासना करनेलगे और रात्रिके वक्त उसी सूर्य्यात्माको हृदयमें धारण करके ध्यान और चिन्ता करते थे। इस तरहसे सदा आनन्द चित्तसे प्रतिदिन परमात्माकी उपासना करके परमात्माकी विभूति नाना प्रकारसे दर्शन करने लगे। आनन्दकी सीमा नहीं रही। इस तरहसे दो बरस वीतने पर एक दिन रात्रिमें अनुमान तृतीय प्रहरके अन्तमें प्रथम ऋषिने अचानक उठकर नाचना शुरू किया ऋषिको एकदमसे संज्ञाशून्य और नंगे देखकर दूसरे ऋषिगण आश्चर्य युक्त हो और उठकर उनको चिल्लाचिल्लाकर बुलाने लगे परंतु वहां कौन सुनता था कारण कि वे इस जगत्में नहीं थे। ऋषि प्रायः इसी तरहसे एक घड़ी तक रहे अन्तमें संसारमें प्रत्यागमन किया (चेतन प्राप्त हुआ) तब ऋषियोंने अचेत होने व नाचनेका कारण पूछा। उन्होंने जबाब दिया हम सूर्य्यात्माको मनके द्वारा हृदयमें स्थापना करके ध्यान

और चिन्ता करनेलगे उसी समय थोड़ा तमोगुण था समाधि (तन्द्रा) आकर उपस्थित हुई । तब सूर्यदेव एक प्रहर दिन रहनेसे जिस जगह गमन करते हैं ठीक उसी स्थानके पश्चिम आकाशमें चन्द्राकृति स्वर्णवर्ण विशिष्ट एक ज्योतिपदार्थ आँख मूंदकर देखनेसे दृष्टिगोचर हुआ वह पदार्थ चन्द्रसे प्रायः १० गुना बड़ा था । उसके आकाश मंडलमें नक्षत्र और मेघ कुछ नहीं था केवल साफ नीलवर्ण आकाश दीखता था और वहां जीवोंमें केवल हंस (झांपे) थे और पदार्थोंके बीचमें केवल वही निष्कलङ्क गोलाकृति ज्योति थी इसलिये मैं उस पदार्थका दर्शन करके आनन्दमें मग्न होकर खड़ा होगया और पूर्ण आनन्दसे नाचने लगा जैसा कि आपलोगोंने देखा था । इसके पश्चात् मुझको मालूम नहीं कि क्या हुआ । आहा! अब तक भी वह पदार्थ मेरी आँखोंके सामने फिरता हुआ प्रतीत होता है, उस पदार्थकी मैं कहां तक शोभा वर्णन करूं । बस यही कहते बनता है कि मेरी इस छोटीसी जिह्वामें इतनी शक्ति नहीं है जो उस अपूर्व आनंददायक पदा-

र्थकी शोभा वर्णन करसकूं। तथापि मुझको यह प्रतीत होता है कि मैं उस पदार्थको अपने जीवनभर नहीं भूलूंगा। इतना कहकर फिर ओम् शब्द उच्चारण करते करते आँखें मीच लीं। दूसरे ऋषि इनके मुखसे इस प्रकार कथा सुनकर आनन्दपूर्ण कंठस्वरसे कहने लगे कि क्या चिन्ता है हमलोगोंको भी अवश्य किसी न किसी रोज इसी-प्रकार दर्शन प्राप्त होंगे। अतः अब हमको अपना वृथा समय नष्ट करना उचित नहीं है यह कहकर अपने अपने काममें तत्पर हुए। ऋषियोंको पहिले सामान्य तमोगुण (आलस्य) था परंतु प्रथम ऋषिने जब अपूर्व आनन्दमय घटना सुनी थी उसी समय उनका तमोगुण एकदम दूर होगया था। इसी प्रकार सप्तऋषि चित्त लगाकर ब्रह्मोपासना करने लगे। कुछ दिन पीछे क्रमसे प्रत्येक ऋषिको दर्शनलाभ हुआ और वे सब आनन्दमें मग्न होगए। इस कारण ब्रह्मोपासनाके सम्बन्धमें उत्साह बढ़ने लगा। इस तरहसे प्रायः एक वर्षके पीछे परमात्माकी अनन्त प्रकारकी विभूति ऋषियोंके आंखके सामने उदय होने लगी। उस सत्त्व-

विभूति दर्शनके सम्बन्धमें कुछ लिखा नहीं गया है। नानावर्णविशिष्ट पांचभौतिक साधारण ज्योतिके अंदर ब्रह्मज्योति मिश्रितरूप कभी सर्पाकृति कभी मनुष्याकृति और कभी पशु आकृति और कभी पक्षी आकृति कभी स्तंभाकृति और कभी पुष्पाकृति आदि बहुविध रूप देखने लगा।

इस प्रकार ब्रह्मोपासनामें और भी कुछ दिन बीतने पीछे एकदिन एक ऋषि बोले कि मैं आज तीसरे प्रहरके समयमें दो प्रहरके सत्त्वगुणविशिष्ट सूर्य्यात्माको हृदयमें धारण करके ध्यान करने लगा, उस समय अचानक मेरे पाससे अनुमान सात आठ हाथ ऊंचे उसी सूर्य्यमण्डलस्वरूपमें एक तेजोमय पदार्थ देखनेमें आया, जैसे जलमें शोल मत्स्य बहुत गुलाबी रंगके इकट्ठे होकर उलट पलट होतेहैं इसी तरह उस तेजोमय मंडलाकार पदार्थसे सूर्य्यकी किरणके माफिक थोडीसी किरणें आकर मेरी आँखोंमें गिरीं। परंतु वे किरणें गरम नहीं थीं इस तरहसे दर्शन करनेसे मुझको मालूम हुआ कि वही त्रिगुणयुक्त एक ओंकार रजोगुणप्रका-

शमें जगत्के आवश्यक जीव आदि सृष्टि कार्य्य सम्प्रदान करते हैं इसलिये ओंकारके बीचमें (सूर्य्यात्मामें) तीन कार्य्योंके अनुसार तीन रूप वर्तमान हैं। सत्त्वगुणमें विशिष्ट ओंकार हमें ज्ञान देनेके वास्ते त्रिगुणमें तीन प्रकारके रूपमें दर्शन देते हैं। उपस्थित जो रूप था वह रजोगुणविशिष्ट था यह ही मेरा विश्वास है।

यह सुनकर ऋषियोंने कहा कि आपने जो कहा सब सत्य है हमारा भी इसी बातमें विश्वास है। इस तरहसे सप्त ऋषियोंने ब्रह्मोपासना करते करते थोड़े दिनोंमें वही रूप दर्शन किया और धीरे धीरे ब्रह्मोपासनामें और भी उत्साह बढ़ने लगा और उसके साथ साथ ज्ञान भी उदय होने लगा।

इस प्रकार सप्त ऋषियोंके ब्रह्म उपासना करते करते प्रायः एक वर्षके अनन्तर एक दिन एक ऋषि बोले कि आज मैं दो प्रहरके वक्तमें सूर्य्या-

१ जगत आत्मा (सूर्य्यात्मा) में रजोगुणविशिष्ट जो तेजोमय पदार्थ दर्शन हुआ वह तेजोमय पदार्थ ही सारे जगत्के रजोगुणका आकर स्थान है इस लिये उसी स्थानसे जगतमें जीवादि सृष्टिके वास्ते जीवोंको रजोगुण प्राप्त होता है।

रूपाको मनके द्वारा हृदयमें स्थापना करके आँख मीचकर ध्यान और चिन्ता कररहा था कि करीब तीसरे प्रहरके अनुमान सार्धद्विहस्त हमारी आँखसे ऊपर देखनेमें आया कि जैसे दो पद्मपुष्पोंके नीचेकी दोनों डंडियां आपसमें मिलादेनेसे एक गोलाकृति कमल बनजाता है वैसी ही आकृतिका नानावर्णविशिष्ट एक ज्योति चक्रके समान घूमताहै और मेरी नाभिसे कटिदेश पर्यन्त ओंकार शब्दकी एक ऐसी आवाज सुन पड़ती है मानो सौ भ्रमर गुंजार कररहे हों।ओंकार उच्चारण इस प्रकार अति अद्भुत पदार्थ दर्शन करके और मनोहर सुनकर मैं एक बारही मोहित होगया। उस समय मेरा मन इस असारसंसारमें नहीं था। ऐसा दर्शन करते करते प्रायः दो घड़ी होगई परंतु मेरी तृप्ति न हुई। अहा! वह रूप कैसा मनोहर लगा इसके दृष्टान्तके लिये कोई ऐसी वस्तु इस जगत्‌में नहीं दीखती जिससे इसकी तुलना करूं। अस्तु इतना ही कहदेना काफी होगा कि उस पदार्थके समान इस संसारमें कोई वस्तु नहीं है। देखते देखते मेरी आँखोंको इतना आनन्द हुआ कि जिसकी सीमा

न थी नेत्रोंको और कोई वस्तु देखनेकी इच्छा नहीं रही। बस, ऋषि लोग उन ऋषिके मुखसे इस प्रकार आश्चर्य्यजनक कथा सुनकर आनन्दसे अश्रुपात करने लगे और उसको बार बार धन्यवाद देने लगे। पीछे ॐ शब्द उच्चारण करके अपने अपने आसनपर बैठ गए और जगत्की स्थिति धीरे धीरे सोचने लगे। आनन्दकी सीमा नहीं रही, ब्रह्मउपासनाके विषयमें उनको और भी अभिलाष बढ़ी। रजोगुण और तमोगुणवर्जित सप्तऋषियोंने इस प्रकार ब्रह्मोपासना करते करते छे मासमें सबोंने उसी प्रकार दर्शन पालिया। परंतु हमेशाके वास्ते ब्रह्मदर्शन करनेमें उनको कोई उपाय नहीं सूझा।

एक ऋषि बोले—कि हमने एक बार सब (रजः सत्त्व, तमोगुण) पृथक् पृथक् दर्शन किये, इससें हमको यह नहीं समझना चाहिये कि हमने सिद्धि प्राप्त करली जबतक हम लोग सदा इन्ही तीनों रूपोंका दर्शन करनेयोग्य न होंगे तबतक सिद्धि भी प्राप्त नहीं होगी। अर्थात् हमने जो दर्शन किया वह किस उपायसे हमेशा

देखनेमें आवे इसकी चेष्टा करनी अति आवश्यक है ।

तब प्रथम ऋषिने उत्तर दिया—कि हमारे खयालमें पहिले जो पदार्थ दर्शन किया है उसकी धारणा ध्यान और चिन्ता करना उचित है । जब वही रूप सर्व्वदा दर्शनमें आवेगा तब द्वितीय-रूपकी धारणा ध्यान इत्यादिकी चिंता करनी होगी । जब वही रूप सर्वदा दर्शन होगा तब तृतीय रूपकी धारणा ध्यान और चिंता करेंगे । जब फिर सर्वदा वही रूप दर्शन होंगे तब जानेंगे कि हमने परमात्माकी सिद्धि लाभ की ।

तृतीय ऋषि बोले—कि हम लोगोंने पहिले भूल की हमने जब जो दर्शन किया था तबहीसे अगर उसी प्रकार कार्य्य करते तो शीघ्र फल प्राप्ति होती । अब एक रूपकी चिंता करनेसे दूसरा और एक रूप आकर मनमें उदय होगा उसका क्या उपाय करें सो कहिये ।

तब चतुर्थ ऋषि बोले—कि आपका कहना अथवा सिद्धान्त ठीक नहीं है, बस; सबसे उत्तम यही है कि हमने जिस पदार्थको सबके अन्तमें

देखा है वही केवल सत्त्वगुण विशिष्ट है इस लिये वही रूप धारणा करके ध्यान करनेसे हमारा समस्त कार्य्य सिद्ध होगा । आपके कहनेके माफिक कार्य्य करनेसे बारबार सूर्य्य देवकी उपासना करनी होती है हमने जिस प्रकार कार्य्य किये हैं वह सब उत्तम हैं, अन्तमें जो रूप दर्शन किया है वही रूप धारणा ध्यान और चिंता करनेसे हमारा कार्य्य सिद्ध होगा क्योंकि वह केवल सत्त्वगुणविशिष्ट है और चन्द्रमाके आकारका जो पदार्थ हम लोगोंने दर्शन किया है वह भी त्रिगुणयुक्त है इसका प्रमाण यह है कि दर्शनमें रजोगुण रक्तके समान दृष्ट होता है और उसीमें कुछ २ तमोगुण भी दृष्ट होता है इन दो गुणों (रज, तम) से सत्त्वगुण अधिक मालूम होता है यह सब दर्शन ठीक ऐसा ही होता है जैसा कि सूर्य्यके अन्दर, और सूर्य्यका आकार रूप केवल रजोगुणविशिष्ट है परन्तु हम लोगोंको केवल सत्त्वगुणकी ही आवश्यकता है इस लिये उसी सत्त्वगुणाश्रित परब्रह्मका धारणा ध्यान और चिन्ता करना ही उचित है क्योंकि सत्त्वगुण सबके ऊपर

वास करता है उसी सत्त्वगुणके आश्रयसे गुणातीत परब्रह्मको लाभ करनेकी चेष्टा करनी चाहिये इस कारण रजोगुण और तमोगुण दर्शन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । पहिले गुणातीत परब्रह्म जिस जगह है उसके नीचे (जगत्के अन्दर) केवल सत्त्वगुणमें उसी परब्रह्मका एक अंश है उस अंशके नीचे फिर एक परब्रह्मका अंश त्रिगुणयुक्त है (सूर्य्य ही त्रिगुणयुक्त ओंकार है) और फिर उसके नीचे केवल रज और तमोगुण है । इसलिये हमको रज और तमोगुणयुक्त जो पदार्थ हैं उनके दर्शन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम लोग सत्त्वगुणके रास्ते होकर ऊंचे रास्तेमें (जगतके ऊपरकी तरफ) गुणातीत निर्गुण परमात्माका दर्शन करनेकी चेष्टा करेंगे नीचेकी वस्तुओंकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह कहकर चतुर्थ ऋषि चुप होगये ।

यह सुनकर दो ऋषियोंने सोचकर उनसे सम्बोधन करके कहा—कि हमारे विचारमें आपने जो कहा वह सब ठीक है इसमें कोई संदेह नहीं

है। इस लिये हम सबको इसीतरह चलना उचित है, यह कहकर सबोंने ओंशब्द उच्चारण करके त्रिगुणयुक्त सूर्य्यकी उपासनको त्याग दिया और उस पद्मपुष्पके आकार ज्योतिका रूप हृदयमें धारणा करके ध्यान और चिन्ता करना आरंभ किया । और उसी रोजसे ऋषियोंके आनन्दकी कुछ सीमा नहीं रही । इसी प्रकार प्रतिदिन सब ऋषियोंने अपने निज कर्तव्यको करते २ सिद्धि प्राप्तकी ।

एक दिन सप्त ऋषि सात आसनोंपर बैठे हुए थे तब प्रथम ऋषि बोले कि अब हम लोगोंको दीर्घ आयु होनेका कोई उपाय सोचना और यत्न करना चाहिये ।

तब द्वितीय ऋषि बोले—कि शुक्र घनीभूत होनेसे दीर्घ आयु होतीहै । इसमें तो कोई संशय नहीं है, तब शुक्र घनीभूत होनेका एक उपाय यह है कि सात्त्विक भोजन करे सो तो हम लोग करते ही हैं ।

यह सुनकर तृतीय ऋषि बोले—कि केवल शुक्र घनीभूत होनेसेही दीर्घ आयु नहीं होती,

जैसे दीपकमें तेल रहनेसे भी दीपककी आग बुझजाती है और जैसे मकान फूटजानेसे घरके टूटेहुये स्थानमेंसे ज्यादा हवा प्रवेश करके दीपकको बुझा सकती है वैसेही हमारा देह नष्ट होजाय तो केवल शुक्रसे किसी प्रकार भी देहाग्निकी रक्षा नहीं होसकती । इस लिये इसके सिवाय और कोई उपाय निश्चय करना आवश्यक है ।

तब चतुर्थ ऋषिने कहा—कि जरूर इसका और भी कोई उपाय होगा जैसे हम लोग भोजनकी सामग्री चूलेमें आग जलाकर पकाते हैं परन्तु जब चूलेकी आग इन्धन रहनेसे भी बुझ जाती है तब फूंक देकर उसी आगको प्रज्वलित करलेते हैं इसी प्रकार हमारे श्वास प्रश्वाससे देहकी अग्निको प्रज्वलित करसकते हैं । ऐसा हमारा विश्वास है कि चूलेकी अग्निके समान हमारे शुक्रकी रक्षा भली भाँति होसकेगी ।

यह वचन सुनकर पंचम ऋषि बोले—कि अगर मनुष्यके देहकी अग्नि एकदम बुझ जाय तो फिर उस बुझीहुई अग्निको कौन प्रज्वलित

करेगा क्योंकि वह मनुष्य मृतावस्थामें होजाता है जिसकी अग्नि बुझ जाती है उसकी शक्ति इतनी कहां कि फिर वह अपनी देहाग्निको प्रज्वलित करले ।

ऐसा सुनकर षष्ठ ऋषि बोले—कि आपकी बुद्धिको धन्यवाद है निश्चय हमारी चेष्टा ऐसी होनी चाहिये कि जिससे हमारी देहाग्नि हरसमय प्रज्वलित रहै । अब नासिकाके द्वारा थोड़ी थोड़ी हवा सारे शरीरमें प्रवेश करती है इस लिये देहकी अग्नि भी प्रज्वलित रहेगी जिससे किसी प्रकार भी देहाग्नि बुझनेकी शंका नहीं रहेगी। कारण कि देहमें हवाका आवागमन रहनेसे देहकी अग्नि कदापि नहीं बुझेगी । तब आनंदसे जीवात्मा (मैं) देहाग्निके बीचमें वास करेगा और तब मृत्युका भय नहीं रहेगा ।

तब सप्तम ऋषि बोले—कि हमको एक बार परीक्षा करके देखना उचित है ।

तब प्रथम ऋषि बोले—कि परीक्षामें हमारी किसी प्रकारकी हानि नहीं है परन्तु फिर एकबार विशेष रूपसे विचार करके देखना भी तो हमारा

कर्तव्य है हमारी नासिकामें हवाके प्रवेश करनेके दो रास्ता मुख्य हैं और इसी प्रकार और भी रास्ते हैं जैसे दो कान दो चक्षु दो रसना (जिह्वा) (एक जीभ हमारे ठीक तालुके नीचे बहुत छोटीसी ऊपरकी तरफ लटकती हुई है मुह फाड़कर दर्पण द्वारा देख सकते हैं वह पदार्थका स्वाद लेती है और इस बड़ी जीभको मदद करती है) मुख और गुह्य द्वार इत्यादि हैं । इसी प्रकार इनके द्वारा भी शरीरके अंदर हवा गमन करती है। इसी तरह लिंगके भीतर भी दो रास्ते हैं। एकमेंसे मूत्र निकलता है और दूसरेमेंसे वीर्य्य पतन होताहै। असली बात यह है कि हमारी देहमें चन्द्र और सूर्य्य इन दोनोंका अधिकार है और दक्षिणभागकी तरफ सूर्य्यका अधिकार है और वामभागकी तरफ चन्द्रका अधिकार है, इसी कारण मनुष्यके वामांगको चन्द्रांग और दाहिने अंगको सूर्य्यांग बोलते हैं। हम जो कुछ पदार्थ भोजन करते हैं वह ही सूर्य्याग्निमें (देहाग्निमें) परिपक्व होकर शुक्रमें परिणत होताहै और अंतमें वाम

तरफ स्थित होता है देखा जाताहै कि सूर्य्याग्नि (देहाग्नि) को वही चन्द्र[1] रक्षा करता है। कारण कि चन्द्रांगही शुक्रका स्थान है और शुक्रही देहाग्निमें तेलका काम करता है अर्थात् उसीकी रक्षा करताहै। अब यह देखना योग्य है कि किस रास्तेसे होकर किस प्रकार हवा प्रवेश करती है और फिर अशुद्ध होकर निकलती है। यह अवश्य विभिन्न गुणयुक्त है। इस कारण इसे अग्नि सम्बन्धमें खूब सावधानीसे कार्य्य करना उचित है। कारण कि देह सम्बन्धमें कार्य्यके गड़बड़ होनेसे हितमें अहित होजाता है।

---

१ शुक्रही चन्द्रनामसे विख्यात है और उसी चन्द्रको सुधा भी कहते हैं। क्योंकि उसही चन्द्रको पान करनेसे सूर्य्याग्नि प्रकाशमान रहता है जैसे तैल दीपाग्निकी रक्षा करता है वैसेही चन्द्र सूर्य्याग्निकी रक्षा करता है इसीको योग बोलते हैं। अर्थात् उसी चन्द्रको पूर्ण रखनेसे प्राणियोंकी देहरक्षा होतीहै। कारण कि उसी सूर्य्याग्निके बीचमें (जीवात्मा) वास करता है (जीवात्मा) उसी सूर्य्यकी ज्योति है। और इसके बुझ जानेसे जीवात्मा नहीं रहसकता इसीसे इस चन्द्रका ह्रास नहीं हो (शुक्रपतन न होवे) ऐसी चेष्टा करनी चाहिये और इसकी चेष्टा करनेकोही योग बोलते हैं।

पीछे द्वितीय ऋषि बोले—यह मनुष्य देह भी एक छोटा सा जगत् है और यह भी महाजगत्के समान थोड़ासा ब्रह्म अंश है और महाजगत्के गर्भमें इसका वासस्थान है इस लिये महाजगत्के गर्भकी अवस्था जाननेमें कोई कष्ट नहीं होगा क्योंकि इस जगत्में हम गर्भके समस्त पदार्थ देखते हैं। अविनाशी परमात्मा जब जगत्के कर्ता विराट् पुरुषको ही मनुष्य जान सकता है तब इस सामान्य जड़ जगत्की अवस्था जानना क्या कठिन है। इसी कारण सब मनुष्योंको परिश्रम करना चाहिये इसका फल अवश्य मिलेगा।

तृतीय ऋषि बोले—कि देखिये हवा जगतमें एक प्रकारकीही है परन्तु पदार्थोंके संयोगसे पृथक् २ गुणयुक्त होजाती है जैसे गुलाब, चमेली, बेली, जुई, रजनीगंधा, मल्लिका, गंधराज, शेफालिका, कामनी, चम्पा इत्यादि नाना प्रकार सुगन्धित पुष्पोंके संयोगसे बागकी हवा मनोहर होती है वही हवा मनुष्य अति आनंदके साथ ग्रहण करके शरीरकोस्निग्ध करते हैं। तथा

वही हवा मैले स्थानमें मलमूत्रादिसंयोगसे दुर्गन्ध और पीडाजनक होजाती है । जलसंयुक्त हवा (जो नदी या बड़ा तालाब उलांघकर चलती है) बहुत ठंढी और देहको पुष्टिजनक योगियोंको अतिप्रिय होसक्ती है तेजके संयोगसे हवा गरम होती है और जिसके देहमें शीतका प्रकोप है उसके वास्ते हितजनक है अथवा पित्त या वायुप्रधान जो मनुष्य हैं उनके वास्ते वही हवा अनिष्टजनक है। तब योगीके लिये कौनसी हवा उत्तम है इसका निश्चय करना चाहिये, और वृक्ष आदि संयुक्त वायु हमारे लायक है या नहीं इसका भी निश्चय करलेना चाहिये । और दिन-रातमें कौनकौनसी हवा चलती है इसको भी जानना आवश्यक है।

इस प्रकार ऊपरके लिखेहुए प्रश्न चतुर्थ ऋषिने सुनकर कहा—कि केवल योगियोंके लियेही नहीं बल्कि तमाम तन्दुरुस्त मनुष्योंके लिये भी जलसंयुक्त हवा सबसे उत्कृष्ट है। कारण कि नाना प्रकारके स्थानोंसे आईहुई हवा जलमें साफ होकर फिर उत्तम होजाती है.

इसी कारण नदी या समुद्र व बड़े तालाब इत्यादिके तटोंपरकी हवा सब मनुष्योंके सेवनीय है। इस वास्ते ऐसी हवाके लिये समयकी आवश्यकता नहीं है, कारण कि इस जगहकी वायु हरसमय स्वच्छ रहती है (कोई जगह प्रातःकालका वायु विशेष लाभदायक होता है किसी जगह सायंकालका वायु अति लाभदायक होता है इस लिये कहागया है कि तालाब या समुद्र अथवा नदीके तटकी हवा हरसमय साफ रहती है)।

तब पंचम ऋषि बोले—कि इस महाब्रह्मांडके उत्तरदिशामें चन्द्र है और दक्षिणदिशामें सूर्य्यका वासस्थान है यह सब कोई देखते हैं। इसीतरह मनुष्यके भी उत्तर दिशामें (बाईं तरफ) चन्द्र है और दक्षिण दिशामें (दाक्षिणतरफ) सूर्य्य है। चन्द्रकी किरण हमलोग शीतल समझते हैं और सूर्य्यकी किरणें गरम, परन्तु किरण पदार्थ एक ही है इसमें किसी प्रकारका भेद नहीं है। हम चन्द्रकी किरणको इड़ा बोलते हैं और सूर्य्यकी किरणको पिंगला कहते हैं। इसी प्रकार फिर इड़ाको गंगा कहकर व्यवहार किया है कारण

कि यह अपान वायुसे निकलती है इसी कारण इसको शीतल अनुभव करते हैं, एवं सूर्य्यकी किरणको अर्थात् पिंगलाको यमुना[1] कहसकते है कारण कि यह अग्निसे निकली है और इसी लिये हम इसको उष्ण अनुभव करते हैं। इसी तरह फिर इड़ा (चन्द्र) को रजोगुण कह सकते हैं और पिंगला (सूर्य्य) को तमोगुण कहसकते हैं। इन दोनों गुणोंके बीचमें सुषुम्ना है वह सत्त्वगुण विशिष्ट है उसीको सरस्वती कहसकते हैं अर्थात् सुषुम्ना और सरस्वती एकही पदार्थ है इन तीनों (इड़ा पिंगला सुषुम्नाके बीचमें) हीं प्रकृति नामसे परम ब्रह्मका एक अंश मिश्रित होकर वास करता है। उसीके कार्य्यके प्रभावसे नाना प्रकारके नाम होगए हैं जैसे मन, आत्मा, प्राण इत्यादि हैं परन्तु मन, प्राण, आत्मा सब एकही पदार्थ हैं उस एकके ही कार्य्यवश तीन नाम होगये हैं। असली बात

१ यमुनाको इस स्थानमें उष्ण प्रस्रवण कहा यह जलसंयुक्त अग्नि है। तात्पर्य यह है कि वह सूर्य्याग्नि और जलसंयुक्त साधारण अग्नि एकही पदार्थ है। परन्तु उसी साधारण अग्निके अन्दर ब्रह्मांश प्रवेश करनेसे उसे हम विभिन्नरूप दर्शन करते हैं।

यह है कि वह एक आत्मा सब कार्य्य करताहै क्या नाना प्रकारके कार्य्य करनेसे परमात्मा भी नाना प्रकारके होसकते हैं ? कदापि नहीं ।

षष्ठ ऋषि बोले—कि वह केवल ब्रह्मही सत्य है और जगतमें जितने पदार्थ हैं सब मिथ्या हैं क्यों कि इन सबका विनाश देखा जाता है परन्तु केवल उस सत्त्वगुणमें स्थित परब्रह्मका विनाश नहीं है ।

सप्तम ऋषि बोले—कि इस महाजगतके हृदयमें जो सूर्य्याग्नि दृष्टिगोचर होती है उसीमें परब्रह्मकी ज्योति प्रकाशक है यह सर्वसाधारण देख सकतेहैं और सूर्य्यके ऊर्ध्व देशमें व जगत्के ललाटमें जो सत्त्वगुणविशिष्ट साधारण ज्योति स्थित है उस पंचभूतके पंचरंगविशिष्ट कमलाकृति ज्योतिमें उसी ब्रह्मज्योतिका प्रकाश है ।

१ उसी सूर्य्यकी ज्योतिको परमात्माकी शक्ति अथवा चेतनशक्ति कहते हैं । यह समस्त जगत उस अखंड ज्योतिसे ही व्याप्त होरहा है । इस लिये जगन्मय ब्रह्म कहसकते हैं । परन्तु इस ब्रह्मके अंशका ज्योति ही जगन्मय है ब्रह्म अंश नहीं है । साफ ब्रह्मका रूप कोई मनुष्य देख नहीं पाया है । क्यों कि जगत्में अग्नि और ज्योति इन दोनों पदार्थोंमें मिलकर परमात्माकी शक्ति वास करती है ।

किन्तु प्रकाश साधारण मनुष्य नहीं देखसकता यह सत्वपदार्थ (परब्रह्म) जगत्में प्रवेश करके जगतको चेतन अवस्थामें रखता है। जिस समय यह सत्त्व पदार्थ इस जगतको परित्याग करके चला जायगा तब यह जगत् (देह और संसार दोनों) जड़पदार्थ होजायेगा। इस बृहत् जगत्का नाश होनेका प्रमाण यह है कि मनुष्यका देह एक छोटा जगत् है यह पहिले लिखा जाचुका है और यह महाजगत् अर्थात् संसार उस छोटे जगत्से बहुत बड़ा है। अन्तर इसमें और उसमें केवल इतना ही है कि यह (महाजगत्) क्षुद्रजगत्से बहुत काल पश्चात् नष्ट होता है परन्तु इसका नाश अवश्य होता है। कारण कि इस छोटे जगत् (इस देह) का भी तो नाश है हां; इस छोटे जगत्की आयु अल्प है और महाजगत्की अधिक है। इस लिये इस असार और मिथ्या नाशवान् जगतके वास्ते जिससे हमारा कोई सुकार्य्य नहीं होता वृथा अपने असूल्य समयको नष्ट करना मूर्खोंका कार्य्य है।

प्रथम ऋषि बोले—कि खैर अब हम लोगोंको चन्द्र, सूर्य्य, प्राण, अपान, वायु बराबर करके पूरक, कुंभक, रेचक इन तीन रीतियेंके अनुसार योग साधन करना उचित है। मनुष्यके वाम तरफ चन्द्र शीतल है और दक्षिण तरफ सूर्य्य गरम है। इसलिये शीत और उष्ण वायु बराबर करके पूरक कुंभक, रेचक, करनेसे मनुष्यदेह निश्चय ही ठीक रहैगा अर्थात् हमारी नासिकाके दक्षिण और वाम दोनों छिद्रोंद्वारा समान वायु ग्रहण करके यथासंभव कुंभक करने पश्चात् शनैः शनैः रेचक करनेसे हमारे शरीरके भीतर पवित्रता उत्पन्न होगी और इसी कारण इस दुखदायी व्याधिके हाथसे हम लोग मुक्त हो सकेंगे। कारण कि देहकी अग्नि प्रज्वलित रहनेसे देहके आभ्यन्तर मलको जला देगा तब सुतरां पवित्र और आरोग्ययुक्त रहेगा। हमारा शरीर और भोजनके समय वामनासिका रुईसे बंद करना अति आवश्यक है कारण कि भोजनके समय अग्निकी अति आवश्यकता है क्योंकि अग्नि नहीं होनेसे भोजनके पदार्थोंका परिपाक नहीं होसकता

इन सब कार्य्योंको विचार कर मनुष्योंको चलना उचित है इस रीति अनुसार आचरण करनेको ही योगांग कहते हैं। यह जगत् (देह अथवा महा-जगत्) समान भाग शीतसे ठीक ठीक चलता है इसी कारण सूर्य्यदेव छः मास उत्तरायण और छः मास दक्षिणायन रहते हैं। सूर्य्य जब उत्तरायण होते हैं तब गरमी पड़ती है और जब दक्षिणायन होते हैं तब शीत होता है, इस प्रकार शीत और उष्णका समान भाग छः छः मासका करके सूर्य्य देव इस जगत्की रक्षा करते हैं।

द्वितीय ऋषि बोले—कि मैंने एक समय कुंभक करके नेत्र स्थिरकर रक्खे थे उससे दूरकी वस्तु सामने ही प्रतीत होती थी और हमारे नेत्रसे अंदाज डेढ़ हाथ आगे एक मनुष्यकी मूर्तिका दर्शन हुआ और जान पड़ा कि मानो वह भी मेरी तरफ आँख मिला रही है हमको उस समय अति आनंद प्राप्त हुआ। इसलिये नेत्र स्थिर करनेका अभ्यास करना भी हमारा कर्तव्य है।

तृतीय ऋषि बोले-कि यह बात ठीक है, क्योंकि हमने भी एक समय इस प्रकार दर्शन पाकर अति आनंद उठाया है । इसलिये

अब हमको नेत्र स्थिर करनेका अभ्यास करनेके लिये किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है । दिनके समय किसी पहाड़की चोटीपर और रात्रिके समय किसी बड़े नक्षत्रकी तरफ देखनेसे ही हमारा कार्य्य सम्पन्न होसकता है, इसको त्राटक या दिव्यदृष्टि कहसकते हैं ।

चतुर्थ ऋषि बोले—कि यहां पासमें कोई पहाड़ नहीं है इस लिये किसी बड़े वृक्षकी डाली किंवा फल पर लक्ष्य करनेसे भी हमारा मनोरथ सिद्ध होसकता है खैर इसके लिये कोई विशेष चिंता नहीं है ।

पंचम ऋषि बोले—कि और भी एक कार्य्य करना होगा, वह यह है कि हम लोग जो जो वस्तु खाते हैं वह एक दिनमें परिपाक नहीं होसकती है और इस कारण पेटमें हमेशा मल मूत्र आदिक जमा रहता है, वही मल मूत्र साफ करनेके वास्ते कोई उपाय करना चाहिये ।

तब यह बात पंचम ऋषिकी सुनकर षष्ठ ऋषि बोले—कि हमारे पेटके नाभिदेशको श्वासप्रश्वासके द्वारा चारों तरफ घुमानेसे पेटका

समस्त भोजन मल मूत्र इत्यादि एकत्र होजायगा और इसी प्रकार कर्म करनेसे हमेशा पेट साफ रहेगा इस क्रियाको नोलीकर्म्म कहसकते हैं। और श्वास प्रश्वासके द्वारा पीठकी तरफ पेट लगानेसे पेटकी अग्नि वृद्धि होकर पेटका अशुद्ध पदार्थ भस्म करती है और फिर मल मूत्र इत्यादि नीचेके द्वारसे निकल जायँगे तब पेट साफ होजायगा, इसक्रियाको उड्डियान बन्ध कहसकते हैं।

सप्तम ऋषि बोले—आपने जो कहा वह सब युक्तिसंगत है इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु हमारी इच्छा यह है कि पेटके अंदर गुदा द्वारा जल प्रवेश करके पेटके सब असार पदार्थोंको धोकर फिर वापिस उसी द्वारसे त्याग करनेसे पेट एक बारमें साफ होसकता है, इसको वस्ति कर्म्म कह सकते हैं।

प्रथम ऋषि बोले—कि तुमने यह जो कुछ कहा है खूब सोच विचारकर कहा, परन्तु गुदाके द्वारा जल पेटमें प्रवेश करनेका उपाय यही है कि तालाव या नदीके जलमें कमर तक डूबकर दोनों पैर दोनों

तरफ फैलाकर गुदाको संकुचित हठ करनेसे ही जल पेटमें प्रवेश करसकेगा अन्य किसी प्रकारसे नहीं। तब उस जल द्वारा पेटको दहने और बांये तरफ हिलानेसे पेटका तमाम अशुद्ध पदार्थ जो अन्दर जमा है निकल आवेगा, तब गुदा द्वारा अशुद्ध जल सहित मल मूत्र इत्यादि त्यागनेसे पेट एकदम पवित्र होजायगा, परन्तु गुदा द्वार खोलनेका उपाय करना अति आवश्यक है।

तब द्वितीय ऋषि बोले कि प्रथम अंगुली द्वारा गुदाके भीतरसे मलमूत्र इत्यादि सफाई क्रम क्रम बढ़ाना चाहिये। अर्थात् प्रथम दिन एक अंगुली, दूसरे दिन दो अंगुली तीसरे दिन तीन इस प्रकार गुदा द्वार खुलना क्या असंभव है।

तब तृतीय ऋषि बोले—कि यह उपाय तो निश्चय कर लिया परन्तु अब श्लेष्मा नष्ट करनेका उपाय भी सोचना उचित है।

चतुर्थ ऋषि बोले-कि श्लेष्मा नष्ट करनेके वास्ते पवित्र मंत्र ओंकार जपना तथा प्राणायाम करना चाहिये, और रोज प्रातःकालमें किंचित् गायका घृत गरम करके पान करनेसे शरीरके

भीतरकी सब नाड़ी आदि साफ रहेंगी और पेटके ऊपर जो सरदीका स्थान है वह भी साफ होजायगा इस प्रकार कर्म्म करनेसे हम लोगोंको श्लेष्मासे विशेष कष्ट नहीं होगा । ऋषियोंने इस प्रकार युक्ति द्वारा यम, नियम, आसन,प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,ध्यान,समाधि तक अष्टांग योग अभ्यास करके त्रिकालज्ञ (भूत, वर्तमान, भवि-ष्यत् कालोंको जाननेवाले) होगए । आनंदकी सीमा नहीं रही इस रीतिसे सप्तऋषि परम पदको प्राप्त होकर जीवन्मुक्त हुए ।

एक समय सप्तऋषि अपने अपने आ-सनपर बैठकर धर्म्मसम्बन्धमें चर्चा करते करते कहने लगे ।

प्रथम ऋषि बोले—कि इस संसारमें मनुष्योंकी (जीवआत्माकी) मुक्तिके वास्ते हमको क्या करना उचित है ।

तब द्वितीय ऋषि बोले-कि इस असार संसारमें से अगर मनुष्योंकी मुक्तिहेतु कोई उपाय निश्चय करते हैं तो मनुष्योंके जन्मसे मृत्यु-तक उनको क्या क्या कार्य्य करने उचित हैं

यह सब विस्तारपूर्वक वर्णन करके एक ग्रंथ रचना करना उचित है।

तृतीय ऋषि बोले-कि बाल्यावस्थामें नौ वर्षकी अवस्थासे ब्रह्मचर्य्य पालन करना तथा सात्त्विक भोजन करना (गायका दुग्ध, गऊका घृत, मीठे फल इत्यादि) और कड़वा, खट्टा, चरपरा, जियादा नमकीन पदार्थ तथा जियादा मीठा पदार्थ सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि सब पदार्थ रजोगुणी हैं, और मछली मांस, प्याज, लहसुन, मसूरकी दाल, उरद इत्यादि तमोगुणका खाना है, इसलिये इसको भी त्याग करना उचित है। और प्रभातसे संध्या तक अर्थात् प्रभातमें मध्याह्नमें और सायंकालमें इन तीनों समय सूर्य्यकी उपासना करना उचित है, इसी प्रकार चौबीस वर्षकी अवस्था तक इस नियममें चलना इसीको ब्रह्मचर्य्य कहते हैं। ब्रह्म-चर्य्य रखनेका कारण यह है कि चौबीस वर्ष तक मनुष्यका देह बढ़ता है इस बीचमें शरीररक्षा करनेवाला शुक्र किसी तरह बाहर नहीं गिरै ऐसी चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि अपक्व शुक्र-

पतन होजानेसे मनुष्यका शरीर व्याधियुक्त होकर अकालमें मृत्यु होती है।

चातुर्थ ऋषि बोले-कि आपने जो कहा यह प्रत्यक्ष है इसमें कोई सन्देह नहीं है । अब वही सूर्य्य तीनों समय तीन प्रकारके रूप धारण करता है उन तीनों रूपोंके ध्यान करनेका मंत्र रचना करना उचित है।

पांचम ऋषि बोले-कि जो कुछ ओंकारकी व्युत्पत्तिके वास्ते वाक्यद्वारा कहाजायगा वही मंत्रसमान गिनना चाहिये।

षष्ट ऋषि बोरे -कि आपने यह ठीक कहा, यह बहुत ही सुंदर युक्ति है यह कह बहुत कुछ सोच विचार कर इस मंत्रका उच्चारण किया। ॐ भूर्भवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ओम् । और ऋषि षष्ठ ऋषिके मुंहसे यह मंत्र सुनकर बहुत आनन्दित हुए और षष्ठ ऋषिको बारम्बार धन्य-वाद देने लगे।

सप्तम ऋषि बोले-कि इस मंत्रको ब्रह्मगा-यत्री कहसक्ते हैं। परन्तु यह गायत्री मंत्र संक्षेपमें

रचना हुआ है इस कारण साधारण मनुष्य इसको नहीं समझसकेंगे इस लिये इस मूलमंत्रको शनैः शनैः विस्तार करना अति आवश्यक है।

प्रथम ऋषि बोले–कि त्रिलोकीके बीचमें भुवर् लोकमें और चारलोक वृद्धि करसकते हैं। ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यम् ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ। इस प्रकार गायत्री मंत्रको विस्तार करना ही उचित है इस भुवर्लोकमें यह चार लोक और ज्यादे हुए हैं महर्लोक जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक, जो मनुष्य पृथ्वीका अथवा समस्त लोकोंका शासन करनेवाला (राजाधिराज महाराज) है उसको महर्लोक समझना और भुवर्लोककोही जनलोक कहते हैं, क्योंकि जीवमात्र इसी लोकमें जन्म धारण करते हैं और फिर इसी भुवर्लोकमेंसे मृत्यु होती है, इसलिये यह मृत्युस्थान भी है इसलिये इसका मृत्युलोक भी नाम है। इसीको जम्बूद्वीप भी कहतेहैं, भुवर्लोकके बीचमें बहुत आदमी परमात्माके दर्शनके वास्ते तपस्या करते हैं। इस-

लिये इस भुवर्लोकको तपोलोक भी कहते हैं और फिर इसी भुवर्लोकमें तपस्वी परमात्माका दर्शन करनेके वास्ते तपस्या करते करते परमात्माका दर्शन पाकर जीवन्मुक्त होगये हैं। इसलिये इसी भुवर्लोकको सत्यलोक भी कहते हैं।

द्वितीय ऋषि बोले—कि इस मंत्रसे संलग्न ॐकार (सूर्य्यात्मा) का तीनो समय (प्रातःकाल मध्याह्नकाल, और सायंकालके समय) तीन रूपका तीनप्रकार ध्यान करना उचित है। और इस जगत्में कार्य्यके अनुसार ओंकारके तीन नाम रखने उचित हैं वे रूप कल्पनाके द्वारा तैयार करनेसे भी कोई विशेष हानि नहीं है। मूल बात यह है कि असली पदार्थ रहनेसे कोई कर्म्म नष्ट नहीं होता। इस लिये सृष्टिकालमें (ब्रह्मा) रजोगुणविशिष्ट है, स्थितिकालमें (विष्णु) सत्त्वगुणविशिष्ट है, प्रलयकालमें (महेश) तमोगुणविशिष्ट है, परन्तु यह तीनों नाम एक ही पदार्थके हैं। ब्रह्माजी इस जगत्के चारों तरफ उजाला करके ओंकार (सूर्य्यात्मा) रजोगुणसे प्रातःकालके समय

उदय होते हैं इसलिये ब्रह्माजीके चार मुख वर्णन किये हैं । इसी प्रकार ऊपरकी तरफ एक हाथ दूसरा नीचेकी तरफ है । ऊपरकी तरफ जो एक हाथ है वह परमात्माको अर्पण किया ह वह दहिना है और नीचेकी तरफके हाथमें अंडेके समान इस पृथ्वीको (कमण्डलुको) धारण किया है हंस वाहन है (हंस मंत्र अजपा गायत्री कही जाती है) क्योंकि हंस शब्दके अर्थ निःश्वास व प्रश्वासके हैं इसलिये वह सर्व जगद्व्यापक वायुका वाहन है ऐसा ब्रह्माजीका स्वरूप है जो नीचे वर्णन किया गया है । " ॐ आपोज्योती रसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् । प्रथमं रक्तवर्णं चतुर्मुखं द्विभुजम् अक्षसूत्रकमण्डलुधरं हंसवाहनस्थं ब्रह्माणम् । "

तृतीय ऋषि बोले-कि निश्चय यह बहुत सुंदर मंत्र हुआ, इस तरह धीरे धीरे ओंकारका विस्तृत वर्णन करके त्रिसन्ध्याके ओंकारकी (सूर्य्यकी) उपासना सन्ध्याविधि नाम करके एक ग्रन्थ रचना उचित है क्यों कि इससे अज्ञानी मनुष्योंको ज्ञान उत्पन्न होगा और ज्ञान होनेसे परमात्माकी उपासना भी ठीक ठीक होगी।

चतुर्थ ऋषि बोले—आपने जो कहा यह सब सत्य है। मध्याह्नकालके समय सूर्य्यका प्रकाश जगत्में व्याप्त होकर रहता है। इसलिये सारा जगत् ही ब्रह्म है इस कारण परब्रह्मका नाम विराट्रूप या विश्वरूप कहा जासक्ता है और व्यापक होनेसे विष्णु या विरूपाक्ष नाम भी होसक्ता है। अर्थात् यह जितने भी नाम रखेगये हैं जैसे ब्रह्म विष्णु महेश इत्यादि यह सब ओंकारके (सूर्य्यके) नाम होसकते हैं। फिर उसी ब्रह्मके अंश विष्णुको सूर्य्याग्निके बीचमें वास करनेके कारण वैश्वानर भी कह सकते हैं, उसी परब्रह्मने कामरिपुको सृष्ट करके वध किया है इस कारण इस पृथ्वीमें जीवसृष्टिके लिये उसी कामको पंचभूतमें मिला दिया है कारण कि काम नहीं होनेसे पांचभौतिक देह प्रस्तुत नहीं होसकता है मृतदेहका मृत्यु नहीं होसकता है इसहेतु शिवको मृत्युंजय भी कहसकते हैं। अब उन विष्णु वा केशवके कोई हाथ पांव नहीं देखा जाता है किन्तु वह हाथ पावोंका कार्य्य आकर्षणके द्वारा करता है। इस परमात्माके अंशने सूक्ष्म-

देह (सूर्य्याग्नि) के वीचमें प्रवेश करके इस जगत्में ओंकार नामसे विख्यात होकर शंखके आकार पृथ्वीको धारण किया है इसलिये इस शंखके समान पृथ्वीको चार पदार्थकी कल्पनाके द्वारा प्रस्तुत करके वर्णन करसकते हैं। अर्थात् चारों तरफ चारों हाथ और उन चारों हाथोंमेंसे एक हाथमें पृथ्वीके तुल्य शंखको अर्पण कियाजावे और द्वितीय हाथमें शंखके मुख चक्रको समर्पण किया जावे और तृतीय हस्तमें पृथ्वीको गदास्वरूप कहाजावे, और चतुर्थ हस्तमें शंखके सदृश पृथ्वीको पद्मस्वरूप दिया जावे, और गरुडका वाहन अर्थात् रजो और तमोगुणके ऊपर निर्विकार केशव विश्वव्यापक विष्णु सवार हुए हैं ऐसे स्वरूपसे ध्यान करना चाहिये॥ "ॐआपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् हृदि नीलोत्पलदलप्रभं चतुर्भुजं शंखचक्रगदापद्मधरं गरुडारूढं केशवं ध्यायेत् ।

चतुर्थ ऋषि वोले—कि इस पृथ्वी और सूर्य्यके छिपनेके समयको शिव या शम्भु भी कहसकते हैं,

क्योंकि शवसे शिव नाम होसकता है और शिवजीके ललाटमें एक कला चन्द्रकी वर्णन की है उसका कारण भी यही है कि एक कला चन्द्रकी पृथ्वीमें रहती है इसलिये शिव नाम पृथ्वीका ही होसकता है। क्यों कि चन्द्र अपनी १६ कलाओंसे परिपूर्ण नहीं होता। सूर्य्यकी तीन किरणें पृथक् पृथक् पड़ती हैं इसीलिये उन्ही किरणोंको शिवजीके तीन नेत्र सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि, त्रिनेत्र समझसकते हैं और उन्ही तीन किरणोंको त्रिशूल कहसकते हैं। फिर जब समुद्रका जल वेगसे एक शब्दके साथ समुद्रके तट पर पृथिवीके ऊपर सदा आता है और जाता है और ऊपरमें गर्ज्जन होता है और समुद्रमन्थन इन सब तीन शब्दोंद्वारा जो एक शब्द प्रकाश होता है उसीको डमरू कहसकते हैं। इसी प्रकार रजोगुण और

१ सूर्य्य और पृथ्वीको शिव कहनेका तात्पर्य्य यही है कि पृथ्वी जड़ है। इसलिये इसको शव कहा है, कि शव नाम मुरदेका है। और शवसे शिव नाम बनगया कारण कि हम लोग देखते हैं कि हमारी दुनियाका पालक सूर्य भी सन्ध्या समय मृत्युको प्राप्त होजाता है अर्थात् सन्ध्या समय सूर्य्य तेज शून्य होजाता है इसलिये उस समयके सूर्य्यको शिव भी कहसकते हैं।

तमोगुण (वृषभ) शिवके वाहन हैं । अर्थात् मनुष्यको छोड़ जगत्क समस्त प्राणी रज और तमोयुक्त हैं और उनमें सत्त्वगुणका लेशमात्र है । (साधारण ज्योतिके बीचमें यदि ब्रह्मज्योति मिली हुई रहे तो उसको पूर्ण सत्त्वगुण कहसकते हैं) कारण कि सत्त्वगुण थोड़ा नहीं रहनेसे जीवसृष्टि नहीं होसकती है । अर्थात् पशुमें जो सत्त्वगुण है वह बहुत कम है इसी प्रकार शिवका स्वरूप वर्णन करना अति उत्तम है ॥ ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ललाटे श्वेतं त्रिशूलडमरुकरमर्धचन्द्रवृषभस्थं शंभुं ध्यायेत् इसविधिसे सप्त ऋषियोंने धीरे धीरे तीनों समय सूर्य्यदेव (ओंकारकी) उपासनाका मंत्र पृथक् पृथक् तैयार करके सन्ध्याविधि नाम करके एक ग्रंथ रचना किया ।

एक समय सप्त ऋषियोंके धर्म्मआलोचना करते करते एक ऋषि बोले—कि यह त्रिसन्ध्या उपासना भी बहुत संक्षेपसे तयार हुई है इस लिये इसको और भी विस्तारपूर्वक वर्णन करके अज्ञान मनुष्योंको ओंकारकी व्युत्पत्ति सम-

झनी चाहिये तब इस मंत्रकी कथा अखण्ड होगी। अब सन्ध्याविधिका मंत्र सातों भागोंमें विभाग करके हम उसमेंसे एक एक भागको ग्रहण करके एक एक मंत्रको विस्तारपर्वक वर्णन करके धीरे धीरे एकत्र करेंगे ऐसा होनेसे थोड़े दिनोंमें यह बड़ा ग्रन्थ समाप्त होसकता है। यह ग्रंथ तालपत्रमें होना असंभव है कारण कि एकत्र बंधन नहीं होसकते।

सप्तम ऋषि बोले—कि आपने जो कहा सब सत्य है परन्तु ताड़पत्रके समान और कौनसे ऐसे पदार्थमें होसकता है इसका विचार करना चाहिये।

प्रथम ऋषि बोले—कि जो होगा पीछे विचार किया जावेगा। अब बहुत काल व्यतीत होगया एक बार हम लोगोंको स्वायंभुव मनुके साथ मिलना उचित है हम सब मिलके जावें बस अब विलम्ब करनेका समय नहीं है। वे क्या करते हैं हमको देखना चाहिये। यह कहकर सप्त ऋषि अपने अपने आसन त्यागकरके संसारकी ओर मनु प्रजापतिकी खोजमें गये और समुद्रके तटसे उत्त-

रकी ओर चलने लगे। इसी प्रकार चार पांच दिन तक प्रत्येक स्थानपर विश्राम करके वहुत दूर जाने पश्चात् दूरसे उन्होंने एक पर्व्वत देखा।

द्वितीय ऋषि बोले—वह जो सामनेकी तरफ पहाड़ दीखता है उस पहाड़को उल्लंघन करना होगा, पीछे स्वायम्भुव मनुकी राजधानीकी खोज करनेकी सम्भावना है। क्योंकि उत्तराखंडमें उसने राजधानी स्थापना की है।

तृतीय ऋषि बोले—कि इस पर्व्वतकी तो सीमा भी नहीं दीखती है किस तरह जायेंगे इस लिये अब जहां उस पर्व्वतकी निचाई जमीन देखेंगे उसी तरफ हमारा जाना उचित है।

चतुर्थ ऋषि पहाड़की ओर देखकर बोले—कि देखिये, हमारे सामनेकी तरफ पहाड़ क्रमसे नीचा है।

पंचम ऋषि बोले—कि आपने ठीक कहा इस तरह पहाड़की निचाई और कहीं देखनेमें नहीं आती है, इसलिये निश्चय वह रास्ता ही है। यह कहकर ऋषि उसी ओर जाने लगे, थोड़े समयमें पहाड़के निकट पहुंचगए।

पुष्ट ऋषि बोले—कि वह जो एक बड़ा बड़का पेड़ दीखता है उसी वृक्षके मूलमें हमारे आसन स्थापन करना ठीक है।

स्नात ऋषि बोले—हम लोग देखतेहैं कि यहां पर पहाड़के नीचे मिट्टी अधिक नहीं है इस कारण मृत्तिका न होनेसे पेड़ इत्यादि भी बहुत कम हैं और पेड़ इत्यादि जंगली फल मूल न होनेसे जीवहिंसक पशु भी नहीं होंगे। इस प्रकार ऋषियोंने पहाड़को देखकरके बहुत आनंदसे बड़के पेड़के मूलमें अपने अपने आसन स्थापन किये और सब वहां बैठगये।

प्रथम ऋषि बोले—कि इस पहाड़के[1] ऊपर चढ़कर खाद्य द्रव्यकी खोज करना उचित है। और वह जो नदी दीखती है उससे दो कमण्डलु जल लेआओ प्रथम ऋषिके इस प्रकार वाक्य सुनकरके द्वितीय और तृतीय ऋषि अस्त्र

---

१ यह पहाड़ आज कल विन्ध्याचलके नामसे विख्यात है, इसी पहाड़के ऊपर ॐकारेश्वर महादेव स्थापित हैं। बहुतसे साधु उसी ज्योतिर्लिंग दर्शनके वास्ते समय समयपर एकत्र होते हैं और उसी पहाड़के पूर्व्व दिशामें विन्ध्यवासिनी अष्टभुजा देवी स्थापित हैं, उन्हीं देवीके दर्शनके वास्ते समय समय पर बहुत यात्री इकट्ठे होते हैं।

हाथमें लेकर पहाड़के ऊपर चढ़कर इधर उधर देखने लगे, तब द्वितीय ऋषि बोले—कि वह देखिये सामने एक बेल दीखती है उसके पत्ते सकरकन्द आलूके सदृश हैं चलो एकबार परीक्षा करें। यह कहकर दोनों ऋषि उस जगह पर गये और देखा कि वास्तवमें वह आलू ही है द्वितीय ऋषिने अस्त्रके द्वारा मिट्टी खोदकर बहुत मूल संग्रह किया तब थोड़ा समय समझकरके अन्य जगह पर नहीं जाकर ऋषि फिर आसनकी ओर लौट आये। इधर चतुर्थ और पंचम ऋषि उस नदीके पवित्र जलसे कमंडलु पूर्ण करके अपने आसन पर उपस्थित हुए। द्वितीय और तृतीय ऋषिभी खाद्य सामग्री लेकर अपने आसनपर उपस्थित हुए। दिन शेष होने आया तव द्वितीय ऋषि बोले—कि अग्निका क्या उपाय करना चाहिये।

१ आजकल वह नदी नर्म्मदा गंगा नामसे विख्यात है। इस नर्म्मदा गंगाके जलमें एक अस्थि डुबाके रखनेसे तीन चार महीने पीछे उठानेसे वह अस्थि पत्थर होजाता है, यह परीक्षा करके देखा गया है और इस नर्म्मदा गंगामें वाणलिङ्ग महादेव बहुत मिलते हैं। हिन्दू लोग बाणलिंगमें अति भक्तिके साथ परमात्माको पूजते हैं।

तृतीय ऋषि बोले-कि काष्ठकी आवश्यकता है। यह सुनकर षष्ठ और सप्तम ऋषि कुदाली हाथमें लेकर पहाड़के ऊपर चढ़गये पीछे दोनों काष्ठ संग्रह करके फिर आसन पर उपस्थित हुए। द्वितीय ऋषिके दो टुकड़े काष्ठ लेकर घिसनेसे आगकी उत्पत्ति हुई। तब बहुत बड़ा एक कुंड आगका प्रस्तुत किया ऋषियोंने ओंकारशब्द उच्चारण करके उसी अग्निके चारों तरफ अपना अपना आसन जमाया और आसनोंपर सब ऋषि बैठकर वह भोज्य पदार्थ फल मूल आदि अग्नि-कुंडमें थोड़ा थोड़ा सेंककर भोजन करने लगे, और भोजनके अंतमें हरड़े फलके द्वारा मुखशुद्धि की, तब उस समय उनकी आनंदकी सीमा नहीं रही। सन्ध्याके समय आकाशमें एक दो करके तारे दिखलाई दिये। उस रोज शुक्ला चतुर्दशी तिथी थीं चन्द्रदेवके उदय होते समय अत्यन्त सुखकी रात्रि मालुम हुई।

प्रथम ऋषि बोले-पहाड़की शोभा देखिये वह देखो पहाड़के ऊपर और नीचेको समुद्रकी लहरें खेलरहीहैं ऐसा प्रतीत होता है और

नाना प्रकारके पेड़ोंमें अनेक प्रकारके पक्षियोंके झुंड रात्रि व्यतीत करनेके लिये अपने अपने घोसलोंमें बैठकर नाना प्रकारके मीठे स्वरोंसे बोलते हैं। यह नाना प्रकारके मीठे मीठे स्वर एकत्र होनेसे ऐसा मालूम होता है मानो नाना प्रकारके पक्षी एकत्र होकर ॐकार उच्चारण कर रहे हैं। आहा! कैसा मनोहर दृश्य देखनेमें आया बड़ा आनंद है।

इस प्रकार ऋषियोंके इस प्रकार बात चीत करते करते रात्रि प्रायः शेष हुई, पूर्वकी ओर आकाश-मण्डलमें प्रभातके नक्षत्र उदित हुए।

प्रथम ऋषि बोले—अब सूर्य्यदेवके उदय होनेमें अधिक समय नहीं है। चलो सब जने उस नदीमें स्नानादि क्रिया सम्पन्न करें। प्रथम ऋषिका यह वाक्य सुनकर सब ऋषि नदीके तटपर उपस्थित हुए और उसी नदीमें स्नानादि क्रिया करके फिर ठीक जगह पर पहुंचे।

द्वितीय ऋषि बोले—इस पर्व्वतकी शोभा देखनेके वास्ते अपने सब चलकर एकबार पहाड़के ऊपर चढ़ें।

द्वितीय ऋषिके इस वाक्यको सुनकर सप्त ऋषि पहाड़के ऊपर चढ़गये और इधर उधर देखनेलगे।

तृतीय ऋषि बोले—वह देखो पूर्वदिशामें सूर्य्य देवने आकाशमण्डलमें लालवर्ण धारण किया है, फिर इस प्रकार देखते रक्तवर्ण सूर्य्यदेव (ॐकार) उदय होते दीखे जैसे समुद्रकी लहरें ऊंची नीची होती हैं इसी प्रकार सूर्य-किरणोंकी शोभा होरही है (धवलगिरि, हिमालय, नीलगिरि, रजतगिरि, हिंगुलाक्ष, प्रभृति नानारंगविशिष्ट पर्वत सूर्य्यदेवका स्वागत करनेके वास्ते आकर सूर्य्यदेवको चारों तरफसे घेरकर खड़े हैं। ऋषियोंने इस तरहसे नाना प्रकार दर्शन करके वहुत आनंद पाया और तब खानेकी खोज करके देखा कि इस पर्व्वतके फल (खजूर अमरूद आदि) अल्पपरिमाण हैं किन्तु सुस्वादु मूल (कन्द मूल शकरकन्द, रतालू इत्यादि) वहुत मिलते हैं। ऋषियोंने वह फल मूल आवश्यकतानुसार संग्रह करके निर्दिष्ट स्थान पर प्रत्यागमन किया। पीछे ऋषियोंने भोजनका आयोजन करके भोजन

किया। भोजनके अन्तमें प्रथम ऋषि बोले—कि अब हम इस पर्व्वतको उल्लंघन करके स्वायंभुवमनुकी राजधानीका खोज करेंगे अब अधिक विलंब नहीं करना चाहिये। प्रथम ऋषिका ऐसा वाक्य सुन-करके सब ऋषि उठ खड़े हुए और बोले कि चलिये। यह कहकर पहाड़का जो स्थान नीचा था उसी जगहपर जाकर पहाड़पर चढ़गये और उत्तर तरफ जानेलगे।

तीसरे प्रहर वह पर्व्वतको अतिक्रम करके उत्तराखण्डमें उपस्थित हुए। इस प्रकार बहुत दिन तक नाना देश भ्रमण करते २ मनु प्रजापतिकी राजधानीमें पहुंचे, और मनु प्रजा-प्रजापतिको खबर दिया स्वयम्भुव मनु ऋषियोंके आनेकी खबर पाकर बहुत आनन्दित हुए और अन्तःपुरसे बहुत जल्दी आकर ऋषियोंके सामने खड़े होगये और हाथ जोड़कर प्रणामपूर्व्वक बोले कि मुझको आप लोगोंने पहिचाना है या नहीं? तब ऋषिलोगोंने मनु प्रजापतिको हाथ उठाकर आशी-र्वाद दिया और कहनेलगे—महाराज! हम लोगोंको ब्रह्मविद्या अभ्यास करते करते इतना विलम्ब

होगया परन्तु हमारे मनमें सर्व्वदा आपके दर्श-नकी अभिलाषा रहती है कि अब महाराजा हमसे आपका क्या काम होसकता है उसीके लिये आज्ञा-कीजिये, हम लोग तैयार हैं। तब मनु प्रजापतिने ऋषियोंको संग लेकर अपनी बैठकपर प्रवेश करके यथायोग्य स्थानपर ऋषियोंको आसन प्रदान किये।

मनु प्रजापतिने ऋषियोंसे राजधानीके समस्त वृत्तान्त वर्णन करके कहा—कि हमने अपने राज्य-शासनके वास्ते एक संहिता (संसारके मनुष्योंको किस नियमसे चलना चाहिये इसकी व्यवस्थाके लिये स्मृतिशास्त्र) तैयार की है आप लोग पढ़कर देखिये इस पृथ्वीसे शस्यादि किस प्रकारसे उत्पा-दन किया जाता है यह सब इसमें मैंने अपनी मतिके अनुसार दिखलाया है। अथवा मनुष्यको भोजनके वास्ते क्या क्या आवश्यक है और किस प्रकारसे रसोई करके खाते हैं यह भी मनुष्योंके हितार्थ अपनी मतिके अनुसार मैंने विस्तार किया है और भाषा लिखनेके वास्ते जिन जिन पदा-र्थोंकी आवश्यकता है जैसे, कागज, कलम, स्याही

इत्यादि इस पृथ्वीमें किस प्रकार प्रकट होंगे, और लोहेके अस्त्र जो इस संसारमें सर्व्वदा आवश्यक हैं उनके विषयमें भी सब अपने वंशोद्भव मनुष्योंको शिक्षा दी है, और भाषा सीखनेके वास्ते प्रतिस्थानमें एक एक विद्यालय स्थापन किया ह शिक्षक ठीक ठीक शिक्षा देतेहैं, और कपासके द्वारा मनुष्योंके देह आवरणके वास्ते वस्त्रादि बनानेकी मनुष्योंको शिक्षा दी है, तथा क्रय विक्रय होनेके वास्ते सुवर्णमुद्रा, रौप्यमुद्रा, ताम्रमुद्रा इत्यादि सिक्के परमात्माके नामसे अंकित करके प्रस्तुत किये हैं। वह मुद्रा हमारे समस्त राज्यमें चलती हैं और वासस्थान, राजसभा, प्रासाद इत्याबि जो बनाए हैं वे सब आप देख ही रहे हैं। मनोहर और सुन्दर भोजनपात्र और जलपात्र आदि भी बनाये गये हैं। इसी प्रकारके अनेक कार्य्य इस संसारमें किये हैं। सुवर्ण रौप्यके तथा हीरा, पन्ना चुन्नी, मानिक, नीलम, प्रवाल, मोती इत्यादिके अलंकार स्त्रियों और पुरुषोंको सजानेके वास्ते प्रस्तुत किये हैं और हो भी रहे हैं। बाकी इसमें जो कुछ कमी हो सो आप आज्ञा दीजिये

उसके करनेका उद्योग किया जावे। किन्तु सब कार्य्योंसे श्रेष्ठ और आवश्यक एक प्रधान कार्य्य अवशिष्ट है जिसको मुक्ति कहते हैं इसमें आपलोगोंकी इच्छाके अनुसार उत्तम विचार करके प्रचार कीजिये, कारण कि मैं इसमें अच्छा बुरा व उचित अनुचित कुछ नहीं जानता।

सब ऋषियोंने यह वाक्य सुनकर मनु महाराजको धन्यवाद दिया और संहिता पाठ करने लगे। इधर दिन प्रायः शेष होने पर आया और धीरे धीरे सायंकाल हुआ।

तब प्रथम ऋषि बोले—संहिताका पाठ पश्चात् करना अब चलिये कछ विश्राम करें और महाराजाको भी विश्राम लेने दीजिये।

महाराजने कहा हे महात्मागण! ब्रह्मकी उपासना सम्बन्धमें कुछ तैयार है क्या? प्रथम ऋषिने पूर्वोक्त तालपत्रमें लिखाहुआ वही सूर्य्योपासना सन्ध्याविधि निकालकरके महाराजाके हाथमें अर्पण किया। महाराजा उसको अध्ययन करके बहुत आनन्दित हुए और ऋषियोंसे कहा आप लोग अब विश्रामागारमें चलिये। यह कह-

करके महाराजा उठ खड़े हुए ऋषिगण भी महाराजाके संग संग उठकर चलेगए महाराजाने ऋषिगणको साथ लेकर विश्रामागारमें गमन किया।

ऋषिगण महाराजाका विश्रामागार देखकर परस्पर कहनेलगे—महाराज स्वायंभुव मनुने यह मृत्युलोकमें स्वर्गधाम प्रस्तुत किया है, आहा! क्या सुखका स्थान है, यह विश्रामागारके चारों ओर फुलवाड़ी है, इसके सुगंधयुक्त नाना, प्रकारके फलोंके सुगन्धसे चारों ओर आमोदित होरहा है। बागके चारों तरफ शेष सीमामें नाना प्रकार सखाद्य फलोंके पेड़ (लीची, आम-जामुन, शरीफा, अमरूद इत्यादि) भरे हुए हैं। इस प्रकार ऋषि लोग बागकी अवस्था दर्शन करके आश्चर्यान्वित होकर महाराजाको धन्यवाद करने लगे।

इधर महाराजाने ऋषियोंके वास्ते नानाप्रकारकी खानेकी वस्तु तैयार की चर्व्य चुष्य, लेह्य, पेय, षड्रस रसोई कराके उसी विश्रमागारमें जमा करायी उधर ऋषिलोग विश्रामागारका रूप दर्शन करने लगे। विश्रामागार सफेद पत्थरका

बनाहुआ है। देखनेमें जैसा एक पत्थर खोदकरके यह विश्रामागार तैयार किया है। टुकड़ा टुकड़ा पत्थरका जोड़ दीखता नहीं है। और विश्रामागारके बीच और बाहर हीरा, पन्ना, चुन्नी, मानिक, नीलम, प्रवाल, मोती इत्यादि नाना प्रकार प्रकाशमान और नानारंगके बर्तनोंसे रचना किए गये हैं, दीयाकी रोशनीमें देखनेसे मालूम होता है कि मानो नानारंगयुक्त तारे प्रकाश हुए हैं।

जब ऋषि इसप्रकार देखरहे थे उसी समय महाराजाने ऋषियोंको सम्बोधन करके कहा—हे महात्माओ! भोजनके द्रव्य सब तैयार हैं आप लोग भोजन कीजिये। ऋषियोंने महाराजाके वाक्यके अनुसार अति आनन्दके साथ भोजन किया और भोजनके अन्तमें वह अपने अपने आसनपर बैठ गये। महाराजा स्वायंभुवमनुने ऋषियोंसे बिदाई लेकर अन्तःपुरमें प्रवेश किया।

इधर ऋषियोंमेंसे महाराजाका गुणानुवाद करते करते प्रथम ऋषि बोले—यह संसारी मनुष्य किंचित् समयके वास्ते संसारमें आसक्त होकर पीछे क्या होगा यह एकदम भूलजाते हैं,

इस विषयमें क्या उपाय करना चाहिये यह तुम लोग विशेष प्रकारसे सोचो ।

द्वितीय ऋषि बोले—आपने जो कहा वह सच है, परन्तु परमात्माने इस संसारकी स्थिति रखनेके लिये ऐसा एक पदार्थ उत्पन्न किया है कि वह पदार्थ जीवोंको एक बार याद होनेसे ही वह जन्ममृत्युकी कथा एकदम भूलजावेंगे, उस पदार्थका नाम माया (भ्रम) है उसी मायाको बचानेके वास्ते फिर परमात्माने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य्य यह छः ज्ञाननाशक पदार्थ सृष्ट किये हैं । उसकी असाधारण शक्ति है, वह इच्छा करनेसे परमात्माको भी भ्रम जालमें डाल-सकती है। इसलिये मनुष्योंमें यह भ्रम दूर करनेका उपाय सहज नहीं है ।

तृतीय ऋषि बोले—आपने जो कहा वह सत्य ह, विशेष करके कलियुगके मनुष्योंको मुक्त करना बहुत कठिन होगा । प्रथम तो बुद्धि-शक्तिका कर्ता जो सत्त्व (साधारण ज्योति) वह बहुत कम है, उससे फिर अनेक मनुष्य जगतमें उत्पन्न होयँगे इसलिये कलियुगके मनुष्योंको ज्ञान शक्ति अति अल्प रहेगी ।

चतुर्थ ऋषि बोले—आपने जो कुछ कहा है यह सब सच है इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि इन चारों युगोंके मनुष्य सब ही मुक्तिलाभ करेंगे यही परमात्माका उद्देश्य है उस मुक्तिके वास्ते ही हम सातों भाइ-योंको परमात्माने सृष्ट किया है, अब हमारा काम इन चारों युगोंके मनुष्योंको मुक्तिलाभ की ठीक व्यवस्था करना है।

पांचम ऋषि बोले—आपने जो कहा सब सत्य है अब क्या कर्त्तव्य है प्राणायाम और ब्रह्मचर्य्य-व्यवस्था करनेसे ही यह माया (भ्रम) दूर होगी यह हमारा विश्वास नहीं है।

षष्ठ ऋषि बोले—इस संसारकी महामायाको त्याग करनेके और भी बहुत मार्ग हैं अपना वासस्थान परित्याग करके श्मशानमें नहीं तो वनमें या नदीके तटपर एकान्त स्थल (निर्जन-स्थान) में रहनेका स्थान निर्दिष्ट करके उसी स्थानमें आसन लगाना चाहिये, पीछे परमात्माको आकर्षण, धारण, ध्यान, प्राणायाम त्राटक, नौली, बस्ति, उड्डियानबन्ध, जलन्दरबन्ध, इत्यादि और

भी अनेक प्रकारके काम करना होगा, ये सब काम करते करते जब एक आश्चर्य्य पदार्थ दर्शन होगा तब इस संसारके मनुष्योंकी माया (भ्रम) का निश्चय परित्याग होगा ।

सप्तम ऋषि बोले—आपने जो कहा है सब सत्य है इस सम्बन्धमें विस्तारपूर्व्वक लिखनेसे एक बहुत बड़ा ग्रन्थ होगा, इसलिये लिखनेके वास्ते एक बड़ा मजबूत पदार्थ आवश्यक है ।

प्रथम ऋषि बोले—महाराज, जो संहिता लिखी गई है वह भी एक बड़ा ग्रन्थ हुआ है, वह जिसमें लिखी गई है वैसा पदार्थ होनेसे अनायाससे ग्रन्थ लिखा जासकता है और वह पदार्थ महाराजने आविष्कार किया है तब प्रचुर तैयार हुआ है क्योंकि इस संसारमें सबोंको उसी पदार्थकी आवश्यकता है । फिर प्रतिस्थानमें विद्यालय स्थापित किये गए हैं, उनमें लड़के लड़कियोंकी भी इसकी आवश्यकता है इसलिये यह ग्रंथ लिखनेके वास्ते कोई चिन्ताका कारण नहीं है । इस प्रकार ऋषियोंके बात चीत करते करते रात्रिका शेष हुआ, पूर्वदिशाके आकाशमंडलने लाल वर्ण धारण किया ।

प्रथम ऋषि फिर बोले-देखो पूर्वकी तरफ आकाश देखनेसे मालूम होता है जैसे एक बाग धीरे धीरे प्रस्तुत होता है नाना प्रकारके वृक्ष उत्पन्न हुए और होरहे हैं। ऋषियोंके इस तरहसे देखते देखते वाग पूर्णरूपसे प्रस्तुत होगया, पीछे काले रंगके वादलमेंसे लाल वर्णके रजोगुणपूर्ण ओंकार (सूर्य्यदेव) उस वागके ठीक बीचमें प्रकाशित हुए, शोभाकी सीमा नहीं रही। ऋषि लोगोंने उस ओंकार (सूर्य्यदेव) को प्रणाम करके महाराजके वनाए हुए सरोवरमें स्नानादिक्रिया समाप्त की, फिर विश्रामागारमें उपस्थित हुए। इधर महाराज प्रातःस्नानादि क्रिया समाप्त करके ऋषियोंका दियाहुआ ओंकार (सूर्य्यदेव) की उपासना सन्ध्याविधि नामक ग्रंथ पाठ करने लगे। और पाठके अन्तमें बहुत ही आनन्दके साथ ऋषियोंके दर्शनके लिये अन्तःपुरसे विश्रामागारमें यात्रा की और बहुत शीघ्र ऋषियोंके पास उपस्थित हुए। महाराजने ऋषियोंको प्रणामपूर्व्वक यथाविधि स्थानमें बैठाकर उनसे पूछा आपलोगोंको कल कोई कष्ट तो नहीं हुआ? तब ऋषि कहनेलगे—कष्ट

(२ उत्तर) महाराज, आत्मा सर्व्वव्यापक है, जैसे एक घरके बीचमें अग्निकुंड जलानेसे समस्त घरमें ज्योतिप्रकाश होता है वैसे ही ब्रह्म जगत्मय है परन्तु हम देखते हैं कि घरमें रोशनीके रहनेकी जगह वही अग्निकुंड है जैसे चन्द्रमण्डलकी ज्योतिसे समस्त जगतमें प्रकाश फैल जाता है वैसे ही, परन्तु प्रकाशका मूल चन्द्रमा है सारे जगतमें ब्रह्म फैला हुआ है इस जगतमें सूर्य्य उदय होनेसे उस सूर्य्यका प्रकाश समस्तजगतमें होता है। हम देखते हैं उसी सूर्य्यसे ज्योति निकलकर समस्त जगतमें फैल जाती है, परन्तु उस ज्योतिका स्थान वही सूर्य्य है इसी ज्योतिको ब्रह्मज्योति कहते हैं। अब देखना चाहिए कि सर्व्वव्यापक ब्रह्मज्योतिका धारणा ध्यान हो नहीं सकता क्योंकि उसकी सीमा नहीं है, इसलिये उस ब्रह्मज्योतिके रहनेका स्थान सूर्य्य मंडल है उसका ही ध्यान और चिन्ता करना चाहिये।

(३ प्रश्न) यह जगत चेतन है या जड़?

(उत्तर ३) महाराज! यह जगत जड़ पदार्थ ही है परन्तु जितने दिन परमात्मा इस जगतमें

आश्रय करके रहतेहैं उतने दिन यह जगत् रहता है फिर जब इस जगत्को परमात्मा परित्याग करेंगे तब जगत्का लय होजायगा। और जीव-देह एक छोटासा जगत् है, जब जीवदेहको परमात्मा त्याग करता है, तब यह जीव देह जड़पदार्थ मात्र पड़ा रहता है इसलिये महाराज! जब इस छोटेसे देह जगत्का पतन होता है तब इस बड़े महाजगत्का पतन भी निश्चय है, और इस महाजगत्के बीचमें हम जो सब पदार्थ देखते हैं उनके बीचमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार पदार्थ जड़ हैं पहाड़ और उद्भिद् (वृक्षादि) पदार्थ चेतन हैं, कारण कि इनका शरीर धीरे धीरे बढ़ता है क्योंकि, ब्रह्मज्योति परमाणुरूपमें पहाड़ और पेड़ आदिमें पृथक् पृथक् रूपसे प्रवेश करता है। अर्थात् दो परमाणु एकत्र नहीं होते हैं, इसलिये उस पहाड़ वृक्ष इत्यादिको अस्त्रके द्वारा काटनेसे भी उनको तकलीफ़ मालूम नहीं होती है केवल इनके शरीर वृद्धि होनेके कारण इनको चेतन पदार्थ कह-

सकते हैं किन्तु ये उद्भिद् पदार्थ हैं वास्तवमें ये चेतन नहीं हैं, जैसे जीवदेहके भीतर और बाहर जड़ और चेतन पदार्थ दोनों रहते हैं मल, मूत्र, वायु, अग्नि ये पृथक् पृथक् रूपसे अचेतन हैं और नाखून केश इत्यादि उद्भिद् हैं । असली बात यह है कि परमात्मा इस जगत्में जिस पदार्थका आश्रय करता है उसीको चेतन कहते हैं और जिस पदार्थका आश्रय नहीं करता है उसीको जड़ कहते हैं।

(४ प्रश्न) हे महात्माओ! यह जगत् इस प्रकार प्रथम उत्पन्न हुआ है या इसके पहिले भी इस तरह किसी समय हुआ है ।

(४ उत्तर) प्रकृतिआत्माने जिस प्रकारसे यह जगत प्रस्तुत किया है ऋषियोंने उसे विस्तारपूर्वक कहा और बोले कि इस जगतकी परमायु सत्य त्रेता द्वापर कलि ये चार युग होगी। इन चार युगोंके अन्तमें एकएक बार जगतकी सृष्टि और प्रलय होंगे अर्थात् परमाणु समष्टि पृथ्वी और जीवादिदेह फिर परमाणुरूप होकर समुद्रके पानीमें मिलकर यह जगत् जलमय होगा और

चांद सूरज तारे सब ही वर्तमान रहेंगे पीछे फिर पृथ्वी वृक्षादि और जीवादिकी नयी सृष्टि होगी इसलिये महाराज ! जितने दिनतक प्रकृतिआत्मा जीवात्माकी मुक्ति नहीं होगी उतने दिन इस प्रकार चारों युगोंके अन्तमें पृथ्वी व जीवादिकोंका समुद्रके पानीमें लय होगा । और यह जगत् पहले सम्पूर्ण सृष्टिसे आजतक इस पृथिवी और जीवोंकी कितनी बार उत्पत्ति और प्रलय होचुका है यह भी हम निर्णय करनेका यत्न करेंगे और यह जगत् सम्पूर्ण तैयार केवल एकबार ही हुआ है फिर जब समस्त जीवात्मा मुक्त होंगे तब प्रकृतिके एक प्रश्वास द्वारा ये सब पंचमहाभूत और चन्द्र सूर्य्य तारे इत्यादि परमाणुरूप होकर प्रकृतिके अंगमें लयको प्राप्त होंगे इसीको महाप्रलय कहते हैं । पीछे प्रकृतिरूपा परमात्माकी शक्ति और पुरुषरूपी परमात्मा फिर एक अंग होकर रहेंगे ।

(५ प्रश्न) हे महात्माओ ! मेरे वंशमें ४, ५ पुरुष तक जो सब पुत्र और कन्या जनमे हैं उनमें सब बुद्धिमान् और धार्मिक हुए, पीछे कोई कोई

असाधारण बुद्धिमान और कोई कोई विलकुल पशुके समान मूर्ख हैं इसका कारण क्या है?

(५ उत्तर) महाराज! बुद्धिमान् और निर्व्वोध होनेका कारण केवल कर्म्म ही है और कोई दूसरा कारण नहीं है, जब यह पृथ्वी और जीवादि चारो युगोंके अन्तमें समुद्रके पानीमें प्रलीन होजाते हैं तव मनुष्य देह धारी पापात्मा और पुण्यात्मा सब आत्माका अंश सूर्यात्मामें लीन होजाता है किन्तु वह पापात्माका अंश गण सूर्य्यात्मासे पृथक् रहता है जैसे कि पद्मके पत्तेसे पानी अलग रहता है इसलिये पापात्माकी मुक्तिके वास्ते परमात्मा बारंबार चारों युगोंके अन्तमें इस पृथिवीकी रचना करता है, क्योंकि इस पृथ्वीमें मूर्ख पापात्मा गण बारंबार जन्म लेंगे और मुक्तिलाभके कार्य्य करके मोक्षको प्राप्त होंगे इस प्रकार जब समस्त जीव मुक्तिलाभ करेंगे तब परमात्माकी शक्ति एक प्रश्वासके द्वारा परमाणु समष्टि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य्य, तारे इत्यादिको फिर वही परमाणु करके अपने अंगमें लय करके परमात्माके

संग मिलके एक होकर पूर्ण ब्रह्म उसी पूर्ण रूपसे रहेंगे यह ही परमात्माका अभिप्राय है । इसलिये महाराज ! जितने दिन तक यह संसार रहेगा उतने दिन तक मनुष्य देह धारी जीवात्मा इसी तरहसे सुकर्म्म और कुकर्म्मका फल भोग करेंगे और कुकर्म्मके फलसे इनका बारंबार जन्म और मरण होगा और जब सबके पहिले इस जगत् और जीवादिकी सृष्टि हुई थी तब मनुष्यजीवके पाप और पुण्य कुछ भी नहीं थे इसलिये सब मनुष्योंकी बुद्धि शक्ति एक प्रकारकी थी ।

(६ प्रश्न) हे महात्मा! हमारे वंशमें अनन्त मनुष्योंने जन्म लिया है उनके बीचमें कोई कोई मनुष्य काले रंगके होते हैं शरीरकी बनावट खराब होनेसे जिनको देखनेमें घृणा होती है । फिर कोई कोई मनुष्य बहुत ही खूबसूरत होते हैं जिनके शरीर हृष्ट पुष्ट और बहुत ही मनोहर पीतवर्ण और चाकचिक्ययुक्त होते हैं इसका कारण क्या है?

(६ उत्तर) महाराज! मनुष्योंके सुन्दर और कुरूप होनेका कारण केवल कर्म्मका फल है।

जब मातृगर्भमें पितृरूप नानारंग विशिष्ट सूर्य्य-रश्मि उसी विन्दुके भीतर प्रवेश करता है अर्थात् इस जगतमें हम जितने प्रकारके रंग देखते हैं उन सबके रहनेका स्थान सूर्य्यमंडल ही है। मनुष्योंके कर्म्मके अनुसार उस (सूर्य्यमंडल) से रंग मातृगर्भमें प्रवेश करता है इसलिये मनुष्योंका शरीर नाना रंग विशिष्ट होता है। स्थानके अनुसार भी मनुष्योंके शरीरके रंगमें तारतम्य होता है। इस जगतमें कोई कोई स्थान सूर्य्यसे बहुत दूर है इसी कारण किसी किसी जगह केवल शीतऋतु सर्व्वदा रहती है दूसरा कोई ऋतु नहीं होता है, ऐसे स्थानके मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि समस्त जीवोंका देह सफेद रंगका होता है परन्तु मनुष्योंके कर्म्मके अनुसार शरीरकी बनावट सब जगहमें सुन्दर व कुरूप होती है, असली बात यह है कि ऋतुके पलटावसे भी मनुष्य और जीवोंके देहका रंग नानाप्रकारका होता है यह भी निश्चय है जिस देशमें वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर होतेहैं उस देशमें प्राणियोंके देह नाना वर्णके

होतेहैं । और वंशके अनुसारसे भी रंगमें बहुत तारतम्य होता है इसलिये महाराजने देह और वर्णके सम्बन्धमें इस प्रकार बिचारपूर्वक मीमांसा की । अब आपको अगर कुछ कहना हो तो कहिये ।

महाराज बोले—हे महात्माओ, आप लोगोंका उत्तर सुनकर मेरा यह स्वभाव हुआ है कि केवल कर्म्मके अनुसार मनुष्यदेहधारी जीवात्मा फल भोग करते हैं । तब ऋषियोंने उत्तर दिया हां महाराज आपने जो कहा है वह सत्य है ।

(७ प्रश्न) हे महात्माओ, ओंकार जो ब्रह्म प्रणव है इसका तात्पर्य्य क्या है ? यह विस्तार पूर्वक वर्णन करिये । आपका दिया हुआ जो सन्ध्याविधि ग्रन्थ हमारे पास है उसको पाठ करके हमारा चंचल मन बहुत स्थिर हुआ है ।

(७ उत्तर) महाराज ! इस ओंकारका आशय जो मनुष्य जानेंगे वही ब्रह्मदर्शन करनेके अधिकारी होंगे, इस जगतका मूल ओंकार ही है । यह ओंकार ही जगत्का कर्त्ता है अ, उ, म ये तीन अक्षरोंके तीन गुण और तीन गुणोंसे तीन कार्य्य होते

हैं इसलिये इस जगतमें ओंकारसे प्रतिदिन उन्हीं गुणोंद्वारा तीन कार्य होतेहैं अर्थात् 'अ' रजोगुणहै इस रजोगुणसे ओंकारकी शक्तिसे जगतमें जीवादिकी सृष्टि होतीहैं और 'उ' सत्वगुणसे ओंकारकी शक्ति-द्वारा इस जगतमें जीवादिकी स्थिति (पालन) होतीहै 'म' तमोगुण इस तमोगुणसे ओंकारकी शक्तिसे इस जगतमें जीवोंका प्रलय होता है इन तीन गुणोंसे जगत्के बीचमें ओंकारकी शक्तिसे तीन प्रकारके कार्य्य होते हैं। इस ओंकारके बीचमें तीन लोक (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल) हैं इस त्रिलोकीकी ओंकारसे ही रक्षा होती है, इस ओंकारके बीचमें तीन स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) हैं, अ उदात्त, उ अनुदात्त, म स्वरित। फिर इस ओंकारमें तीन शक्ति हैं—इन तीनों शक्तियोंके कार्य्यके अनुसार (ब्रह्माणी, वैष्णवी, रूद्राणीसे तीन ओंकारके नाम होसकते हैं। ओंकारको तीन देवता भी कहसकते हैं क्यों कि पुरुष, प्रकृति एकही पदार्थ है और उसीके कार्य्यके अनुसार (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) ये तीन नाम होसकते हैं फिर इस ओंकारमें तीन कार्य्योंके अनुसार वेदके ऋग्

यजुः साम ये तीन नाम होसकते हैं। इसी प्रकार गुणोंमें तीन तीन प्रकारके अनन्त प्रकार कार्य्य करनेके कारण परमात्माकी शक्तिका नाम ओंकार हुआ है। इसलिये महाराज यह ॐकार ही परब्रह्म बीज है, जैसे किसी वृक्षके फलका बीज जमीनमें बोनेसे एक बड़े आकारका वृक्ष उत्पन्न होता है वैसे ही यह ॐ कार ही ब्रह्मका बीज है इस ॐकारने ही समुद्र-मन्थन द्वारा विराट्-रूपी पृथिवीको उत्पन्न किया है यह ॐकारशब्द परमात्मा अपने मुँहसे सर्व्वदा उच्चारण करता रहता है। जब इस ओंकारका उच्चारण बन्द होजायगा तब महाप्रलय होजायगा। इस ओंका-रके रहनेका स्थान, अग्निमें है। पृथ्वी अग्नि ऋग्वेद और ब्रह्म अर्थात् रजोगुण सब प्रकार अक्षरके साथ मिलेहुये हैं। रजोगुणसे ऋग्-वेदकी उत्पत्ति है। ऋग्वेद नीले रंगका है। सनातन विष्णु अर्थात् सत्त्वगुणयुक्त परमात्मा यजुर्वेद यह उकार अक्षरके साथ मिलाहुआ है, सत्त्वगुणसे यजुर्वेदकी उत्पत्ति है। यजुर्वेद पीत वर्णका है। आकाश, सूर्य्य, सामवेद, महादेव

अर्थात् मृतदेह, प्रलय, तमोगुण ये सब मकारके साथ मिलेहुए हैं । सामवेदकी तमोगुणसे उत्पत्ति है, सामवेद काले रंगका है । गायत्री त्रिष्टुप् जगती ये तीन छन्द ओंकारके बीचमें कहसकते हैं । और अग्नि, वायु, सूर्य्य यह तीन देवता उसी ओङ्कारमें कह सकते हैं और भूत, वर्तमान, भविष्यत् यह तीन काल उस ओंकारके बीचमें हैं। इसलिये महाराज ! ओङ्कारकी व्याख्या और कितनी करें इस समस्त जगतके सृष्टि स्थिति और प्रलयका कारण वही ओङ्कार है।

(८ प्रश्न) हे गुरु देवगण ! यह ब्रह्मप्रणव ओंकार आप लोगोंको किस प्रकार प्राप्त हुआ है यह विस्तारपूर्व्वक वर्णन करके हमारे चंचल चित्तको सुथिर करदीजिये ।

(उत्तर ८) महाराज ! ओंकार शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें और कहना नहीं होगा समुद्रके तटपर उपस्थित होनेसे ही ओंकार शब्दकी उत्पत्ति समस्त जान जायँगे समुद्र ही जगत्के-गुरु हैं, उन समुद्रके पास हम दीक्षित हुए हैं,

आपको भी दीक्षा लेना चाहिये आप हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं और हमारे गुरु भ्राता भी होंगे।

(९ प्रश्न) हे महात्मागण! सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि इन चार युगोंका निर्णय किस प्रकारसे किया और ओंकारका सूक्ष्म रूप किस प्रकार है यह वर्णन करके हमारा सन्देह भञ्जन कीजिये।

(९ उत्तर) ओंकार (सूर्य्य) का उत्तरायण और दक्षिणायन भ्रमण होता है अर्थात् उत्तर और दक्षिण इन दोनों तरफ ओङ्कार (सूर्य्य) आया जाया करते हैं। पूर्व और पश्चिम (उदय अस्त) सीमान्त ओंकार (सूर्य) का भ्रमण प्रत्यह होता है। इस ओङ्कारके सूक्ष्म शरीरमें समग्र जगत्का प्रतिविम्ब और ओङ्कारके बीचमें जो साधारण ज्योति युक्तरूप यह उभयरूप दर्शन करके हमने इन चार युगोंका निर्णय किया है हमने और भी विचार किया है उसी ओङ्कारके सूक्ष्म-शरीरके बीचमें जिस प्रकार विश्वरूप दर्शन होता है ठीक उसी प्रकार विश्वके कर्ताके रूपका भी दर्शन होता है। इसमें बिन्दुमात्र भी व्यतिक्रम नहीं है। किन्तु ओङ्कारका सूक्ष्म देह नानावर्ण

विशिष्ट कमलके आकार और ज्योतिका रूप है और विश्वरूप भी ठीक उसी प्रकार है, परन्तु ओंकारका रूप स्वच्छ है और विश्वरूप कुछ मैला है, इतना ही भेद है यह हमने विशेष प्रकारसे अनुभव किया है। पीछे चार युगोंकी अवस्थाका निर्णय किया है। महाराज! उस ओंकारके चारों तरफ चार घाट हैं, उनके बीचमें उत्तर दिशाका घाट सफेद रंगका है। दो श्वेत पद्म बराबर एकत्र लगानेसे जिस प्रकार दर्शन होता है वैसे ही उन घाटोंका आकार है, इसलिये उत्तरकी तरफ घाटमें कोई रंग नहीं है, परन्तु श्वेतवर्णविशिष्ट सत्यपूर्ण होनेसे सत्ययुगका निर्णय किया है और ओंकारके दक्षिणकी तरफ घाट लालरंगका है। हमने उसी प्रकार दक्षिण ओरके घाटका लाल वर्ण देखकर विचार किया कि यह घाट रजोगुणप्रधान है इसलिये यह घाट त्रेतायुग होना उचित है द्वापरके योग्य नहीं है कारण उस ओंकारके पूर्वकी तरफ रजोगुणका जन्म होकर उसी रजोगुण और तमोगुणके भयसे दक्षिणकी ओर आकर जमा हुआ है। इसलिये ओंकारके

दक्षिणकी ओरके घाटको त्रेतायुग कहा है । यथार्थमें यह बात सत्य है, क्योंकि ओंकारके दक्षिणकी तरफ रजोगुणका प्रादुर्भाव अधिक है । और ओंकारके पश्चिमकी ओर जो घाट है वह पीतवर्ण है। हमने पश्चिमकी ओरके घाटका पीत वर्ण दर्शन करके विचार किया कि इस ओंकारके पश्चिमीय घाटकी सत्त्वगुणसे उत्पत्ति है, इसलिये इस घाटको हमने द्वापर युग निर्णय किया है। और ओंकारके पूर्व्व–दिशाका घाट नीलवर्ण है। हमने ओंकारके पर्व घाटका नीलवर्ण दर्शन करके विचार किया कि इस घाटमें सत्त्वका लेशमात्र रहा है और केवल तमोगुणपूर्ण है, किन्तु रजोगुणका जन्म उसी ओंकारके पूर्व घाटमें हुआ है। हमने इसी प्रकार विचारपर्व्वक ओंकारके पूर्व्वकी ओरके घाटको कलियुग कहकर निर्णय किया है, यह सब केवल विचारमात्रसे स्थिर नहीं किया किन्तु भूत, वर्तमान, भविष्यत् जानकरके निश्चय किया है और हमने ओंकारका रूप सफेद रंगका निश्चय किया है क्यों कि सूर्यज्योति परमात्माकी शक्ति है इसलिये उस ज्योतिका रंग सफेद दर्शन

होता है. यही आखोंसे देखनेका प्रमाण है और इस ज्योतिके रहनेका स्थान वही सूर्य्याग्निके अन्दर है इसलिये वह सूर्य्यात्मा ही ओंकारका सूक्ष्म शरीर है इसमें कोई सन्देह नहीं है, और इस सफेद रंगसे ही समस्त वर्णोंकी उत्पत्ति हुई है यह निश्चय है इसलिये महाराज परमात्माका रूप अरूपरूप कहा जा सकता है ।

सत्ययुगमें मनुष्यका देह इक्कीस हाथ परिमित, त्रेतायुगमें चौदह हाथ, द्वापर युगमें सात हाथ कलियुगमें साढ़े तीन हाथके शरीरका परिमाण अपने हाथके मापसे समझना चाहिये ।

(१० प्रश्न) हे महात्माओ ! जब परमात्माका रूप नहीं है तब परमात्माकी उपासनाके सम्बन्धमें मनुष्य बडे बखेडेमें पड़ेंगे क्यों कि परमात्माके धारणा ध्यान आकर्षण करनेमें सबही असमर्थ होंगे, और धारणा ध्यान आकर्षण नहीं करके परमात्माके लाभ करनेका कोई उपाय नहीं है । इस विषयमें क्या विचार किया और जिस पदार्थका विनाश है उसका धारणा, ध्यान, आकर्षण करनेसे भी परमात्माको लाभ करनेकी कोई

सम्भावना नहीं है, क्यों कि साकार पदार्थका विनाश होता है इस लिये किस प्रकार कार्य्य करनेसे परमात्माका लाभ करसकते हैं ।

(१० उत्तर) महाराज, साकार पदार्थकी ही धारणा ध्यान आकर्षण करना होगा । साकार पदार्थके बीचमें स्थूल पदार्थोंको त्याग करके सूक्ष्म पदार्थोंकी धारणा ध्यान आकर्षण करेंगे क्यों कि इस जगतमें सूक्ष्म देहमें परमात्माके रहनेका स्थान है जैसे घरमें एक दीया जलानेसे सब घरमें प्रकाश होता है इसी प्रकार हमको उसी रोशनीकी आवश्यकता है; अब उस सब घरकी रोशनीका धारणा, ध्यान, आकर्षण नहीं होसकता है; इस लिये घरके प्रकाशके रहनेका स्थान वही प्रदीपाग्नि है, अतः उसी प्रदीपाग्निकी धारणा, ध्यान, आकर्षण करना पड़ेगा इससे सूर्य्यकी ज्योति हमको आवश्यक है इस कारण उस सूर्य्यात्माका ध्यान, धारणा, आकर्षण करना चाहिये, इसी प्रकार कार्य्य करते करते सारे जगत्में उसी प्रकाशका रूपका दर्शन होगा इसमें कोई सन्देह

नहीं है; इसलिये परब्रह्म पानेका उपाय इस उपायके अतिरिक्त और कोई नहीं है, और इसी प्रकार कार्य्य करनेसे निश्चय परमात्माका लाभ होगा। परन्तु वह पवित्र सफेद वर्ण ज्योतीरूप नानावर्णविशिष्ट कमलके फूलके आकार साधारण ज्योतिके बीचमें परब्रह्म मिलकर रहता है, इसी प्रकार योगी लोग इस जगत्में दर्शन करते हैं और योगी लोग योग समाधिके द्वारा निर्लिप्त गणातीत परब्रह्मका दर्शन करते हैं, परन्तु जब समाधियोग शेष होता है अर्थात् फिर जब जीवात्मा इस संसारमें आते हैं तब परमात्माका रूप जीवात्मा भूलजाते हैं, इस लिये परमात्माका कैसा स्वरूप है इसको इस जगत्में कोई भी मनुष्य वर्णन नहीं करसकेगा इस लिये परमात्मा अरूपरूप है।

(११ प्रश्न) मनु प्रजापति ऋषिके मुंहसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पाकर आनन्दके साथ प्रश्न करने लगे-हे महात्मा लोगो! हम इस असीम जगत्के बीचमें रहते हैं इस जगत्के वाहर कोई स्थान है या नहीं हम यह भी समझ सकते हैं कि अगर स्थान नहीं है तो गुणातीत ब्रह्म कहां रहता है?

इस लिये इस जगतके बाहर निश्चय स्थान होगा वह स्थान कैसा है यह वर्णन कीजिये ।

(११ उत्तर) महाराज! इस ब्रह्मांडके बीचमें जैसा मनुष्य देह रूपी अत्यन्त छोटा सा जगत् है उसी प्रकार महाब्रह्माण्डके बीचमें यह ब्रह्माण्ड अनन्त है इन तीन ब्रह्माण्डों तक हमने निश्चय किया है और इसके अतिरिक्त यथार्थ बात यह है कि इसकी शेष अवस्था क्या है यह हम नहीं जानते हैं ।

(१२ प्रश्न) मनुप्रजापति ऋषिलोगोंके प्रति नानाप्रकार प्रश्न करते हैं हे महात्मालोगो! जीवात्मा जब मनुष्यदेह त्याग करेंगे तब उनकी अवस्था कैसी रहेगी ?

(१२ उत्तर) महाराज ! जीवात्मा कर्म्मके अनुसार फल भोग करेंगे, अर्थात् जिसने जन्मसे मृत्यु तक कोई प्रकार पाप नहीं किया परन्तु थोड़ा थोड़ा पुण्यका काम किया है वह जीवात्मा मृत्युके पीछे उसी समय जन्म लेगा और उस पुण्यके प्रभावसे ऊँचे वंशमें जन्म लेगा और जिस जीवात्माने संसारमें मनुष्यदेह धारण करके

मृत्यु तक कोई पाप किया है वह मनुष्यदेह परित्याग करके पहले प्रेतात्मा होगा पीछे वही प्रेतात्मा पापके अनुसार अल्पाधिक समय भोग करके फिर ऊंची या नीच श्रेणीके मनुष्योंके घरमें जन्म लेगा और जिस मनुष्य–देहधारी जीवात्माने कोई पाप या पुण्य कुछ भी नहीं किया उसने देहान्तमें जिस वंशमें जन्म लिया था ठीक उसी प्रकारके वंशमें उसी समय जन्म लेगा उस प्रकारके जीवात्माको प्रेतयोनि नहीं है।

(१३ प्रश्न) महाराज ऋषियोंका इस प्रकार वाक्य सुनकर फिर उनका सम्बोधन करके वोले हेमहात्मा लोगो! इसमें अधिकांश मनुष्य मायामोहमें मुग्ध हो अज्ञातदोषसें अनेक प्रकारके पापोंमें लिप्तहोकर इस गृहस्थाश्रममें ही मृत्युको प्राप्त होयँगे। इस प्रकारके अज्ञानी मनुष्योंकी मुक्तिका कोई उपाय हैं या नहीं? फिर कलियुगमें जब चतुर्थांशका एक अंश सत्य धर्म रहेगा तब तो वड़ी कठिनता है। मनुष्योंकी ज्ञानशक्ति एकदम ह्रासको प्राप्त होगी और कलियुगमें मनुष्योंकी वृद्धि बहुत होगी, उन मनुष्योंको रजो और तमोगुण अधिक रहेगा सत्वगुणका लेश मात्र

रहेगा या नहीं इसमें भी सन्देह है, इस लिये हे माहात्मालोगो! उस कलियुगके मनुष्योंके लिये विशेष प्रकारसे यत्न करना आप लोगोंको नितान्त आवश्यक है, तब ऋषि लोग मनुप्रजापतिका इस प्रकार वाक्य सुनकर महाराजको सम्बोधन करके बोले—महाराज! जगत्के मानव लोगोंके मुक्तिके वास्ते आपका यत्न देखकर हमको आनन्द हुआ। दया ही धर्म्महै। मनुष्य—देहधारीको जो कुछ आवश्यक है वह सब ही आपमें है और संसारके वास्ते हमको कोई चिन्ताका कारण नहीं है इसलिये महाराज, आपके प्रश्नका उत्तर देते हैं सो सुनिये।

(१३ उत्तर) जो मनुष्य इस संसारमें गृहस्थ धर्म्मके अनुसार जन्मसे मृत्यु तक निष्पाप रहकर देहत्याग करे वह दुर्लभ है, सत्वगुणमें दृढ विरले ही देखनेमें आते हैं। और कलियुगमें इस प्रकार रहना कठिन होगा इस लिये पुन्नामक नरक (प्रेतात्मा) से मुक्तिके वास्ते पुत्रको अधिकार होसकता है। क्यों कि पुत्र और पिताके देहमें घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् उन दोनोंका एक देह कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं होगी, इस लिये

वह पुत्र पिताकी प्रेतात्मासे मुक्तिके वास्ते परमात्माके पास प्रार्थना करे कि हे परमात्मन्! हमारा पिता उस पुन्नामक नरकसे मुक्ति पाकर परमात्माका परम भक्त बने, और किसी ब्राह्मणवंशमें जन्म ले और परमात्माका परम भक्त होकर मुक्ति लाभ करे। इस प्रकार पुत्रकी प्रार्थनाके पीछे परमात्माके परमभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिए, क्योंकि उस भोज्य वस्तु से ब्राह्मणोंके वीर्य्यकी उत्पत्ति होगी, उसी वीर्य्यके द्वारा पिता देहधारण करके जन्म लेगा, इसी प्रकार पिताके मुक्तिके वास्ते पुत्र हरएक वर्षके अन्तमें बहुत ही शुद्धिके साथ ब्राह्मणसन्तान और परमात्माके भक्त लोगोंको भोजन करावे क्योंकि एक बार या दो बार भोजनमें जो वीर्य्य उत्पन्न होता है उससे पिताका जन्म होना निश्चित नहीं है, इस लिये पुत्र जितने दिन जीवे उतने दिन वह वर्षके अन्तमें पिताके मृत्यु दिनमें अति श्रद्धा और भक्तिके साथ परमात्माके परमभक्त लोगोंको भोजन करावे और जो मनुष्य पिताकी मुक्तिके वास्ते परमात्माके भक्त लोगोंको अर्थात् सत्पा-

ओंको भूमिदान करेगा उसके पिताकी मुक्तिके वास्ते ब्राह्मण भोजन न करानेसे भी उस पिताकी प्रेत योनिसे मक्ति होसकती है कारण कि उस जमीनपर जो फसल होगी वह फसल प्रत्यह परमात्माके भक्त-लोग भोजन करेंगे इस लिये परमात्माके भक्त वीर्यसे पिताका जन्म निश्चय होनेका संभव है इस लिये महाराज इसकी यही मीमांसा है।

(१४ प्रश्न) परमात्मा और आत्मा ये दोनों विकार-युक्त हैं या निर्विकार? हमारा विश्वास यह है कि आत्मा और परमात्मा ये दोनोंही विकारयुक्त हैं, क्योंकि यह जगत् और जगत्के अन्दर जो पदार्थहैं उन सवको ही परमात्मा और आत्मा इन दोनोंने मिलकर सृष्टि किया है, और ये सव विकारयुक्त हैं, जैसे मनुष्य देहधारी जीवात्मासे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह सन्तान भी विकारयुक्त होती है । यदि आत्मा और परमात्मा विकारयुक्त न हों तो उनका कार्य जगत् विकारयुक्त कैसे होसक्ता है । अवश्य आप लोग त्रिकालज्ञ हैं इस जगत्में सव ही देखतेहैं इस लिये अनुग्रह करके हमारे सन्देह दूर कीजिये ।

(उत्तर १४) महाराज ! यह आपका विचार ठीक नहीं है; परमात्मा और आत्मा ये दोनों ही निर्विकार हैं जिस पदार्थका स्थूलशरीर नहीं है उसमें क्या विकार होसक्ता है परमात्मा और आत्मा ये दोनों एकही पदार्थ है । केवल इस जगत्की सृष्टिके वास्ते पूर्ण परमात्मा समान दो अंशोंमें विभक्त हुए हैं इन दोनों अशोंके बीचमें पूर्ण परमात्माका वाम अंग प्रकृति आत्मा है और पर्ण परमात्माका दक्षिण अंग पुरुषरूपी परमात्माके वामांगमें चार भूत परमाणु व्यष्टिरूप हैं और उन चारों भूतोंके योगसे जो रजः सत्त्व तमोगुण चन्द्र सूर्य्य तारे अर्थात् जगतके बीचमें ऊपर और नीचे जो सब पदार्थ देखनेमें आते हैं वह सबही परमाणुरूप हवाके साथ मिले हुए थे। इस लिये महाराज! अब विचार करके देखिये यह जगत् और जगत्के बीचमें जो सब पदार्थ देखनेमें आते हैं वे सब परमाणुरूप वायुके संग प्रकृतिके अंगमें मिले हुए थे वे होनेसे प्रकृतिआत्माका विकार कहा है, इस लिये इन चार भूतोंकी परमा-

णुरूप अवस्थामें कोई विकारका कामही नहीं होसकता है; क्योंकि वे परमाणु जड़ पदार्थ मात्र हैं इस लिये क्रियाविहीन हैं। इन चार भूतोंके चार प्रकारके परमाणु हैं वे एक प्रकार परमाणु समष्टि होकर बृहदाकारमें परिणत हुए हैं। मृत्तिका और प्रस्तरके परमाणु समष्टि होकर इस पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है। फिर वाष्परूपी जलके परमाणु समष्टि होकर इस असीम समुद्र जलकी उत्पत्ति हुई हैं। अग्निके परमाणु समष्टि होकर इस जगत्में नीचे और ऊपर एक बृहदाकारमें अग्निकी उत्पत्ति हुई है। फिर वायुके परमाणु समष्टि होकर इस जगत्में नीचे और ऊपर एक बृहदाकारमें वायुकी उत्पत्ति हुई है पीछे इन चारों पदार्थोंके मूल भागके संयोगद्वारा षड्रिपुयुक्त एक देह प्रस्तुत हुआ है इस लिये महाराज ! जबतक इस प्रकार इन चारों पदार्थोंका संयोग नहीं होगा अर्थात् स्थूल शरीर नहीं होगा तबतक रिपुसृष्टि नहीं होसकती है? इस कारण पुरुषरूपी परमात्मा और आत्मा ये दोनों निर्विकार हैं।

हे महात्मा लोगो ! संसार मायामय है यह हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। जबतक मनुष्यके मनमें माया मोह वर्त्तमान रहेंगे तबतक परमात्माका दर्शन होना असंभव है इस लिये माया मोहमें परमात्माका दर्शन किस प्रकार होसक्ता है। यह विस्तारपूर्वक वर्णन करके हमारे मनका सन्देह दूर कीजिये।

(१५ उत्तर) महाराज ! परमात्मा निर्विकार गुणरहित स्थानमें वास करता है और जगतके बीचमें केवल सत्त्वगुणयुक्त महात्मा और त्रिगुण-युक्त जगदात्मा है लेकिन यह गुणमें लिप्त नहीं है। जैसे पद्मका पत्ता जलमें लिप्त नहीं इस लिये पूर्ण तेज और पूर्ण ज्योतिके बीचमें महात्मा और जगदात्मा वास करनेके कारण वह शक्ति-मान और पूर्ण तेजस्वी है, और मनुष्य देह-धारी जो जीवात्मा है वही त्रिगुणमें लिप्त है इसका कारण यह है कि जीवात्माकी शक्ति अति अल्प है। अर्थात् जीवात्माके रहने की जगह वह देहाग्नि है उस देहाग्निकी रक्षा करनेवाला शुक्र है जैसे कि दीपाग्निकी रक्षा तैल करता है मनुष्य

विकारयुक्त होकर उसी शुक्रको परित्याग करते हैं इस लिये देहाग्नि अल्प होती है जीवात्माकी शक्ति वह अग्नि और ज्योति है वह अग्नि अल्प होनेसे ज्योति भी अल्प होती है। इसी कारण जीवात्माकी शक्ति अल्प होती है इस लिये दुर्ब्बल जीवात्मा और सबल जगदात्मा ओंकारको आकर्षण करनेमें असमर्थ होते हैं जैसे सिपाही राजाकी रक्षा करते हैं अर्थात् जिस राजाका सैन्य बल अधिक है वही राजा निर्भय हो कर जो चाहे सो करसकता है लेकिन जगदात्माको समानशक्ति होना नितान्त आवश्यक है नहीं तो दुर्ब्बल और सबलमें किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होसकता ।

(१६ प्रश्न) हे महात्मागण, आप लोगोंके मुँहसे प्रश्नका उत्तर सुनकर हमारे मनका अंधकार अधिकांश विनाश होगया । अब एक बात और पूछते हैं सुनिये इस संसारके मनुष्योंके बीचमें बुद्धि और विद्या इन दोनोंमें प्रधान कौन है ?

(१६ उत्तर) ऋषि उत्तर देते हैं—महाराज, विद्या और बुद्धि दोपदार्थ हैं बुद्धिके द्वारा मनुष्य

नाना प्रकारके नये नये कार्य्य करतेहैं। और विद्याके द्वारा शास्त्रादिकी बात नूतन रचना करके व्याख्यान आदिमें समर्थ होते हैं मूलविद्या जहांतक शिक्षा पाई है वहांतक बोलनेम सहायता करती है। लेकिन बुद्धि विद्याके द्वारा मार्ज्जित होती है इसमें कोई सन्देह नहीं है । जिसमें बुद्धि और विद्या ये दोनों हैं वह मनुष्य जगतमें सबसे ऊँचा है और जिसमें केवल बुद्धि शक्ति है और विद्या नहीं है वह मनुष्य भी संसारके बीचमें आदरणीय होता है और विद्वान् मनुष्योंको भी सांसारिक मनुष्य आदर करेंगे लेकिन बालक बालिकाओंके विद्यादानके वास्ते। इस लिये महाराज बुद्धिको विद्यासे प्रधान बोल सकते हैं क्योंकि बुद्धिके द्वारा अनेक अद्भुतकार्य्य सम्पन्न होते हैं ।

(१७ प्रश्न) हे महात्मालोगो ! आपलोगोंने तिथि पक्ष मास वर्ष ऋतु और सितारे इत्यादिका किस प्रकारसे निर्णय किया और चन्द्र सूर्य ये दोनोंका ग्रहण होता है इसका क्या तात्पर्य है अनुग्रह करके इसका जो कछ तात्पर्य है वह वर्णन करके हमारे मनका संशय निवारण कीजिये ।

(१७ उत्तर) तब ऋषि उत्तर देते हैं महाराज! हमने संसारमें नाना स्थानमें भ्रमण करते करते एक समय एक पर्वतके निकट नदीके तटपर बटवृक्षके मूलमें आसन लगाकर खानेकी चीजोंका अभाव होनेसे उसी पहाड़के ऊपर चढ़-करके चारों तरफ खानेको फल और मूल और काष्ठ अन्वेषण करते करते एक जगहमें सकर-कन्द कन्दमूल बहुतसे देखकर अपनी जरूरतके माफिक थोड़ा फल मूल संग्रह करके सायंकालके समय देखा कि सूरजके प्रायः अस्तामित होनेपर प-श्चिम दिशाने लालवर्ण धारण किया है देखनेमें मालूम होताहै जैसे पश्चिम आकाशमें अग्नि उ-त्पत्ति होकर उस स्थानके सब पदार्थ दग्ध होतेहैं यह देखनेके वास्ते पहाड़के ऊपर थोड़ी देरतक ठहर करके पहाड़से उतर आये पीछे हमारे आसनोंके चारों तरफ काष्ठके द्वारा धूनी सजाकर काष्ठ काष्ठमें घिस करके एक बहुत बड़ा अग्निका कुंड जलाया हमने परस्पर अपने आसनपर बैठकर खानेकी वस्तु फल मूल सब आगमें जला कर के भोजन किया और भोजनके अन्तमें उस पहा-

ड़के सम्बन्धमें आलोचना करने लगे । अर्थात् सूर्य्यास्तका दर्शन कियाहै और सूर्य्यका उदय होना भी दर्शन करेंगे यह मनमें स्थिर किया । इसी प्रकार धर्म्मसम्बन्धमें बातचीत करते करते रात प्रायः शेष हुई तब हम आसन त्याग करके नदीके तटपर उपस्थित हुए । और उसी नदीके पानीमें स्नानादिक्रिया सम्पन्न करके उदय दर्शनके वास्ते पहाड़के उपर चढ़गए और पूर्वकी तरफ सूर्य्योदयका स्थान देख करके खड़े रहे किञ्चित् समय पीछे देखा कि लाल रंगके वत्सके प्रकार मेहके गर्भसे निकलकर अन्दाज दश बारह हाथ ऊंचे स्थानपर जाकर उस लालवर्ण सूर्य्यका उदय दर्शन करके आश्चर्य्य हुआ और इसका कारण दर्याफ्त करने लगे आखिरमें फिर उसी प्रकार दर्शनके वास्ते हमको उसी स्थानमें अनेक दिन तक रहना पड़ा । हम प्रत्यह सूर्यके दर्शनके वास्ते पहाड़के ऊपर आरोहण करते लेकिन उसी प्रकार सूर्य्यका उदय दर्शन नहीं होता इस तरहसे

१ अब इस पहाड और नदीका नाम चन्द्रभागा अर्कतीर्थ कहतेहैं माघमास पूर्णमासीके दिन उदय दर्शनके वास्ते अनेक यात्री एकत्र होतेहैं ।

कुछ दिन व्यतीत होनेके बाद अचानक एक दिन ठीक उसी प्रकार फिर दर्शन हुआ, हमने सूर्यके उदय और अस्तसे इसी प्रकार दिनका हिसाब रक्खा था । सब दिन जोड़कर देखा कि तीनसौ पैंसठ दिन हुए हैं । हमने यह देखकर बरस गिनना स्थिर किया है और सूर्यके उत्तर दक्षिण गमनागमन दर्शन करके छः छः महीने उत्तरायण और दक्षिणायन उस वरस के अधीश योग करके सिद्धान्त किया है। इसका आरंभ माघके महीनेमें सप्तमीके दिन होता है । कारण कि उस तारीखको पृथ्वीकी वार्षिक गतिका आरंभ और शेष होता है। पीछे चन्द्रमाके उदय अस्त और उसके ह्रास और वृद्धि देखकर तिथि कृष्ण और शुक्लपक्ष और महीना और ऋतुओंका निर्णय किया । पीछे तारोंकी गति देखकर राशि लग्न ग्रह इत्यादि सब क्रमसे अतिसहजमें निर्णय करने लगे और राशिचक्र पताका चक्र (जगतचक्र) घूमता है वह दर्शन करके सूर्य और चन्द्रका ग्रहण निर्णय किया है। महाराज! जैसे कि एक

१ इस ग्रहणका कारण राशि नक्षत्र तिथिके संयोगसे तमोगुणके रास्तेसे वह तमोगुण (राहु) बाहर होकर सत्वगुणका रास्ता बन्दकर देता है !

वृक्षका मूल पानेसे आखिरमें उसकी शाखा टेनी फूल फल और पत्ते सब मिल सकते हैं लेकिन जिस जिस सम्बन्धमें आपने प्रश्न कियाहै उस एक एक सम्बन्धमें विस्तार करके कहनेसे प्रत्येक विषयमें एक बहुत बड़ा भारी ग्रन्थ होनेकी संभावना है इस लिये हमने संक्षेपसे वर्णन किया है ।

(१८ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुहँसे इस प्रकार वाक्य सुनकर अतिशय आनन्दित हुए और फिर ऋषिलोगोंसे प्रश्न करने लगे, हे त्रिकालज्ञ महात्माओ ! मुक्तिके वास्ते कोई सहज उपाय है या नहीं ? ऋषियोंने उत्तर दिया ।

(१८ उत्तर) महाराज ! मुक्तिका मार्ग अति कठिन है संक्षेपसे कहते हैं श्रवण कीजिये। मृत्युके समय जिस मनुष्यको तमोगुण[1] आक्रमण करता

---

१ वह तमोगुणका मस्तिष्क विस्तार करके सूर्य और चन्द्रमाको ढक लेता है ।

है उस जीवात्माकी सक्ति नहीं होसक्ती। क्योंकि जीवात्माको अज्ञान करनेका मालिक वही तमोगुण है इस लिये जिस मनष्यने तमोगुणको जीत लियाहै उस को निश्चय मोक्ष होगा। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है।

(१९ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापतिने ऋषियोंके मुँहसे इस प्रकार वाक्य सुनकर अति आनन्दके साथ ऋषिगणसे प्रश्न करना आरंभ किया- हे महात्मागण! उस तमोगुणको दूर करनेके वास्ते सहज उपाय क्या है? क्योंकि इस जगतके समस्त ही मनुष्य योग क्रियाके द्वारा मुक्तिलाभ नहीं कर सकते हैं। आप लोगोंने ही कहा है जो ज्ञानवान हैं वह भी कर्म्मके फलसे अज्ञानी होते हैं और सुख दुःख भोगते हैं।

(१९ उत्तर) महाराज! अज्ञानी मनुष्योंके लिये एक अच्छा प्रबन्ध कियाहै, कहते हैं श्रवण

---

१ जबतक हम जगे रहेंगे तबतक जीवात्मा और परमात्मामें मेल रहता है। इस लिये जीवात्माकी चेतनावस्थामें देहपरित्याग होनेसे वह जीवात्मा परमात्मामें लीन होजाता है इसीको मुक्ति या मोक्ष कहते हैं। परन्तु जिस मनुष्यका मन मृत्युकालमें परमात्माकी ओर ध्यान रखता है उसीको मुक्ति होगी।

कीजिये। आपको जो पहले ओंकारकी व्याख्या करके सनाया है, उस ओंकारके चार घाट हैं वह जो ऊंचा पहाड़ (हिमालयका शेष भाग) दक्षिण सीमामें समुद्रका तट है और पश्चिम सीमामें भी समुद्रका तट है और पूर्वसीमामें भी समुद्रका तट है। ये चारों तरफ चार घाट वसाये हैं और घाटोंके नाम भी उल्लेख कियेहैं। जो हिमालयके नीचे बदरिकाश्रम है सत्ययुगका धाम है और दक्षिण सीमामें समुद्रके तीरपर घाटका नाम त्रेतायुगका धाम सेतुबंधरामेश्वर है और पश्चिमकी तरफ समुद्रतीरके घाटका नाम द्वापरयुगका धाम द्वारका धाम है और पूर्वकी ओर घाटका नाम कलि-युगका धाम जगन्नाथ है। इसके बीचके स्थल-भागमें यह जगत् कर्ता ओंकारको अनेक स्थानोंमें कल्पना करके स्थापन किया है उस प्रत्येक स्था-नका नाम तीर्थ है, उन सब तीर्थोंके दर्शन कर-नेसे मनुष्य देहमें अतिशय कष्ट होगा, क्योंकि कोई कोई तीर्थ बड़े बड़े पहाड़के ऊपर स्थापित किये गये हैं, उन पहाड़ोंके ऊपर चढ़नेसे अज्ञान मनुष्योंके देहमें श्वास प्रश्वास उपस्थित होगा

और उन समस्त तीर्थोंमें आना जाना भी विशेष कष्टका कारण है; क्योंकि अतिशय कठिन रास्तेमें जानेआनेका तात्पर्य यह है कि मनुष्योंको कष्टका अभ्यास रहनेसे मृत्युके दुःखके समय भी उन सब कष्टोंके अभ्यासके कारण जीवात्मा अचेतन (अज्ञान) नहीं होगा, इस लिये मुक्तिका मार्ग बन्द नहीं होगा, क्योंकि परमात्मा और जीवात्मामें संयोग रहता है, इस लिये महाराज मनुष्योंको कष्ट सहना नितान्त आवश्यक है। कारण कि मृत्युका कष्ट वडा भारी है। उस मृत्युके कष्टके समय यदि जीवात्मा सज्ञान अर्थात् परमात्माके संग संयोग रहकर देहत्याग करते हैं तो उनकी मुक्ति होती है और जिस जीवात्माका अज्ञान अवस्थामें (तमोगुणके द्वारा परमात्मासे विच्छेद होताहै ऐसी अवस्थाको अज्ञान कहते हैं) शरीरत्याग होता है वह मनुष्य कभी भी मुक्तिलाभ नहीं कर सकता है। इस लिये केवल कष्ट अभ्यासके कारण ये तीर्थस्थापन किये गये हैं। जिन मनुष्योंने जन्मसे मृत्युतक कोई कष्ट नहीं उठाया वे मृत्युकालमें असामान्य कष्ट होनेसे अज्ञान होजाते हैं; ऐसे मनुष्योंकी मुक्ति कैसे हो सक्ती है।

(२० प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुहंसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर सुनकर महा आनन्दके साथ प्रश्न करने लगे–हे महात्मालोगो! गार्हस्थ धर्म्म किस नियमसे पालन करना होगा? यह विस्तार करके वर्णन कीजिये । यह धर्म्म अत्यन्त कठिन है क्यों कि इस गार्हस्थ धर्म्ममें अकालमृत्युकी आशंका है । इसमें रजोगुण और तमोगुणका अधिकार अधिक है; इस लिये मनुष्योंको एकबारमें अज्ञान करदेते हैं और सत्वगुणका अधिकार अति अल्प है इस लिये जीवात्माकी रक्षा करनेके लिये सत्वगुणकी शक्ति होना कठिन है ।

(२० उत्तर) महाराज! ब्रह्मचर्य्यके अन्तमें विवाह विधिपूर्वक विचारके साथ करना होगा । अर्थात् कन्याका विवाह ऋतुकालसे कुछ प्रथम जिस समय कन्या ऋतुमती होनेकी योग्य हो उस प्रथम ऋतुसे कुछ पूर्व कन्या ग्रहण करके ऋतुरक्षा करना चाहिये । यदि प्रथम ऋतुरक्षा नहीं होवे उस कन्याका पतिव्रता होना असंभव है; कारण कन्याके रजस्वला होनेसे कामरिपु प्रबल

होता है, इस लिये स्त्रीका वीर्य रज अपने आप या स्वप्नमें शरीरके अन्दरसे बाहर गिरजानेकी संभावना है, इस लिये पति और पत्नीमें निर्म्मल प्रेमका ह्रास होता है। इस लिये गार्हस्थ धर्म्मका सुन्दर रूपसे निर्व्वाह नहीं होता है। इसी कारण उस प्रथम ऋतुमें ही विवाह ऋतुरक्षा करना उचित है और यदि वह पुरुष स्त्रीके ऋतुकालके विना केवल रमणकी इच्छा करके प्रत्यह इन्द्रिय उपभोगके वास्ते स्त्री सहवास करे तो वह मनुष्य निश्चय रोगयुक्त होकर अकालमृत्युका ग्रास हो जायगा। क्योंकि आत्माकी रक्षा करनेवाला जो वीर्य है उसीका ह्रास होता है। इस लिये महाराज, 'पुत्रार्थं क्रियते भार्य्या' अर्थात् ऋतुकालके विना अन्य समयमें स्त्री संभोग करना उचित नहीं है और स्त्रीजातिको काम रिपु मासके अन्तमें ऋतुके समय प्रबल होता है। इसके विना अन्य समय अति सामान्य रहता है इस लिये स्त्री जातिको उसमें कोई विशेष कष्ट नहीं होता। विवाहसम्बन्धमें और भी कितनी व्यवस्थाएँ हैं सो महाराज! कहते हैं सुनिये कर्मफलके अनुसार परमात्माने

इस जगतमें जीव आत्माकी भिन्न चार प्रकारकी सृष्टि की है, उसके बीचमें मनुष्य जातीय जो पुरुष हैं उनके चार प्रकार हैं। शशक, मृग, वृष अश्व, और स्त्रियोंकी पद्मिनी, चित्रिणी शंखिनी और हस्तिनी। विवाह सम्बन्धमें वह शशक जाति पुरुष और पद्मिनी स्त्री; मृगजातीय पुरुष और चित्रिणी स्त्री, वृष जातीय पुरुष और शंखिनी स्त्री, अश्वजातीय पुरुष और हस्तिनी स्त्री। इस प्रकार विवाह होनेसे पति और पत्नीका अभेद आत्मा होकर सुख स्वच्छन्दतासे गृहस्थ धर्म्मका निर्वाह होसकता है। अश्वजातीय पुरुष और पद्मिनी स्त्री विजातीय हैं। इस प्रकार विवाह होनेसे सर्व्वदा पतिपत्नीके अप्रणयके कारण कलह होता है। और वे पति पत्नी परस्पर श्वास प्रश्वास ग्रहण करनेसे रोगयुक्त होकर अकालमें मृत्युके ग्रास होते हैं। या तो स्त्री विधवा, नहीं तो पुरुष शून्यगृह होता है। और जबतक दोनों जीवित रहेंगे उतने दिन तक दुःख भोगना पड़ता है। महाराज बोले—हे महात्मालोगो! इन चारों जातियोंके पुरुष और चारों जाति की स्त्रियोंके लक्षण क्या हैं सो वर्णन

कीजिये नहीं तो मनुष्य किस तरह जान सकेंगे। संसारसम्बन्धमें यह सब विषय जानना जरूरी है। ऋषिलोगोंने महाराजके प्रश्नका उत्तर दिया कि महाराज! शशक जाति पुरुषका लक्षण यह है कि हृदयका स्थान कुछ नीचा दोनों स्तन कुछ ऊँचे होते हैं। ऊपरकी ओर सर्व्वदा दृष्टि, और दोनो आँखें तैरती हुई, अतिशय सुन्दर मुँह अतिसुन्दर गंभीर, सुपुरुष लिंग छः अंगुल, चम्पकफूलकी कलीके सदृश, परम धार्मिक और सर्व्वदा आनन्दयुक्त होता है। मृग जातीय पुरुष का लक्षण प्रायःकरके शशकजातीय पुरुषके सदृश है, केवल लिंगका परिमाण अष्टांगुल है। वह सर्व्वदा धर्म्म अनुसन्धान करता रहता है। वृष-जातीय पुरुषका लक्षण—दोनों आखें कुछ छोटी होती हैं, नाकका वीच कुछ ऊंचा किन्तु आगेका हिस्सा कुछ नीचा होता है। लिंग दश अंगुल लम्वा होता है, रजोगुण और तमोगुण अधिक और कोई कोई कदाचित् धार्म्मिक होता है। अश्वजातीय पुरुषका लक्षण यह है कि आंख विलके अन्दर घुसती हुईसी नाक बैठीहुई, छाती

ऊंची, मगज छोटा, रजोगुण और तमोगुण अतिशय प्रबल, धर्मके संग सम्बन्ध नहीं है, जिस कारण सत्वगुणका कर्म नहीं किया । पद्मिनी स्त्रीका लक्षण यह है कि देह मध्यम न छोटा न बड़ा और पद्मके सदृश सुगन्धयुक्त, दोनों आंखें खरगोशकी आंखोंके सदृश, केश बहुत नरम न छोटे न बड़े, वह परम धार्म्मिक और अतिसुन्दरी होती है। चित्रिणी स्त्रीके लक्षण यह हैं कि वह भी प्रायः करके पद्मिनी स्त्रीके माफिक होती है। किन्तु उसके देहसे गुलाबके पुष्पकी सुगन्ध निकलती है, दोनों आँख मृगकी आंखके तुल्य अति मनोहर परम सुन्दरी और अत्यन्त धार्म्मिक होती हैं । शंखिनी जातिकी स्त्रीका लक्षण यह है—ऊर्ध्वनासा लम्बे केश, कमर पतली, कुच ऊँचे, शरीरसे मत्स्यका सा दुर्गन्ध आता है; देखनेमें खूब सूरत और कदाचित् धार्मिक होती है। हस्तिनी जातिकी स्त्रीका लक्षण यह है कि अधिक करके खर्वाकृति होती है और कोई स्त्री कुछ ऊंची भी होती है, पिंगल केश दोनों पैरकी एड़ी मोटी, कमर मोटी, नाकके आगेका हिस्सा और

दोनों भौंहोंका बीच समान उँचा होता है। किसी किसी स्त्रीकी नासिका बैठी हुई, केश छोटे, हाथीकी आंखोंक सदृश दोनों आँखें होती हैं। शरीरसे मद्यका दुर्गन्ध निकलता है, कदाचित् धार्मिक होती है। इसलिये महाराज! पिता माताका कर्त्तव्य यह है कि पुत्र या कन्याके विवाहक समय जिस प्रकार लक्षण कहे हैं उसी प्रकार लक्षण देखकर पीछे विवाह कराना चाहिये। इस विवाहमें और भी कितनी ही बातें हैं पुत्र और कन्याकी राशि नक्षत्र, लग्न, गण इत्यादि और देख मिलाके विवाह करना अति उत्तम है। यदि नक्षत्र कम मिले तो हानि नहीं होती है किन्तु गण मिलाना अति आवश्यक है।

(२१ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुंहसे यह कथा सुनकर अतिशय आनन्दयुक्त होकर उनसे प्रश्न करनेलगे—हे महात्मालोगो! यह मनुष्य गार्हस्थधर्म्म कितने दिनमें शेष करेंगे? उसका समय निर्णय कीजिये और गार्हस्थधर्म्मके अन्तमें मुक्ति होनेके वास्ते क्या क्या काम करना होगा? वह आदिसे अन्त तक विस्तारपर्वक वर्णन कीजिये।

(२१ उत्तर) महाराज ! यह गार्हस्थधर्म्म बारह बरसके सिवाय करना उचित नहीं है, कारण मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है। इस मानव जन्ममें ही मुक्ति हो सकती है, इस लिये चार आश्रम हैं। (ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ सन्न्यास) यह अतिशीघ्र सम्पन्न होनेसे अच्छा होता है। इस-लिये पुत्र कन्या जितनी इच्छा हो उत्पन्नकर अपने काममें (मुक्ति होनेके काममें) तत्पर होना चाहिये। इस गृहस्थ धर्म्मके अन्तमें वान-प्रस्थ है वानप्रस्थ धर्म्मका तात्पर्य्य यह है कि सांसारिक विषयोंमें इच्छा व सब प्रवृत्तिकी जब निवृत्ति होगी तब वानप्रस्थ धर्म्म शेष होगा। यह वानप्रस्थ धर्म्म शेष होनेसे सदा आनन्द चित्त होकर संन्यासधर्म्म ग्रहण करना चाहिए। संन्यासधर्म्म-का तात्पर्य परमात्माका आकर्षण धारणा, ध्यान, प्राणायाम, आसन, जप, तप इत्यादि करना है। इसी प्रकार कार्य्य करते करते, जब चांद सूर्य नक्षत्रके ऊपर जितने पदार्थ हैं वे सब दर्शन होने लगेंगे तब संन्यासधर्म्म शेष होगा। अर्थात् समा-धियोग द्वारा गुणातीत परमात्माके संग मिल-

नेसे उक्त धर्म पूर्ण होगा । पीछे योग समाधि और योगके अन्तमें और कोई कार्य्य नहीं है । इसीको संन्यासी योगी वा त्यागी कहते हैं "जीवन्मुक्तः स उच्यते" अर्थात् उस समय मनुष्य जीवन्मुक्त कहलाता है ।

(२२ प्रश्न) महाराज ऋषियोंके मुंहसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पाकर आनन्दमें मग्न होकर फिर उनसे प्रश्न करने लगे—हे महर्षियो ! इस गृहस्थाश्रममें पुत्र और कन्या कमसे कम कितने आवश्यक हैं और अधिक संख्या कितनी तक होना उचित है यह वर्णन कीजिये ।

(२२ उत्तर) महाराज ! कमसे कम दो संतान उत्पन्न करना बहुत ही आवश्यक है । कारण दो पुत्र न होनेसे मुक्तिलाभ नहीं होसक्ता, क्योंकि एक पुत्र भी गृहस्थाश्रम ग्रहण करके सन्तानादि उत्पत्ति करसकेगा; और दूसरा पुत्र मुक्तिहोनेके लिये संसार त्याग करेगा । अधिक संख्या ग्यारहतक सन्तान उत्पत्ति करनेकी विधि है इससे अधिक नहीं (ऋग्वेद) ।

(२३ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषिके मुँहसे इस प्रकार वाक्य सुनकरके ऋषिलोगोंको सम्बोधन करके बोले हे महर्षियो ! वह एकही पुत्र मुक्तिलाभके वास्ते गृहस्थाश्रमका त्याग करेगा इसका तात्पर्य नहीं समझ सके ।

(२३ उत्तर) तव द्वितीय ऋषि महाराजके प्रश्नका उत्तर देनेलगे—महाराज! अपने वंशके वीचमें अगर एक पुत्र मुक्तिलाभ करे तो इससे उस वंशके मृत पूर्व्व पुरुषोंमेंसे यदि कोई प्रेतात्मा रहें तो वे सव मुक्त होजावेंगे । कारण कि पिता और पुत्रके देहमें जव सम्वन्ध रहता है तव आत्माके साथ भी सम्वन्ध रहना असंभव नहीं है, क्योंकि आत्मासे पुत्रकी उत्पत्ति है । इसी कारण पुत्रको आत्मज कहते हैं, जैसे दो आदमी हैं उनमेंसे एक चोरी करता है और दूसरा साधु है, और ये दोनों पुरुष एक साथ एक ही घरमें रहते हैं, उस चोरकी खोजमें राजदूतने भ्रमण करते करते उसी चोरको पकड़ा । पीछे उस चोरका साथी कहकर उस साधुको भी उस चोरके संग पकड़लेते हैं । इस लिये महाराज ! पापी या साधु लोगोंका

संग करनेसे उस पापीका पाप या पुण्यात्माका पुण्य, भोग करना होता है; वैसे ही पिताकी आत्मा और पुत्रका आत्मा एक घरमें वास करनेके कारण वह संसर्ग जन्म या पुण्यका अच्छा व बुरा फल एक है । इस सबबसे पुत्र मुक्तिलाभ करनेसे जितने प्रेतात्मा पुरुष रहेंगे वे सबही मुक्तिलाभ करेंगे । जैसे एक अपराधमें पच्चीस आदमी पकड़ेगये हैं उनके बीचमें एक पुरुष विचारालयमें गया है अब हाकिमने सबूत लेकर विचार करके देखा कि यह पुरुष निर्दोष है तब बाकी सबही निर्दोष होंगे ।

(२४ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषिके मुहंसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर सुनकर और भी नये नये प्रश्न करने लगे, हे महात्मालोगो ! परमात्मा अखंड पदार्थ है जिसका खंड नहीं हो सकता है उसका खंड किस प्रकारसे हुआ ? यह विचारपूर्व्वक मीमांसा कीजियेगा ।

(२४ उत्तर) ऋषि महाराजके प्रश्नका उत्तर देते हैं-महाराज, जैसे महाकाशका अंश एक गृहाकाश है वही घरके अन्दर आकाश है । वैसेही एक

कलश है उस कलशके अन्दर आकाश है। इसी प्रकार परमात्मा अंडस्वरूप है। जैसे एक नदीसे छोटा बड़ा घड़ा भरके जल लेलिया जाता है वैसे ही यहां समझना चाहिये। असली बात यह है कि कोई अस्त्रके द्वारा परमात्माका खंड नहीं करसकता है, परन्तु आवरणके द्वारा परमात्माका खंड जैसे मृत्तिका आवरणसे जल बद्ध होता है, तालाब सरोवर इत्यादि वैसे ही पशु, पक्षी मनुष्य इत्यादिके शरीरावरणसे परमात्माका अंश कहा जाता है, परंतु मनुष्य शरीरमें परमात्माका अंश है और अन्यान्य जीवोंमें परमात्माका अंश नहीं किन्तु उसकी अंगज्योतिका अंश है। तात्पर्य यह है कि परमात्माका वासस्थान अग्नि और अग्निकी जो ज्योति इन दोनों पदार्थोंके विना और किसी जगहमें या किसी पदार्थमें नहीं है; और दूसरे स्वच्छ पदार्थोंमें परमात्माका प्रतिबिम्ब मात्र है। जैसे जलमें परमात्माका प्रतिबिम्ब है वैसेही स्फटिक, हीरा, पन्ना, चुन्नी, नीला, पुखराज, लाल, दर्पण इत्यादिमें परमात्माका प्रतिबिम्बमात्र है केवल मनुष्यशरीरके बीचमें अग्नि और ज्योति इन

दोनों पदार्थोंके बीचमें परमात्माका वासस्थान है। और जगतके बीचमें सूर्याग्नि और सूर्यके ऊपर कमलाकृति (ज्योतिमें) परमात्माका वासस्थान है।

(२५ प्रश्न) महाराज मनुप्रजापति ऋषियोंके मुंहसे इस प्रकार वाक्य श्रवण करके आनन्दके साथ ऋषियोंसे प्रश्न करने लगे—हे महात्मागण! परमात्माने जब इस संसारकी रचना की तब समस्त कार्य्य उस परमात्मानेही सम्पन्न किये हैं अब बतलाइये कि परमात्मा इस संसारके किसी कार्य्यसे लिप्त है या नहीं।

(२५ उत्तर) महाराज! परमात्माने जब इस संसारकी रचना की तब समस्त कार्य्य उस परमात्माने ही सम्पन्न किये और मनुष्योंको सम्बोधन करके आदेश किया, हे मानवगण! मैं तुम लोगोंके शरीरके भीतर वर्तमान हूँ। यह संसार सत् और असत् इन दो पदार्थोंके द्वारा रचागया है, ये दो पदार्थ न हों तो इस जगतकी रचना नहीं होसकती है, इस लिये मुझको लाचार होना पड़ा। अब तुम लोगोंको सावधान करता हूं उस असत्

काममें लिप्त होकर अपनी मुक्तिका मार्ग (खोना) नष्ट नहीं करना चहिये, यह उपदेश करके चुप होगये । अव मानवदेहधारी जीवात्मा जैसा काम करेंगे वैसा ही फल पावेंगे । पन्तु वह मानवदेह-धारी जीवात्मा और परमात्मा एक ही पदार्थ है केवल गुणयुक्त जीवात्मा और निर्गुण परमात्मा यह प्रभेदमात्र है । असली वात यह है कि परमा-त्मानेही सव किया है और वह करता भी है, अथवा वह कुछ भी नहीं करता है " निर्गुणश्च गुणात्मा च" जीवात्मा मायामें लिप्त है परमात्मा मायामें लिप्त नहीं है, केवल चार युगोंके अन्तमें एक एक वार इस पृथ्वीमें प्रलय होगा फिर रचना होगी; जव रचना होगी तव वही परमा-त्माको आवश्यक है । जैसे धातुनिर्म्मित पतली वड़ी एक कटोरीके तलेमें सूक्ष्म छिद्र हो और उस कटोरीको किसी मनुष्यने जलके ऊपर रक्खा-हो तो उस कटोरीके सूक्ष्म छिद्रके द्वारा थोड़ा थोड़ा जल उठकर धीरे धीरे वह उस कटोरीमें भरजानेसे वह डूव जावेगी । फिर वही मनुष्य उसी कटोरीको उठाकर पानीके ऊपर रखदेगा इस-

लिये महाराज ! यह पृथ्वी जलघड़ीके समान है । चार युगोंके अन्तमें एक बार प्रलय होगा फिर सृष्टि होगी । इसलिये सृष्टिके समय परमात्माका यत्नही आवश्यक है ।

(२६ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुंहसे प्रश्नोत्तर सुनकर आनन्दमें मग्न हुए और ऋषिलोगोंसे प्रश्न करनेलगे हे महात्मा लोगो ! यह जगत् परमात्माकी शक्तिसे किस प्रकार चलता है ? और इस जगत्के बीचमें जिस २ पदार्थके द्वारा इस पृथ्वीके समस्त कार्य्य सम्पादन होते हैं यह विचार–पूर्व्वक मीमांसा कीजिये ।

(२६ उत्तर) महाराज ! इस जगत्में जितने प्रकारके कार्य्य चलते हैं वे समस्त कार्य्य केवल द्रव्यगुणसे ही नहीं परन्तु उस परमात्माकी शक्तिसे ही सब बनते हैं । परमात्मा नहीं होनेसे जगत् और जगत्में सब पदार्थ कहांसे पैदा होंगे ? इस लिये महाराज ! सब ही उस परमात्माकी शक्ति हैं । परमात्मा नहीं होनेसे यह जगत जड़-पदार्थ स्थित नहीं रहसकता । सूर्य्याग्नि, वायु और जल इन तीन पदार्थोंके संयोगकी शक्तिसे

समुद्रमन्थन होता है परन्तु उस सूर्य्याग्निके बीचमें परमात्माका अंश है इस समुद्रमन्थनके नहीं होनेसे पृथ्वीकी उत्पत्ति नहीं होसकती और इस पृथ्वीके भीतर पशु, पक्षी आदि और ब्रह्मज्ञानाधिकारी मानव जीवोंकी सृष्टि और लवणाक्त जल नदी आदिका मीठा जल और जीवोंका भोजन जो शस्यादि ये कुछ भी पैदा नहीं होते. इस लिये इस संसारके समस्त कार्य्यका मूल कारण यह समुद्रमन्थन है । मनुष्यको ब्रह्मज्ञान होनेका उपाय भी वही समुद्रमन्थन है । इससे सिद्ध हुआ कि मनुष्यको ब्रह्मज्ञान होनेका उपाय वही समुद्रमन्थनका शब्द ओंकार है । जीवकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय भी वही समुद्रमन्थन है इस लिये महाराज ! इन समस्त कार्य्योंका मालिक वह परमात्माही है ।

(२७ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुंहसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर सुनकर अत्यन्त आनन्दयुक्त होकर प्रश्न करनेलगे, हे महात्माओ ! इस समुद्रमन्थनसे किस प्रकार जगत्में समस्तकार्य्य सम्पन्न होते हैं यह विस्तारपूर्व्वक वर्णन करके हमारे मनका सन्देह भंजन कीजिये ।

(२७ उत्तर) महाराज! वह सूर्य्याग्नि, वायु, जल ये तीन पदार्थ एक साथ होनेपर परमात्मा-की शक्तिसे यह समुद्रमन्थन आरंभ हुआ। इस समुद्रमन्थनसे समुद्रके जलके नानाजातीय पर-माणुओंने भिन्न भिन्न एक एक जातीय समष्टि होकर झागका रूप धारण किया, पीछे धीरे धीरे नाना प्रकार भाग नाना प्रकार भेदमें परिणत हुआ। पश्चात् वही नाना प्रकारका भेद जमकर नाना प्रकारके पदार्थ (मृत्तिका बालू, प्रस्तर और प्रस्तरयुक्त पर्व्वत नाना धातुपदार्थ इत्यादि) एकत्र होकर यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। पीछे उस समुद्रमन्थनकी शक्तिसे वह समुद्रका खारा जल बालू मृत्तिका प्रस्तर आदि भेद करके और पृथ्वीमें साधारण अग्निसे उत्तापित होकर खारा-पनके दोषसे सुशुद्ध न होकर वही संशोधित जल बड़े बड़े पहाड़ोंको आरोहण करके झरनाका रूप धारण करके पृथ्वीमें पतित होता है। पीछे उस जलके बहावसे मृत्तिकादि लय होनेसे नद नदीकी उत्पत्ति हुई। पीछे नदीके जल और सूर्य्यके तापसे मेहका जल ये दोनों जल और

सूर्य्यके तापके द्वारा नाना प्रकारके जीवोंके भोजन (नाना प्रकारके शस्यादि) पृथ्वीमें पैदा होने लगे। जीव वह शस्य आहार करके जीवन धारण करते हैं; और उसी आहारसे जो वीर्य्य उत्पन्न होता है उसके द्वारा रजोगुणमें जीवसृष्टि होने लगी और उस समुद्रमन्थन–शब्द (ओङ्कारशब्द) के द्वारा मनुष्योंको ब्रह्मज्ञान होनेलगा; जिससे मनुष्योंको मुक्ति होने लगी। इसलिये महाराज ! परमात्माका मूल कार्य्य वह समुद्रमन्थन ही है। इस समुद्रमन्थनका प्रयोजन जो जानसकेंगे वे मनुष्य बहुत ही जल्दी परमात्माको पासकेंगे।

(२८ प्रश्न) मनु प्रजापति ऋषिके मुंहसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पाकर आनन्दसे पुलिकित होकर प्रश्न करनेलगे–हे महात्मालोगो ! परमात्माकी उपासनाके सम्बन्धमें निर्गुण और निष्काम उपासना किस प्रकार कीजाती है ? यह विस्तारपूर्व्वक वर्णन कीजिये।

(२८ उत्तर) महात्मा ऋषि बोले महाराज ! निर्गुण परमात्माकी उपासना करना पहिले असं-

भव है, क्योंकि जो पदार्थ हमने कभी आँखसे देखा नहीं उस अदृश्य पदार्थकी धारणा, ध्यान, आकर्षण नहीं हो सकते हैं और यदि परमात्माका रूप कल्पना करके ध्यान, आकर्षण किया जासकता है तो भी चित्त स्थिर होना असंभव है, क्यों कि जड़ पदार्थकी प्राणप्रतिष्ठा (जीवनदान) कर परमात्माकी उपासना करनेमें कितनेही विश्वासकी आवश्यकता है यह बात सब लोग अति सहजमें समझ सकेंगे, इसलिये महाराज ! जिस पदार्थका प्रत्यक्ष किया जाता है उसीका ध्यान, धारणा, आकर्षण करना सहजमें होसकते हैं। इस लिये स्थूल शरीरको परित्याग करके सूक्ष्म शरीरके धारणा, ध्यान, दर्शन, आकर्षण करनेसे ही निर्गुण परमात्माकी उपासना की जासकती है, क्योंकि निर्गुण परमात्मा और सगुण परमात्मा एक ही पदार्थ है, और स्थूल शरीरसे सूक्ष्म शरीर परमात्माके निकटवर्ती है। क्योंकि, सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत उस परमात्माके कारण शरीरका वासस्थान है, और स्थूलशरीर काम क्रोधादि रिपुयुक्त परमात्मासे बहुत दूर है; जैसे अँधेरे घरमें एक

दिया जलानेसे अँधरेके वदले उजाला होजाता है इसी प्रकार हमको उसी प्रकाशकी आवश्यकता है इसवास्ते हम वही दीपाग्नि चाहते हैं । क्योंकि उसी दीपाग्निके बीचमें प्रकाशका वासस्थान है वैसे ही उस सूर्य्यात्माके बीचम जो प्रकाश है वह सर्व जगत्में व्यापक है । उस सूर्य्य ज्योतिरूप परमात्माकी शक्तिकी हमको आवश्यकता है, इसलिये उसी सूर्य्यात्माकी ही धारणा-ध्यान, दर्शन, आकर्षण कर्तव्य है जो सदा हमारी दृष्टिमें है । अव निष्काम उपासनाके सम्वन्धमें मीमांसा करना आवश्यक है । विना कामनाके जगतमें कोई मनुष्य कुछभी कार्य नहीं करसकता है इस कारण मुक्ति होनेके वास्ते कामना और निःस्वार्थभावसे परोपकारके वास्ते जो कामना करके कार्य करेंगे उसीको निष्काम कामना कहते हैं ।

(२९ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुँहसे प्रश्नका उत्तर पाकर आनन्दमें मग्न होकर प्रश्न करने लगे, हे महात्मागण! इस पृथिवीमें सुवर्ण, चांदी, ताँवा, रांग, शीशा, जस्त, लोहा,

पारा इत्यादि धातु–पदार्थ और गंधक, हरताल, हिंगुल, रसकर्पूर इत्यादि बहुत प्रकारके खनिज पदार्थ सृष्टि करनेका परमात्माका क्या प्रयोजन है और किस प्रकारसे इन सब पदार्थोंकी सृष्टि हुई ?

(२९ उत्तर) महाराज ! इस पृथ्वीकी उत्पत्ति होनेके पहिले जब समुद्र–मन्थन आरंभ हुआ तब उस समुद्र–मन्थनमें पहिले पहिले नाना-प्रकारके झागकी उत्पात्त हुई, पीछे उसमें बहुधा नाना प्रकारके झाग मेदमें परिणत हुए, किन्तु वह मेद और झाग अनेक प्रकार हुए । पीछे वो मेद और झागके द्वारा प्रतिस्थानमें कम और अधिक एकत्र हुए । वे एकत्र होनेसे सूर्यकी नानाप्रकारके रंगकी किरणोंके उस मेद और झा-गको स्पर्श करनेसे वह सब मेद और झाग जम करके नाना प्रकारकी मृत्तिका और नानाप्रका-रकी बालू और नानाविध पत्थर और पर्व्वतकी उत्पत्ति हुई और जो मेद विशुद्ध है वही सूर्यसे सुवर्ण–किरणके द्वारा स्पर्श होनेसे जमकरके सुवर्ण हुआ । इसके अतिरिक्त और मिश्र मेदमें

उसी प्रकार नाना प्रकारके धातुकी उत्पत्ति हुई। यह पृथ्वीकी उत्पत्तिकी कथा कही और यह चार युग पर्य्यन्त सदा समुद्र–मन्थन होगा, इसलिये इसीप्रकार पृथ्वीकी सर्व्वदा उत्पत्ति होती है और भी होगी, अर्थात् इस अकूल (महासमुद्र) के वीचमें एक द्वीप वीचवीचमें नूतन उत्पन्न होता है और होगा भी और इस जगत्के अधिक मनुष्य प्रायः रज और तमोगुणके वशीभूत होकर बुद्धि शक्ति ह्रास होनेसे रोगयुक्त होकर अकालमें मृत्युके ग्रास होंगे, इस लिये उस व्याधिको नाश करनेवाली औषधि खनिज पदार्थ इत्यादि परमात्माने सृष्टि किये हैं। और उन स्वर्ण चाँदी, तांबाके द्वारा मनुष्यकी आवश्यकतानुसार पदार्थ वदलेके वास्ते स्वर्णमुद्रा, रौप्यमुद्रा, ताम्रमुद्रा इत्यादि आवश्यक हैं।

(३० प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुँहसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पाकरके ऋषिगणसे प्रश्न करनेलगे–हे महात्मागण! मैं इसके पहले भूलगया हूं। विवाहके सम्बन्धमें और भी एक प्रश्न है सुनियेगा; जो कन्या युवती या

बाल्यावस्थामें विधवा होगी उसका पुनर्विवाह होसकता है या नहीं ?।

(३० उत्तर) महाराज! वह विधवा कन्या यदि अयोग्य रहै (पतिपत्नीका दाम्पत्य भाव नहीं हो) तो वह पतिके अभावसे पिताके अधिकारमें रहेगी कारण वह पिता अयोग्य कन्याको योग्य वरको दान करनेसे भी उस वरका कन्याके ऊपर कोई अधिकार नहीं रहता है। क्यों कि दाम्पत्यभावका अभाव है। इसलिये इसी प्रकार अवस्थामें उस कन्याके पतिके अभावसे पिता अधिकारी है। अब पिता उस अयोग्य कन्याका फिर विवाह करसकते हैं या ब्रह्मचर्य्यशिक्षा भी देसकतते हैं। यह पिताकी इच्छाके अधीन है; और जिस कन्याने अपने पतिसे ऋतुरक्षा की है ऐसी अवस्थामें यदि वह कन्या विधवा हो तो उसका फिर विवाह नहीं होसकता है। क्यों कि उस कन्याके अधिकारीका अभाव है, प्रथम तो उस कन्याका अधिकारी पिता है और कन्याके विवाहके पीछे उसका अधिकारी पति है। यदि पतिका अभाव हो तब उस विधवा कन्याका और

कोई अधिकारी नहीं है। अब उस कन्याके विवाहमें कौन दान करे ? यदि वह कन्या स्वाधीन होकर अपने आप विवाहका उद्योग करसकती है तब तो होसकता है। किन्तु इस प्रकार स्वाधीनता स्त्रियोंको देना उचित नहीं है । कारण कि स्त्री जाति अज्ञानयुक्त और अबला है जिसको अविद्या कहते हैं। और यदि स्त्री जाति विद्यावती भी हो तो भी स्त्रीजाति स्वाधीन नहीं होसकती है। कारण " स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकरी "। इसलिये महाराज ! हमारे विचारमें इस प्रकार विधवा स्त्रीको ब्रह्मचर्य्य करनाही उचित है।

महाराज मनु प्रजापति बोले-हे महात्मालोगो ! कलियुगमें विषयविभ्राट् है सब मनुष्य स्त्रीके वशीभूत होंगे, पुरुषकी बुद्धि-शक्तिका लोप होजायगा। मृत्युको भूलकरके संसारी होंगे। तब तो स्त्रीजाति स्वाधीन होगी।

प्रथम ऋषि बोले-ठीक कहा है, कलियुगकी शेषावस्थामें फिर अनेक पंडित होंगे, तब अनेक मनुष्य मुक्त भी होंगे और प्रतिस्थान सर्व्वदा धर्म्मालोचना भी होगी।

(३१ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके मुंहसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पाकर अति आनन्दचित्तके साथ ऋषियोंसे प्रश्न करनेलगे हे महात्मालोगो ! जिस मनुष्यने आत्मज्ञानका लाभ किया है, त्रिकालज्ञ अर्थात् जीवन्मुक्त है ऐसी अवस्थामें मनुष्यको क्या कर्त्तव्य है ?

(३१ उत्तर) महाराज ! आत्मज्ञानी जीवन्मुक्त महापुरुषोंके निज कार्य्य कुछ भी नहीं हैं, जिस कार्य्यमें जगत्का कल्याण है वही उनका कर्तव्य है तब महाराज बोले! हे महात्मालोगो! क्या काम करनेसे जगत्का कल्याण है। तब द्वितीय ऋषि बोले—वह ओंकार शब्द मनुष्योंको समझानेसे ही जगत्का कल्याण होता है।

(३२ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषिके इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पाकर महानन्दके साथ ऋषिगणसे प्रश्न पूछनेलगे—हे महात्मालोगो ! गृहस्थाश्रममें मनुष्य त्रिगुणके कार्य करके उस परमात्माके सूक्ष्मशरीरकी धारणा, ध्यान, आकर्षण, दर्शन करनेसे उस सूक्ष्म शरीरको (सूर्य्यतेजको) भेद करसकते हैं या नहीं; यह विचारपूर्वक मीमांसा कीजिये।

(३२ उत्तर) महाराज ! जो सब मनुष्य त्रिगुणका कार्य्य (गृहस्थाश्रम) करेंगे उनके वास्ते परमात्माकी उपासनाके सम्बन्धमें स्वतंत्र व्यवस्था है। क्यों कि रजोगुण और तमोगुणके कार्य्यमें जीवात्मा निस्तेज होता है इस लिये सूक्ष्मशरीर (जगदात्मा) का तेज प्रखर है, इस लिये उस प्रखर तेजको साधारण निस्तेज पदार्थमें किस प्रकार भेद करनेमें सफल न होंगे, इस लिये गार्हस्थ धर्म्मावलम्बी लोगोंको उस सूक्ष्मदेह (जगदात्मा) की प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल त्रिसन्ध्याओंकी उपासना करना, फिर उस उपासनाके अंतमें अपने शरीर स्थित्यर्थ प्रस्तुतार्थ परमात्माके निकट प्रार्थना करना यही व्यवस्था है।

(३३ प्रश्न) महाराज मनु प्रजापति ऋषिके मुँहसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर सुनकर आनन्दमें मग्न होकर ऋषिगणसे प्रश्न करनेलगे—हे महात्मा लोगो ! गार्हस्थ धर्म्मावलम्बी लोग परमात्माके पास क्या प्रार्थना करेंगे ।

(३३ उत्तर) तृतीय ऋषि महाराजके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहनेलगे—महाराज ! यह जगत् पंचमहाभूत युक्त है, हमारे स्थूलदेह भी

पंचभूत युक्त हैं; इस लिये इन पंचभूतोंके द्वारा गार्हस्थ धर्म्मावलम्बियोंको ज्ञानलाभ करना होगा। इस कारण दिनमें प्रथमही प्रातःकाल की उपासनाके अन्तमें परमात्माके पास प्रार्थना करता है—परमात्मन् आपने यह मिट्टी सृष्टि की है इस मिट्टीके अनुसार हमारा स्वभाव और चरित्र दृढ होजाय, जैसे यह मिट्टी खंड खंड कर काटनेपर भी कोई दुःखप्रकाश नहीं करती है और अग्निसे जलानेसे भी कोई जवाब नहीं देती है। याने वह शत्रु जीवोंपर दया करके उनके जीवनरक्षाके वास्ते शस्य पैदा करदेती है। इस लिये हे परमात्मन्! हमारे शरीरमें रिपुगण इस मिट्टीके बराबर होवें, हम निश्चिन्त होकर आपका भजन करके मुक्तिलाभ करें।

फिर जलके द्वारा परमात्माकी उपासना करके उपासनाके अन्तमें परमात्मासे प्रार्थना करना कि हे परमात्मन्! आपने जो जल-की सृष्टि की है हमारे देहमें रिपुगण उसी जलमें प्रलय होवें और हमारा देह उसी प्रकार निर्मल

होवे। हम पवित्र होकर आपका भजन करके मुक्तिलाभ करें।

फिर उसी प्रकार अग्निके द्वारा होम करके परमात्मासे प्रार्थना करना हे परमात्मन्! आपने जो अग्निकी सृष्टि की है उस अग्निकुण्डमें अपने शरीरके रिपुगणको हम मनकी कल्पनाके द्वारा आहुति प्रदान करते हैं, इस लिये हे परमात्मन्! हमारी वह आहुति गृहण करके दुष्ट रिपुओंको उस अग्निके द्वारा जलादीजिये! हम आनन्दचित्त होकर आपकी उपासना करके मुक्तिलाभ करें। फिर उसी प्रकार मरुतके पास हे परमात्मन्, आपने जो मरुत सृष्टि किया है उसको आदेश कीजिये कि हमारे शरीरमें रहे हुए, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्य्य दुष्ट रिपुगणको नष्ट कीजिये। हम उन दुष्ट रिपुगणके साथ लड़नेमें असमर्थ हुए हैं, इस लिये हे परमात्मन्! हमको इस घोर विपत्तिसे मुक्त करदीजिये, हम निश्चिन्त होकर आपका भजन करके मुक्तिलाभ करें। इस लिये महाराज! इस प्रकार गार्हस्थ्य धर्मावलम्बीगण दिनके भीतर

तीन बार परमात्माके भजनके अन्तमें प्रार्थना करें, पीछे गार्हस्थ धर्म्मके अन्तमें मनुष्य तेजस्वी होकर उस महातेज (सूर्यात्मा) को भेद करनेकी चेष्टा करैं।

महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंसे इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पाकर अत्यन्त आनन्दयुक्त होकर कहने लगे हे महात्मागण! आप लोगोंके मुहसे अपने प्रश्नकी अति सुन्दर मीमांसा श्रवण करके हम अत्यन्त आनन्दित हुए। अब भोजनका समय होगया है भोजनकी सामग्री तैयार है, आप लोग भोजन कीजिये। तब ऋषिगण महाराजकी प्रार्थनाके अनुसार भोजन करने लगे। भोजनके अन्तमें अपने अपने आसनपर बैठगये। महाराज मनु प्रजापति ऋषियोंके पास आशीर्वाद लेकर अन्तःपुरमें चले गये। इधर ऋषिगण आपसमें महाराजका गुणानुवाद करनेलगे।

प्रथम ऋषि बोले—महाराज मनु प्रजापति बहुत बुद्धिमान् हैं।

द्वितीय ऋषिने कहा—महाराज हमारे बड़े भाई हैं बुद्धिमान् क्यों न हों।

तृतीय ऋषि बोले—परमात्माके अंश होनेसे महाराज विना शिक्षाके पंडित हैं।

चतुर्थ ऋषि बोले—महाराज कोई मानवपुत्र नहीं हैं जो शिक्षापाकर पण्डित होंगे।

पञ्चम ऋषि बोले—हमको क्या शिक्षा की गई है।

षष्ठ ऋषिने कहा—हमने किसके पास शिक्षा प्राप्तकी है।

सप्तम ऋषि बोले—जब हमारा गुरुदेव समुद्र है तब हमें क्या सीखना बाकी रहा।

ऋषिगणके इस प्रकार बातचीत करते करते दिन शेष हुआ। इधर महाराज भोजनके अन्तमें किंचित् विश्राम करके महाआनन्दके साथ ऋषिगणके पास उपस्थित हुए। और ऋषिगणके साथ धर्म्मसम्बन्धमें नाना विषयकी आलोचना करने लगे।

प्रथम ऋषि बोले—महाराज! आपको संसारी मनुष्योंके ज्ञानके निमित्त भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्‌का विचार कर एक ग्रन्थ विस्तार करके लिखना चाहिये, इसलिये आवश्यक संग्रह करके

हमको देना चाहिये, हम कल प्रातःकाल गुरु महाराज (समुद्र) के निकट जावेंगे।

महाराज मनु प्रजापति बोले—हेमहात्मागण! हमारी इच्छा है, आप लोग कुछ दिन तक यहां रहें क्यों कि हम अभी तक अज्ञान ही हैं, हमको जितने दिन तक ब्रह्मज्ञान नहीं होवे उतने दिन आप लोग हमको न छोडें; इस संसारके कार्य्य हमसे जितने कुछ हो सके हैं उतने तो हमने किये हैं और जो कुछ बाकी रहे आपलोग करना; मूल बात यह है अभीतक हमको ब्रह्म दर्शन नहीं हुआ है।

द्वितीय ऋषि बोले—महाराज! पहिले आपको कहचुके हैं कि आप समुद्रके पास दीक्षित होना, जब आपकी इच्छा होवै तब दीक्षा लेसकते हैं, इसमें विशेष करके कोई तदबीरकी जरूरत नहीं है। और हम हमेशा आपके पास रहेंगे, आप जब जो आदेश करेंगे उसकी उसी समय तामील करेंगे। महाराज! आपके साहाय्यके वास्ते परमात्माने हमलोगोंकी सृष्टि की है। विशेष करके आप हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं।

महाराज मनु प्रजापति बोले—जो आज्ञा। अब आप लोग कल प्रातःकालको आश्रम की तरफ चलिये, मैं बहुत जल्दी आप लोगोंके पास आऊंगा यह कहकर महाराजने कागज कलम स्याही और बहुतसे कपड़े इत्यादि ऋषिगणको जरूरतके अनुसार दिये। ऋषिगणने बड़े आनन्द के साथ महाराजके पाससे विदा होकर रात्रिके शेषमें बहुतही सुबह उठकर प्रातःक्रिया समाप्त करके आश्रमके अभिमुख यात्रा की। इधर महाराज स्वायंभुव मनु अन्तःपुरमें गये, लेकिन उनका मन समुद्रकी तरफ ऋषियोंके स्थानमें था, क्योंकि उनको ब्रह्मदर्शनकी लालसा थी। इस तरह कुछ दिन जानेके बाद एक दिन मन्त्रियोंको सम्बोधन करके बोले—हे मन्त्रिगण! आप लोगोंको कुछ दिनके वास्ते राजकार्यका सपूर्ण भार लेना होगा। हम ऋषियोंके स्थानमें जाना चाहते हैं, वहांसे वापिस आनेमें शायद कुछ देर भी होसकती है। इसके बीचमें आपलोग राजधानीके सम्बन्धमें कोई संवाद मुझको नहीं देना, क्योंकि मेरा ईश्वरदर्शन सम्बन्धी कार्य्य है,

इस में राजधानीका खयाल होनेसे मेरे कार्य्य-में विघ्न हो सकता है, इस लिये हमारा इस जगत्के साथ कोई सम्बन्ध रहना उचित नहीं है। अर्थात् संसारकी प्रवृत्तिकी निवृत्ति करना होगा। इस संसारकी प्रवृत्ति जबतक निवृत्त नहीं होगी तबतक परमात्माके सम्बन्धमें किसी कार्य्य-में अधिकार नहीं हो सकता है। इस लिये यह सब काम सम्पन्न करनेमें कुछ समयकी आवश्यकता है। इस वास्ते पहले आप लोगोंको सावधान करदिया है। शायद कलही किसी समय ऋषियोंके पास जावेंगे, और ऋषि-योंके पास जानेके वास्ते कुछ आदमी साधारण तौरपर हमको आवश्यकहैं;उसका बंदोबस्त कीजिये हमको ऋषियोंके स्थानमें पहुंचाकर वे फिर राज-धानीकी तरफ वापिस आजावेंगे। तब मन्त्रियोंने महाराजका इस प्रकार वाक्य श्रवण करके प्रसन्न होकर कहा—महाराज! आपके न होनेसे इस ससागरा सद्वीपा पृथ्वीका शासन और रक्षा करना हमसे कैसे होसकेगा? हमारी साधारण बुद्धिश-क्तिसे राजबुद्धिका कार्य्य हम लोगोंसे सम्पादन होना असंभव है।

महाराज बोले—हे मन्त्रिगण ! शासन और संरक्षण आप लोग ही करते हैं, हम नाम मात्र राजा साक्षीस्वरूप हैं। आपलोग भय क्यों करते हैं? यह राज्यशासन आप लोग विना परिश्रम करसकते हैं, चिन्ताका कारण नहीं है और इस राज्यके शासनके वास्ते आप लोगोंको सहायता करनेवाली यह संहिता है ही, तब मन्त्रिगण चिन्तामें मग्न होकर चुपरहे और कुछ बोल नहीं सके। महाराजने खड़े होकर गृहत्याग करके ऊपरकी तरफ़ सूर्यदेवका दर्शन करके देखा कि प्रायः दो प्रहरका समय होगया । यह भोजनका समय है, तब महाराजने स्नानादि मध्याह्नक्रिया करके भोजन किया और भोजनके पीछे विश्रामके वास्ते शयन किया । इधर मन्त्रियोंकी परस्पर बातचीत होने लगी । प्रधानमन्त्री बोले—यह बड़े असंभवकी बात है कदाचित् महाराज अब नहीं आवेंगे कारण कि जिनको ब्रह्मज्ञान होगा वह क्या कभी इस संसाररूपी नरकका दर्शन करना चाहैंगे वह एकाग्रचित्तसे परमानन्दमें परमात्माका दर्शन करते हैं।

द्वितीय मन्त्री बोले—यह बात तो ठीक कही, इस असीम पृथ्वीका राजा कौन होगा ?

तृतीय मन्त्री बोले—इन सब भविष्य बातोंसे हमको क्या जरूरत है, जो होगा सो होगा।

इधर महाराजने विश्रामके अन्तमें अन्दरसे निकलकर धनागारमें प्रवेश किया और धनागारसे बहुमूल्य हीरेका टुकड़ा और स्वर्णमुद्रा थोड़ीसी लेकर बाहर आए। फिर धनागार बंद करके अंदर चलेगये। महारानी प्रभृति अन्तःपुरवासी समस्त परिवारको सम्बोधन करके महारानीको बोले—मैं कुछ दिनके वास्ते ऋषियोंके स्थानमें जाता हूं तुम बहुत सावधानीसे रहना; राजत्वसम्बन्धमें मन्त्रीलोग जैसा देखते हैं वैसाही देखेंगे। केवल हमारे बदले तुम रहोगी; लड़कोंको भिन्न२स्थानके अधिकारी करदिया है। उनके वास्ते कोई चिन्ताका कारण नहीं है और कन्या जामाता दोहिताओंको जो तुम्हारी इच्छा हो सो देना। यह धनागारकी कुंजी लो तब रानी चिल्लाकर रोती-हुई बोली—यह क्या आपका व्यवस्था करना हुआ? मैं आपको छोड़कर लहमा भर भी नहीं रह

सकती हूं। इस लिये आप जहां जायंगे, मैं भी वहां जाऊंगी। आपका राजत्व रहा, मैं कुछ भी नहीं चाहती हूं। महाराज विपदमें पड़े। महाराजने महारानीको नाना प्रकार ढाढ़सकी वातोंसे समझाया, परन्तु महाराज किसी तरहसे कामयाव नहीं हुए। तव महाराजने अन्तःपुरसे निकलकर मन्त्रिगणको सम्वोधन करके अन्तःपुरकी अवस्था समस्त उनके पास कही। मन्त्रिगण इस सम्वन्धमें महाराजको परामर्श देनेम असमर्थ हुए, इसलिये चुप रहगये। महाराजा भी चुप रहगये। इस तरहसे कुछ देरतक रहकर महाराज मनुप्रजापति फिर अन्तःपुरमें गये और महारानीको सम्वोधन करके वोले राज्ञि, तुम हमारे शुभ कार्य्यमें विघ्न न डालो। हम यदि अज्ञान अवस्थामें रहें तो क्या तुम सन्तुष्ट रहोगी? तव महारानीने उत्तर दिया—महाराज! आप क्या अभीतक अज्ञान अवस्थामें हैं? यह कहकर एक वृहत् आकारका ग्रन्थ लेकर महाराजा स्वायंभुव मनुप्रजापतिके हाथमें दिया। और वोलीं—महाराज! यह ग्रन्थ आदिसे अन्ततक पाठ कीजिये; ज्ञानके वास्ते जो हो सो पीछे करना। इतनी वात कहकर महारानी चुप रही।

महाराज स्वायंभव मनु प्रजापतिने ग्रन्थके पहिले देखा कि सृष्टिप्रकरण रजोगुणका कांड है। द्वितीयमें देखा स्थिति प्रकरण सत्त्वगुणका कांड है। तृतीयमें देखा कि प्रलय प्रकरण तमोगुणका कांड है। चतुर्थमें देखा भक्तियोग प्रकरण मुक्ति होनेका कांड है। पहिले ऋग्वेद सृष्टि; द्वितीय यजुर्वेद स्थिति, तृतीय सामवेद प्रलय, चतुर्थ अथर्व वेद भक्तियोग मक्ति होनेका कांड है। महाराज मनु प्रजापतिने ग्रन्थकी मूल बातें समझ-कर उन चारोंवेदोंको अद्योपान्त अध्ययन करनेका संकल्प किया और आसन स्थापन करके वेदा-ध्ययन करना आरंभ किया। महाराजने आहार निद्रा त्याग किया, रात, दिन केवल वेदाध्ययन करने लगे। इस प्रकार वेदपाठ करते करते थोडे दिनोंमें समाप्त किया। पीछे महारानीको सम्बो-धन करके बोले—हे रानी! तुमने यह अमूल्य पदार्थ वेदग्रन्थ किस तरहसे संग्रह किया? यह सब वृत्तान्त सुननेके वास्ते हमारा चित्त बहुतही चंचल हुआहै इस लिये हमारे चंचल चित्तको तसल्ली दो। तब महारानी शतरूपा देवी महाराजके पास उस

वेदकी प्राप्तिके सम्बन्धमें यह बोलीं—पीछे कहूंगी कोई चिन्ता नहीं करना।

अब ऋषियोंके स्थानमें जानेका उद्योग कीजिये। लेकिन महाराज ! आपको छोड़ करके एक पलक भरके वास्ते भी मैं नहीं रह सकूंगी। जैसे रात्रि विना निशाचरोंका जीवन रहना कठिन होता है, क्योंकि दिनके समयमें अन्धकार दिखता है इस लिये खानेकी चीजें नहीं मिलनेसे देहमें जीवन नहीं रह सकता है, जैसे जल विना मीन नहीं बचती है वैसीही मेरी अवस्था होगी। जरूर आप कह सकते हैं कि स्त्रीको संग लेकर परमात्माका दर्शन मिलना असंभव है। यह बात मैंने मान ली, लेकिन वह बात तो मैंने बहुत दिनसे त्याग दी है; अब मातृ पितृभाव निर्विकारहै इस वास्ते कोई चिन्ताका कारण नहीं है। हमको यदि संसारका भाव रहता तो ओंकारका यह वेद मेरे पास कभी नहीं रहता। महाराज ! यथाशक्ति आपकी सेवा करनाही मेरा उद्देश्य है। इस लिये कहती हूं कि मेरे आपके साथ रहनेसे आप भी संसारकी चिन्तासे बच जावेंगे, और आपके कार्य्य भी

अच्छी तरहसे निर्व्वाह होंगे। मेरे भी चित्तमें ऋषियोंके दर्शनकी अभिलाषा है।

महाराज मनु प्रजापतिने मनहीमनमें विचार करके देखा कि रानी शतरूपा देवीने यह बात ठीक ठीक कही है। प्रकाशमें महारानीसे कहा—हे राज्ञी! जिससे भला हो वही करो, मैं तुम्हारे विरुद्ध नहीं हूं। यह कहकर महाराजने मन्त्रियोंको सम्बोधन करके कहा—हे मन्त्रिगण! हमारे साथ महारानी शतरूपा देवी भी जावेंगी। आपलोग राज्यरक्षाके वास्ते तमाम जिम्मा लीजियेगा। और ऋषियोंके पास जानेके वास्ते हमको और आत्मरक्षा करनेके वास्ते मनुष्योंको जो जो पदार्थ आवश्यक हों सब प्रस्तुत कीजिये। मन्त्रीगण महाराजका इस प्रकार वाक्य सुनकर महाराजा और महारानीके वास्ते ऋषियोंके पास जानेका उद्योग करने लगे। महाराजा और महारानीकी आत्मरक्षाके वास्ते अस्त्रधारी अश्वारोही पदातिक, छड़ीछातावरदार इसके अलावा हाथी, घोड़े, ऊंट, गधे, मजदूर, तम्बू इत्यादि असबाब जो जो आवश्यक था वह सब प्रस्तुत किया।

तम्बू और काष्ठनिर्मित पलंग आसनादि वस्त्रादि और वासन आदि समस्त लेकर द्वितीयमन्त्रीने सबके पहिले ऋषियोंके पास गमन किया ।

इधर महाराज और महारानीने ऋषियोंके स्थान पर जानेका दिन नियत करलिया । और मन्त्रियोंको राजनीतिकी शिक्षा देने लगे । इस तरहसे थोडे दिन व्यतीत होनेसे पीछे शुभ दिनमें महाराज और महारानी ऋषियोंके पास गये, सावधानताके वास्ते सबके आगे तुरी हुई । पीछे डंका बजने लगा, तिसके पीछे अस्त्रधारी पदाति, तिसके पीछे अस्त्रधारी अश्वारोही, उसके पीछे आसा सोटावरदार रास्तेके दोनों तरफ; उसके पीछे कपड़ेसे सजेहुए हाथी घोड़े ऊंट इत्यादि पशु, तिसके पीछे छाता पालकी लेजाने-वाले, तिसके पीछे तुरकसवार, तिसके पीछे हाथीकी पीठपर सोनेके सिंहासनके ऊपर महाराज और महारानी, तिसके पीछे फिर अश्वारोही पदाति इत्यादि महाराज और महारानी इस तरहसे चलनेलगे । थोड़े दिनके अन्दर पूर्वसमुद्रके तटपर ऋषियोंके पास उपस्थित हुए ।

पीछे द्वितीयमन्त्रीने महाराज और महारानीको साथ लेकर महाराजके खास तम्बूके भीतर प्रवेश किया। महाराज तम्बूके भीतर प्रवेश करके देखते हैं किस दरमें ऋषियोंके लायक आसन और महाराजका सिंहासन ठीक ठीक सजेहुए हैं। महारानीने भी दासियोंके रहने की जगहपर प्रवेश करके देखा। जगह जगह पर जो कुछ जरूरत है वह सब सुसज्जित होरहा है। किसी विषयकी कमी नहीं है। महाराज रहनेकी जगहकी यह व्यवस्था देखकर बहुतही खुश हुए पीछे सिपाहियोंके तथा और आदमियोंके रहनेकी जगह देखनेके वास्ते अपने तम्बूसे निकलकर धीरे धीरे सब जगह देखी और मन्त्रीके ऊपर बहुत खुश हुए। पीछे अपने तम्बूमें प्रवेश करके सिंहासनपर बैठ गये। आज इसी जगहपर एक नूतन राजधानी स्थापित हुई।

इधर ऋषियोंने महाराज और महारानीकी खबर पाकर उस जगहके जमीदारोंको सम्बोधन करके कहा—हे जमीदारो! तुमलोगोंके महाराज और महारानी इस जगहपर आये हैं;

इनके भोजनके वास्ते तैयारी करो। हम महाराज और महारानीके संभाषणके लिये जाते हैं। यह कहकर सप्तर्षिगण अपना अपना आसन छोड़कर महाराजाके पास गये। वहुत शीघ्र महाराजाके निकट पहुंचे। महाराजने उसी वक्त सिंहासनसे खड़े होकर प्रणाम किया; और ऋषियोंको उचित आसनपर बैठाकर महाराज आप भी बैठ गये। ऋषिगणने दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद किया और महाराजाको सम्बोधन करके पूछा-महाराज! राजधानीका समस्त कुशल तो है? तव महाराजने संसार सम्बन्धमें आदिसे अन्ततक ऋषियोंसे कहा। ऋषियोंने भी अपना वृत्तान्त महाराजासे कहा। महाराजने जव वेदग्रन्थके सम्बन्धमें ऋषियोंसे कहा था तव ऋषिगण उस वेदग्रन्थके दर्शनके वास्ते अत्यन्त व्याकुल हुए थे। इस लिये महाराज अधिक समय तक ऋषियोंके साथ बातचीत न करके उस जगहपर मन्त्रीको छोड़कर महारानीके पास गये और ऋषियोंके आनेकी खवर महाराज्ञीसे कही, और यह भी कहा—कि तुमको मिलेहुए वेदग्रन्थके

दर्शनके वास्ते ऋषिगण बहुत उत्कण्ठित हैं। महारानी महाराजाका इस प्रकार वाक्य सुन-करके उस वेदग्रन्थको हाथमें लेकर ऋषियोंके पास महाराजाके पीछे पीछे गईं। महारानीने ऋषि-योंके पास जाकर वृहत् आकारका वह वेद ग्रन्थ महात्मा ऋषिके हाथमें दिया और प्रणाम करके बैठ गईं। ऋषिगण उस वेदग्रन्थका दर्शन करके चकित हुए और उसे खोलकर पहिले लिखे हुए विषयको अवलोकन करके आनन्दमें मग्न होकर गद्गद वचनसे कहनेलगे, महारानी शत-रूपा देवी! तुम ही धन्य हो यह कहकर चुप हो गये।

इधर उन जमीदार लोगोंने ऋषियोंके आदेशसे महाराजाके वास्ते बहुतसी खानेकी सामग्री संग्रह करके आवश्यकतानुसार पृथक् पृथक् की और जगह२ तम्बुओंके अन्दर पहुँचाने लगे। राज-भोग और सर्व्व साधारणके वास्ते एकही प्रकार खाद्य सामग्री थी, कम जियादाका विचार नहीं है। अलग अलग रसोई होनेलगी आनन्दकी सीमा नहीं रही।

इधर ऋषिगणने महाराजा और महारानीसे कहा—महाराज ! अभी वात चीत करनेका समय नहीं है आप और महारानी दोनों दो तीन दिन मार्गके कष्टको दूर कीजिये। इस अवकाश- में हम महारानीके दिये हुए वेदका अध्ययन करेंगे यह ही मनमें स्थिर किया है।

महाराजने ऋषियोंका अभिप्राय समझकर उत्तर दिया—जो आज्ञा;आप लोगोंका वाक्य हमारे शिरोधार्य्य है। तव ऋषिगणने महाराज और महारानीके पाससे विदा होकर उस राजधानीमें सव सगहपर भ्रमण करके देखा किसी विषयकी कमी नहीं है। तव निश्चित होकर अपने अपने स्थानपर वैठ गये। और उसी वेदाध्ययनका प्रव- न्ध करते रहे।

प्रथम ऋषि वोले—मैं ऋगवेद अध्ययन करूंगा।

द्वितीय ऋषि वोले—मैं यजुर्वेद अध्ययन करूंगा।

तृतीय ऋषि वोले—मैं सामवेद अध्ययन करूंगा।

(वेदग्रन्थ) तैयार किया है वह हम लोगोंने आदिसे अन्ततक पढ़कर जो आनन्द लाभ किया है वह एकमुहसे वर्णन करनेकी शक्ति नहीं है। इस लिये हमने जो ओंकारके परिचयके वास्ते गायत्री नाम मन्त्र रचना किया है, वह गायत्री स्वयं आप मूर्तिमान हो। इस लिये आजसे आपका नाम वेदमाता गायत्री देवी संसारमें ख्यात होगा। हे गायत्री देवी! आपका हमारे ऊपर सहोदरके समान स्नेह रहा है। आपने इस जगतके जीवोंकी मुक्तिके वास्ते यह वेदग्रन्थ सृष्टि करके हमारा विशेष साहाय्य किया है अब इस संसारके जीवोंकी मुक्तिके वास्ते और हम लोगोंको कुछ नहीं करना होगा, और आपको धन्यवाद देते हैं, क्योंकि आपने गुरु बिन आत्मज्ञान लाभ करके यह अमूल्य वेदग्रन्थ संग्रह किया है। इस लिये आपकी बुद्धिशक्तिका वैभव देख करके हमलोग चकित हुये हैं। यह कहकर ऋषिगण चुप होगये। तब महाराज ऋषिगणको सम्बोधन करके बोले—अब हमको क्या करना होगा? इसकी व्यवस्था कीजिये।

द्वितीय ऋषि बोले—महाराज! आप और रानी कुछ दिन तक रहिये और आपके सैन्यसामन्त और इतर मनुष्योंको राजधानीपर भेजदीजिये, नहीं तो इस अवस्थामें आपका कार्य्य सुफल नहीं होगा।

महारानी बोलीं—आपने जो कहा सब सत्य है केवल महाराजाकी सेवाके वास्ते मेरा और जय विजयका महाराजके संग रहना काफी है, और इतर समस्त मनुष्य मन्त्रीके साथ राजधानीको वापिस चलेजावें।

तब तृतीय ऋषिने महाराजासे कहा—वेद माताने जो कुछ कहा यह बहुत सुन्दर है। अब महाराजाकी क्या इच्छा है।

तब चतुर्थ ऋषि बोले—शुभस्य शीघ्रम्।

पञ्चम ऋषि बोले—ठीक कहा है अशुभस्य कालहरणम्।

षष्ठ ऋषिने कहा—इन सब बातोंकी जरूरत नहीं है। अब कामकी बातें कहिये! महाराज की जैसी इच्छा होगी वैसा होगा।

तब महाराज बोले—आपलोगोंने जो कुछ कहा वही बात ठीक है । यह कहकर महाराज मन्त्रीको सम्बोधन करके बोले—कल समस्तलोग राजधानीको वापिस जावेंगे, आज ही इसका बन्दोवस्त कीजिये । तब मन्त्री महाराजका आदेश पाकर सब लोगोंको सम्बोधन करके बोला तुम लोग आजही तैयार होजाओ, कल प्रातःकाल ही राजधानीको वापिस जाना होगा । इस प्रकार परमात्माकी उपासनाके सम्बन्धमें बातचीत करके ऋषिगणने महाराज और महारानीको सुस्थिर किया ।

सप्तम ऋषि बोले—हमारी एक बात पूछनेकी अभिलाषा हुई है, यदि रानी साहेब अनुमति देवें तो प्रश्नकरनेका साहस करें ।

महारानी शतरूपा देवीने कहा—हे महात्मागण ! आपलोग मुझसे जो चाहें सो पूछें इसमें अनुमतिकी क्या आवश्यकता है आपको जिससमय जिस बातकी आवश्यकता हो अवश्य पूछिये, मैं अपनी सम्मतिके अनुसार उत्तर देनेमें अपना सौभाग्य समझूंगी ।

महारानीका विनययुक्त वाक्य सुनकर प्रथम ऋषि बोले—हे महारानी ! आपने भयावह गृहस्थ-धर्मावलम्बिनी होकर किस प्रकारके कार्यद्वारा आत्मज्ञान लाभ किया ? इस बातको सुननेके लिये हमारा मन अत्यन्त चञ्चल है, इसलिये यह वर्णन कर हमारी इच्छा पूर्ण कीजिये। तब रानी ऋषि-योंसे बोलने लगीं—हे महात्मागण, मैं जन्मसे निरवधि निरन्तर उसी सूर्य्यदेवकी धारणा, ध्यान, दर्शन, आकर्षण, करती थी, जिससे उस सूर्य्यदेव-प्रति मेरा दृढ विश्वास है इन्हीं जगत्कर्ताकी उपा-सना नहीं करके हम जलग्रहण भी नहीं करतीं। इस प्रकार गृहस्थाश्रममें वहुत काल गत होने-पर जिस दिनसे महाराजने गृहस्थाश्रम त्याग-दिया उसी दिनसे हमको भी समय मिला, संसा-रकी चिन्ता एकदमसे अन्तर्हित हुई। सुतरां मेरा मन भी पवित्र हुआ, पीछे सदानन्द एकाग्रचित्त होकर जगदात्माकी धारणा, ध्यान, दर्शन, आक-र्षण दिनके मध्यमें तीन समय (प्रभात, मध्याह्न, नहीं है। अब कासना करनेलगी। इसी पकार की जैसी इच्छा। एक दिन स्नानादि क्रिया सम्पन्न

करके उसी स्थानमें भजनासन स्थापन किया। पीछे उसी आसनपर बैठकर चक्षु मुद्रित कर, एकाग्रचित्त होकर सूर्यास्त्रकी धारणा ध्यान आकर्षण करनेलगी। उसी समयमें स्वप्नके समान दर्शन किया कि मेरे सामने अथाह जलके मध्यसे ॐ शब्द हुआ और वही जल ऊंचा होकर कुछ काल तक रहा। पीछे उसी समय वही जल टूटकर लहर स्वरूपमें परिणत, हुआ पीछे वही लहर हुँहूँ शब्दमें तीरकी तरफ आकर मेरे मस्तक तक भेद करके मेरे पीछेकी तरफ कुछ दूर जाकर वही जल समुद्रजलमें लय होगया। इसी प्रकार उसी समुद्रजलने ७ दफे क्रमसे मुझे अतिक्रम करनेको आवागमन किया और उसी ध्यानावस्थामें ही ॐ ज्योतीरूप कमलाकृति मेरे हृदयाकाशमें होकर उस कमलाकारके सूक्ष्मशरीरके ठीक मध्यभागमें तीन प्रकारके तीन चिह्न मेरे दृष्टिगोचर हुए। तब मैंने मनमें विचार किया वही ओम् शब्द तीन चिह्नमात्र है जिसका प्रथम चिह्नका नाम अ, दूसरे चिह्नका नाम उ, तृतीय चिह्नका नाम म, है। यही तीनों चिह्न एकत्रित होकर ओंकारशब्द

हुआ। पीछे क्रमसे देखते हैं, उनही तीनों चिह्नोंसे एक एक करके बहुत प्रकार पृथक् पृथक् रूप चिह्न बाहर होनेलगे। हमने यही नामरूप चिह्न पृथक् पृथक् मनमें धारणा करके रखलिये। तब मेरा ध्यानभङ्ग हुआ। इसी प्रकार दर्शन करके मेरे मनमें आनन्द होने लगा। पीछे मैं अपने घरमें चली-गई, वहां किंचित् विश्राम करके आहार करना आरम्भ किया। उसके अन्तमें अकेली शयनागारमें प्रवेश कर वही चिह्न समस्त पृथक् पथक रूपसे एक भोजपत्रमें स्याही कलम तैयार करक उसी कलमसे प्रत्येक चिह्न अङ्कित किया। पीछे वही चिह्न समस्त मातृभाषामें उच्चारण करके जिह्वा, तालु, ओष्ठ, दन्त इत्यादि द्वारा जो समस्त स्वर व्यञ्जन वर्ण उच्चारण होते हैं उनको पृथक् पृथक् करके पृथक् पृथक् वर्णका पृथक् पृथक् नाम करण किया, इसी सम्बन्धमें आप लोगोंसे विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि आपको यह विषय अच्छी तरह विदित है। इसी प्रकारसे हमको देवाक्षर समस्त ज्ञात हुए, उसदिन उसी अवस्थामें समय बिताया।

दूसरे दिन प्रत्यूषमें शय्यासे उठकर स्नाना-दिक्रिया सम्पन्न करके परमात्माके भज-नासनमें बैठकर वही ओंकार उच्चारण करके हृद-यमें सूर्यात्माकी धारणा करके ध्यान करने लगी। उस समय वही ज्योतीरूप ॐकार मेरे हृदया-काशमें ॐकारकार्य्य अर्थात् वेद और ॐकारका शब्द अर्थात् ओंकारका कार्य प्रकाशक श्रुति वही देवाक्षर द्वारा मुझको मालूम होनेलगी। तब मैं आनन्दपूर्ण हुई, उस समय मनमें चिन्ता की इसी ओंकार द्वारा जगत्के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं अर्थात् हमारे हृदयाकाशमें जिस प्रकार दर्शन किया ठीक उसी प्रकार वही देवा-क्षरसे तालपत्रमें लिखकर जगत्के समस्त मनु-ष्योंको विदित करावेंगे ऐसी चिन्ता करते करते मेरा ध्यान भंग हुआ; उसी समय आसन परि-त्याग करके गृहमें प्रवेश किया, एवं तालपत्र संग्रह करके वही वेदशास्त्र लिखना आरम्भ किया और सर्वदा उस ओंकारका उच्चारण करते रहे; ऐसा कि सोने चलने बोलने आदि कोई समय भी उसको नहीं छोड़तेथे और सूर्य्यात्माकी धरणा

ध्यान, दर्शन, आकर्षण प्रतिदिन दिनमें प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकालमें तीन समय करते थे; परन्तु दुपहरके सूर्यनारायण तापके वास्ते जलमें उन्हींका प्रतिविम्ब दर्शन करते थे। इस प्रकार कुछ समय वीतनेपर एकदिन परमात्माकी विभूति साधारण ज्योतियुक्त नाना प्रकारकी मेरी दृष्टिमें आई। क्रमसे अत्याश्चर्य पदार्थ अर्थात् चन्द्र सूर्य नक्षत्रके ऊपर जो कुछ पदार्थ है उस समस्तका दर्शन किया। पीछे आनन्दलाभ करके अपनी बुद्धिशक्ति द्वारा योग क्रियादि और योग समाधिपर्यन्त अभ्यास किया, पीछे उसी ओंकारके अखण्डनीय सत्त्वकार्य अर्थात् वेद और ओँकारके शब्द अर्थात् ओँकार सत्त्वकार्य प्रकाशक श्रुतिको ही विस्तृतरूपसे अर्थात् मेरे हृदयाकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन किया। उसी अनुसार अविकल वही देवाक्षर द्वारा ताड़पत्रमें लिखीहुए उस समस्त गूढ़ रहस्य लिखनेमें बहुत समय वीत गया, परन्तु आज तक यह वेदसम्बन्ध किसी मनुष्यको मालूम नहीं, केवल एक दिन महाराजने मुझसे पूछा कि हे रानी, इस जगत्में हम अपने वंशोद्भव मनुष्य-

गणको आचार व्यवहार और धर्मसम्बन्ध इत्यादिमें किस प्रकार शिक्षा देंगे ? यह चिन्ता करके स्थिर न करसका; इसवास्ते मुझे अत्यन्त चिन्ता हुई, तब मैंने कहा—महाराज ! हमारे पास देवाक्षर स्वर व्यञ्जन आदि ४९ अक्षर हैं उन्हींसे जिस प्रकार वाक्य लिखनेकी इच्छा करेंगे मनमाना लिख सकेंगे। इस प्रकार कहकर वह ४९ वर्ण एक तालपत्रमें लिखकर महाराजके हाथमें अर्पण किया । महाराजने उन देवाक्षरों द्वारा संहिता लिखी; एवं संसारके मनुष्यगणको देवाक्षरादि विद्याकी शिक्षा देनेके वास्ते प्रतिस्थानोंमें विद्यालय स्थापित किये ।

जिस दिन वेदशास्त्र अध्ययनके लिये महाराजको दिया थी उसी दिनसे हमको कहनेलगे कि यह वेदशास्त्र तुमको कहां मिला ? हमने उत्तर दिया—अभी इन सब बातोंके कहनेका समय नहीं आया; इतना मात्र कहकर चुप होगये। यही मात्र आप लोगोंके पास महाराजके सामने बुद्धितत्त्व प्रकाशित किया। अतएव हे महात्मागण ! मैंने अपनी अवस्था आद्यन्त अति

वर्णन की। मेरा विश्वास है कि इसीसे आप लोगोंने समस्त वृत्तान्त समझ लिया।

ऋषिगण, अयोनिसम्भवा मानवीरूपा शतरूपा देवीके मुखसे ऐसे वाक्य श्रवण करके आसन परित्याग कर दण्डायमान होकर ऊँचेसे बोलने लगे—हे अयोनिसम्भवा मानवीरूपा प्रकृति आत्मा! इस संसारमें तुम्हीं धन्य हो। यह कहकर ऋषिगण आनन्दमें मग्न होकर अपने अपने आसनोंपर उपविष्ट हुए।

प्रथम ऋषि बोले—महाराज, दिन गतप्राय होगया, हम लोग इस समय गुरु (समुद्र) दर्शनके निमित्त जाते हैं; यह बात सुनकर महाराज बोले हम लोग भी आपके संग जावेंगे, तब ऋषिगण, महाराज, महारानी, दास दासी एकत्र होकर समुद्रके तीरपर उपस्थित हुए, एवं समुद्रको प्रणामपूर्वक सब दंडायमान हुए।

द्वितीय ऋषि बोले—महाराज, देखिये सूर्यदेव क्या करते हैं? पश्चिमाकाशने कैसी शोभा धारण की है! देखिये! मैं समझता हूं सूर्य देव स्नानादि क्रिया सम्पादन करनेके लिये

समुद्रके पूर्व घाटसे पश्चिम घाटमें आकर उसी नाना वर्णविशिष्ट सुगन्धयुक्त पुष्पवाटिकामें आये।

द्वितीय ऋषि बोले—हम समझते हैं सूर्यदेवने आलस्य परित्याग करनेके वास्ते समुद्रके पूर्व घाटसे पश्चिम घाटमें आकर पुष्पशय्यामें शयन किया है।

तृतीय ऋषि बोले—मेरी बुद्धिमें आता है कि सूर्यदेव समुद्रके पूर्व घाटसे पश्चिम घाटमें आकर मार्गश्रम दूर करनेके लिये पुष्पोद्यानमें पवित्र सुगन्धयुक्त वायु ग्रहण करते हैं।

चतुर्थ ऋषि बोले—कि मेरी समझसे सविता देव गुणातीत परमात्माके दर्शनके लिये भवसमुद्रके पूर्व दिशासे पश्चिम दिशामें आनेकी पथश्रान्ति दूर करनेके लिये उसी पुष्पवाटिकामें किञ्चित् विश्राम करते हैं।

पञ्चम ऋषि बोले—मैं समझता हूं भगवान् भास्कर ने दुष्टदमनके वास्ते अपना सेनादल महारथी शस्त्रधारी बीस पुरुषगणको सम्बोधन किया, वे सब नानावर्णयुक्त नाना प्रकारके वस्त्रादि पहनके युद्धवेशमें उनके सामने उपस्थित हुए।

षष्ठ ऋषि बोले—हम समझते हैं कि जगतके जीवगणोंने सूर्यदेवको निमन्त्रण किया है, उसीकी रक्षाके लिये सूर्यदेव नानाविध वसन भूषणोंसे सज्जित होकर इस पृथिवीमें उदय हुए। इस प्रकार नाना कल्पना द्वारा आनन्द लाभ करके महाराजाके साथ राजाश्रममें आये। एवं ऋषिगण महाराज और महारानीसे बिदा होकर अपने अपने आश्रममें प्राप्त होकर बैठे। महारानी शतरूपा देवी सम्बन्धी कथोपकथन होने लगा।

प्रथम ऋषि बोले—हमारी बुद्धिशक्तिकी अपेक्षा रानीकी बुद्धि अधिक है।

द्वितीय ऋषि बोले—हां; भक्तिमार्गमें।

तृतीय ऋषि बोले—केवल भक्तिमार्ग क्यों परन्तु अष्टाङ्गयोगका समस्त साधन किया है।

चतुर्थ ऋषि बोले—पहले विश्वास पीछे भक्ति; इस प्रकार ज्ञानलाभ किया उसीके द्वारा क्रियायोगी हुआ। इस कारण महारानीको भक्तियोगिनी ही कहना चाहिये।

पञ्चम ऋषि बोले—आपने जो कहा वह बात सच तो है किन्तु क्रियायोगीसे भक्ति योगीको

ही श्रेष्ठ कहना चाहिये । जिस कारण भक्तिमार्ग अत्यन्त कठिन है ।

षष्ठ ऋषि बोले—आपने यह बात ठीक कही, किन्तु अज्ञानावस्थामें ही भक्तिका उदय होता है और ज्ञानावस्थामें भक्तिमार्गका ह्रास होता है ।

सप्तम ऋषि कहनेलगे—कि यह भी ठीक है, किन्तु ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी, भक्तिका मनमें आना ही कठिन है ।

प्रथम ऋषि बोले—विचार कीजिये! जो कार्य कठिन है वही सर्वोत्तम होता है इसमें कुछ सन्देह नहीं ;

ऋषिगणोंके इस प्रकार धर्मसम्बन्धमें आलोचना करते करते निशाका अवसान होगया ।

प्रथम ऋषि बोले—आज महाराजाके सङ्गवाले सब लोग राजधानीको जावेंगे । हम लोगोंको उस समय महाराजके पास रहना उचित है; नहीं तो महाराज और महारानीके मनमें चञ्चलता आजानेका सम्भव है । अत एव इस समय प्रातःक्रियासे निवृत्त होजाना आवश्यक है । यह

कहकर ऋषिगणने समुद्रतटमें उपस्थित होकर गुरुदेव (समुद्र) को साष्टाङ्गप्रणाम-पूर्वक स्नाना दिक क्रिया समाप्त की । उसी समय पूर्व दिशाने रक्तिमाकार धारण किया, क्रमसे वह बहुविध वर्णोंसे रञ्जित हुई । मेरी समझमें आता है जैसा एक कदम्बवृक्षने अतिसुन्दर गोलाकार पुष्प प्रसव किया है, तुम लोग देखो कि पूर्वदिशाकी कैसी शोभा हुई है सूर्यदेवने उदय होकर मानो उस कदम्बवृक्षमें आरोहण किया है । इस प्रकार सूर्यो-दय वर्णन कर ऋषिगण महाराजके समीप प्राप्त हुए। महाराजने दण्डवत्प्रणाम कर प्रेमपूर्वक उनको आसनोंपर विराजमान होनेका आग्रह किया, ऋषिगण भी महाराजाको आशीर्वाद देकर आस-नोंपर विराजे । एवं महाराजको भी उपवेशन कर-नेको कहा, तब महाराज और महारानी अपने अपने आसनोंपर शोभित हुए । समस्त राजकर्म-चारी मन्त्रीके साथ राजादेशसे राजधानीको चले गये ।

प्रथम ऋषिने महाराजसे प्रश्न किया कि महा-राज, आपके अनुचरवर्गके चलेजानेसे मनमें कुछ चञ्चलता तो नहीं है ।

महाराजने उत्तर दिया–हे महात्मागण, उन लोगोंने राजधानीमें गमन किया इससे मेरा मन प्रसन्न है और विवेक भी विवृद्ध हुआ अब आनन्दानुभव कररहा हूं। इसवास्ते आपलोग कुछ चिन्ता न करें।

प्रथम ऋषि महारानीको लक्ष्यकर बोले- अब महाराजके भजनका प्रबन्ध किस प्रकार करना चाहिये?

महारानी बोलीं–हे महात्मागण! आपके सामने हम क्या बोलें हां, इतना चाहती हूं कि जिसमें शीघ्र महाराजको फलप्राप्ति हो ऐसा प्रबंध कीजिये।

प्रथम ऋषि बोले–हम लोगोंने जिस प्रकार परमात्माकी उपासना की है उसी प्रकार महाराज भी करेंगे। ऐसा कहके वह महाराजसे बोले कि महाराज! अभी चलिये, समुद्रको गुरु मानिये जो कुछ पीछे हो देखाजायगा। महाराज ऋषिके मुखसे ऐसा वाक्य सुनकरके उसी समय सिंहासन छोड़कर दण्डायमान हुए। महाराजाके संगमें ऋषिगण और महारानी, जयन्ती, जय,

विजय भी आसन छोड़कर दण्डायमान हुए, पीछे ऋषिगणके पीछे पीछे सभी समुद्रतट पर गये। इस प्रकार शीघ्र समुद्रतट पर प्राप्त होकर समुद्रको प्रणामपूर्वक सभी दण्डायमान हुए।

प्रथम ऋषि वोले—महाराज! सुनिये कि गुरुदेव (समुद्र) क्या कहते हैं? तव महाराज ऋषिगणको लक्ष्य करके बोले—आज मेरा पुनर्जन्म हुआ; इस प्रकार पवित्र भाव मेरा आज तक नहीं हुआ था। हे परमात्मन्, तुम धन्य हो। तव ऋषिगण उच्चस्वरसे वोले—महाराजका जय! इस प्रकार कहकर सव गुरु समुद्रको प्रणामपूर्वक आश्रमके सामने गये। इस तरफ जमींदारगणने महाराजाके योग्य भोज्यसामग्री राजाके लिये तैयार करके रखदी।

उधर ऋषिगण महाराज महारानी प्रभृति सभी राजाश्रममें आकर यथायोग्य आसनमें वैठगये, किञ्चित् विश्राम करनेके लिये धर्मविषयमें कुछ कथोपकथन करने लगे। जय, विजय, जयन्ती, रसोई घरमें प्रवेश करके राजभोज इत्यादि रन्धन करने लगे। ऋषिगण

महाराज और महारानीसे विदा होकर अपने अपने आसनोंपर बैठगये। एवं फल मूल संग्रह-पूर्वक भोजन आदि सम्पन्न करके महाराजाके सम्बन्धमें कथोपकथन करने लगे।

प्रथम ऋषि बोले—मध्याह्नकालके सूर्योपासनाका स्थान तो वही पुष्करिणी तट ही होगा और प्रातःकाल तथा सन्ध्यासमय समुद्र-तट ही पर उदय और अस्तका दर्शन होगा। आहारके सम्बन्धमें सात्त्विक पदार्थ रहेंगे। पीछे जब महाराजाका भजन पूर्ण होजायगा अर्थात् आत्मज्ञान होजायगा तब समाधियोगादि क्रिया करनेके लिये बहुत मिलेंगे।

प्रथम ऋषि इस प्रकार वाक्य बोले तो दूसरे ऋषियोंने उनका समर्थन कर अपनी अपनी सम्मति प्रकाशित की। इस प्रकार ऋषिगणके कथोपकथन करते करते प्रथम ऋषि बोले—महाराजाकी ब्रह्म उपासनाके लिये हम लोगोंको और कुछ चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

द्वितीय ऋषि बोले—जब तक आपका कार्य सिद्ध न होगा तब तक हम लोगोंका निस्तार नहीं।

तृतीय ऋषि बोले—यह बात ठीक है ।

चतुर्थ ऋषि बोले—जो होना होगा होगा । कल प्रातः काल महाराजको परमात्माकी उपासना सम्बन्धीकार्य आरम्भ करनेको कहना चाहिये; 'शुभस्य शीघ्रम्' इस न्यायसे विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है ।

पञ्चम ऋषि बोले—आपका कहना यथार्थ है । शुभ कार्य जहां तक बने शीघ्र करना चाहिये । 'अशुभस्य कालहरणम्'

षष्ठ ऋषि बोले—मेरे मनमें एक बात आई है आप लोग सुनिये ! महारानीने वेदके सम्बन्ध में जो कहा मेरे हृदयाकाशमें उसी वेदशास्त्रका दर्शन हुआ है, ठीक उसी प्रकार हमने ग्रन्थके आकारसें लिखा है, इसमें विन्दुमात्र भी व्यतिक्रम नहीं हुआ; किन्तु हम लोग उसी वेदशास्त्रके सम्बन्धमें कुछ नहीं जान सके, अत एव मेरी इच्छा सबको यही वेदशास्त्र दर्शनके लिये एक बार सङ्कल्प करके ध्यान करनेकी है, तब अन्यान्य ऋषिगणने षष्ठ ऋषिके मुखसे इस प्रकारके वाक्य सुनकर आनन्द चित्तसे

उसी वेदके दर्शनार्थ सङ्कल्प किया। एवं अपने अपने आसनोंपर बैठकरके ओंकारका ध्यान आकर्षण करने लगे। कुछ समयके पीछे वही वेदशास्त्र प्रत्येक ऋषिगणके हृदयाकाशमें आविर्भूत हुए, पीछे क्रम क्रमसे सभीको ओंकारका मर्म अर्थात् वेद अवगत होकर उसी ध्यानअवस्थामें ही आनन्दका अनुभव होने लगा। पीछे ऋषिगणका ध्यान भंग हुआ। दिनका प्रायः अवसान होगया, ऋषिगणने अपना अपना आश्रम छोड़कर समुद्रके दर्शनके लिये यात्रा की। इस तरफ महाराज और महारानी आहार करने पर अन्तः पुरमें निर्दिष्ट आसनोंपर बैठे। महाराज महारानीको सम्बोधन करके बोले—हे रानी, पहले जो तुमने ध्यानावस्थामें समुद्रदर्शन किया है और इस समय भी प्रत्यक्ष दर्शन कररही हो इसमें कुछ भेद (फर्क) है कि नहीं? रानी बोली—महाराज, ध्यानावस्थामें ठीक उसी प्रकार ही दर्शन किया परन्तु हमने जिस स्थानपर आसन लगाया था उसमें मात्र भेद है, अर्थात् उस प्रकार स्थान नहीं दीख पड़ता, जैसे हमारे चारों ओर नाना प्रकारके वृ-

क्षोंका घेरा था वह वृक्ष यहां नहीं देख पड़ते । जैसा सूर्योदयके पहले पूर्वदिशामें नानारंगकी मेघमालाके वीचमें दर्शन होता है वैसा ही ।

ध्रुव महाराज वोले—रानी, तुमने आत्मज्ञान और वेदसम्बन्धमें इतने दिन तक मुझसे क्यों नहीं कहा ? महारानी वोलीं—महाराज, मेरी इन समस्त असम्भव घटनाओंका आपको विश्वास ही न होगा । इससे मैं नहीं वोली । ऋषिलोगोंसे वोलनेका यह प्रयोजन है कि वे आत्मज्ञानी हैं; मेरी और उनकी अवस्था एक ही प्रकारकी है । ऋषिगण मेरी अवस्था श्रवण करके मनमें वड़े आनन्दित हुए, उनके संग यह वात सुनकर सत्य समझ आप भी आनन्दित हुए । और जव आप आत्मज्ञान लाभ करेंगे तव और भी आनन्द लाभ होगा । इस प्रकार नाना प्रकारके विषयमें कथोपकथन करते हुए ऋषिगण समुद्रदर्शन करके महाराजके पास प्राप्त होगये । महाराज उनके दर्शनलाभसे अन्तःकरणमें आनन्दित हुए; और आसन परित्याग कर दण्डायमान होकर हाथजोड़ प्रणाम करते हुए आसनों पर वैठनेकी अभ्यर्थना करने लगे ।

ऋषिगण आशीर्वादपूर्वक निर्दिष्ट आसनों-पर बैठनेके उपरान्त बोले—महाराज, कल प्रातःकाल आपको परमात्माका भजन आदि करना चाहिये। विलम्ब करनेसे कुछ लाभ नहीं। जितना शीघ्र कार्य सिद्ध हो अच्छा है। तब महाराज बोले—हमको जब जो आज्ञा होगी उसी समय हम उसका पालन करेंगे, इसमें कुछ त्रुटि न होगी, कल क्या कार्य करना होगा आज्ञा कीजिये।

ऋषिगणने फिर आत्मोपासना सम्बन्धमें आद्यन्त विस्तृत रूपमें वर्णन किया। पीछे महाराज और महारानीसे बिदा होकर अपने आसनोंपर बैठगये। रात्रि अनुमानसे दश घटी व्यतीत हुई होगी कि ऋषिगणने काष्ठोंका परस्पर घर्षण कर अग्नि उत्पन्न किया, और बड़ी धूनी लगाकर उसके चारों ओर बैठ गये। और धर्मके सम्बन्धमें नाना प्रकारके प्रश्नोत्तर करने लगे।

प्रथम ऋषि बोले—शरीरकी रक्षाके लिये कुछ भोजनकी आवश्यकता है कि नहीं?

तब दूसरे ऋषि बोले, भोजन अवश्य करना चाहिये, ऐसा कहकर दोपहरके अवशिष्ट फल और मूल निकालकर परस्पर सभीने भोजन किया। अन्तमें वह संसारसम्बन्धी आलोचना करने लगे।

प्रथम ऋषि बोले—संसारमें मनुष्य जीव ज्ञानशक्ति न होनेसे कर्मफलोंमें बहुत ही अकालमें कालकवलित हो जाता है, अत एव इसके प्रतीकारके लिये हम लोगोंको विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

द्वितीय ऋषि बोले—अकालमृत्युसे रक्षा करनेके लिये केवल ब्रह्मचर्य ही धारण करना चाहिये; किन्तु समस्त मनुष्य ब्रह्मचर्य करने लगजाँय यह असम्भव है।

तृतीय ऋषि बोले—यह सच बात है मेरी सम्मतिमें अज्ञानी और ज्ञानवान्को पृथक् करके धर्मशिक्षा अवश्य देना चाहिये। अज्ञानियोंको ज्ञानोपदेश करनेसे पहले ही यथार्थ तत्त्व नहीं कहना चाहिये, क्यों कि वे यथार्थ तत्त्वको ग्रहण नहीं कर सकते।

चतुर्थ ऋषि बोले—आपका कहना यथार्थ है। ज्ञानसम्बन्धमें विशेष विचार पूर्वक कार्य करना चाहिये । हम लोगोंको राजधानीमें जाकर और सब मनुष्योंको इकट्ठा करके ज्ञान और अज्ञान अल्पाधिक क्रमसे विभाग करना चाहिये; पीछे जो जैसा अधिकारी हो उसीके अनुसार उसको उपदेश करना चाहिये, इस प्रकार व्यवस्था करनेसे संसार सहजमें ही चल सकेगा। इस प्रकार कथाप्रसंगमें रात शेष होने-को आगयी, पूर्वदिशामें प्रभातकालिक नक्षत्र उदित होगये; तब ऋषिगणने आसन छोड़कर प्रातः स्नानके लिये समुद्रमें गमन किया ।

उधर महाराज और महारानी धर्मसम्बन्धके विषयमें नाना प्रकार कथोपकथन करने लगे।महारानी बोलीं-कि महाराज आपके सौ पुत्र और सौ कन्या जन्म लेनेको कितना समय व्यतीत हुआ, विचारिये! उसी समयसे यदि परमात्मचिन्तन आप करते तो इतना कष्ट न होता।

महाराज बोले—रानी, आपको आत्मज्ञान लाभ करके क्रम क्रमसे बुद्धिशक्ति होना उचित है या लोप होना चाहिये, यह विचार कर कहिये। मुझे अवकाश कहां था रात दिन सांसारिक कार्योंमें लिप्त रहा; परन्तु आपको सांसारिक बातोंकी चिन्ता नहीं थी। हम आत्मज्ञानमें ही तत्पर होजाते तो परमात्माकी सृष्टिकी क्या दशा होती?

महारानी बोलीं—महाराज! रोष मत कीजिये, परमात्मा इस संसारकी व्यवस्था स्वयं करते हैं; इस वास्ते परमात्माने पहले ही सप्तऋषियोंको सृजके संसारमें भेजदिया है; अत एव महाराज, आपका भ्रम अभी तक नहीं छूटा। जितने दिन यह भ्रम आपके मनमें जागरूक रहेगा तब तक परमात्माका दर्शन नहीं मिलेगा, इस वास्ते मैं कहती हूं कि यह भ्रम पहले ही हटाना उचित है, इसको ही अहंकार कहते हैं इस संसारको ही अहंकार समझना चाहिये।

महाराज बोले—आपका वाक्य ठीक है, किन्तु यह संसार भी परमात्माका ही है। सुतरां

हमको बाध्य होकर वह संहिता नहीं लिखनेसे संसारमें नाना प्रकारका उपद्रव होता। मूल बात यही है कि समस्त ब्रह्माण्ड परमात्माका कार्य है।

इस समय हमने अपने कार्यका आरम्भ किया है। इसमें जब कुछ त्रुटि हो तब आपको बोलना पड़ेगा। तब रानी बोली—जो होगया उसकी क्या चर्चा है, इस समय महात्मा ऋषिगणोंकी व्यवस्थाके अनुसार वर्तन करना चाहिये। सूर्योदयके पहले ही समुद्रतट पर गमन करना चाहिये। परन्तु आपके संग हमको जाना चाहिये कि नहीं? महाराज बोले—पहले दिन आप सभी मेरे साथ जासकते हैं, पीछे अकेले जानेसे मन एकाग्र होगा; तव भजनप्रसंगमें और लोगोंका साथमें रहना युक्त नहीं। महारानी बोलीं-यह सव आपकी इच्छा पर निर्भर है. इस तरफ ऋषिगण समुद्रजलमें प्रातःस्नानादि सम्पन्न करके महाराजके आगमनकी अपेक्षा करने लगे। जब देखा कि महाराज, महारानी, जय, विजय, और जयन्ती आश्रमसे समुद्रकी ओर आते हैं। तब वे भी शीघ्र समुद्रतट पर पहुंचगये। उस

समय भी सूर्यदेव उदय नहीं हुए थे । ऋषिगणने दण्डायमान होकर महाराजको आशीर्वाद देकर कहा कि महाराज, अभी बड़ा आनन्दका अवसर है, पूर्वकी तरफ सूर्योदयकी अपेक्षा करो । महाराज ऋषिगणको प्रणाम करके पूर्वकी ओर दण्डायमान रहे । यह देख जय विजय और जयन्ती भी सूर्यकी ओर दण्डायमान रहे । थोड़े ही समयमें सूर्यदेवका उदय हुआ । महाराज बड़े प्रेमसे दर्शन करने लगे । इस प्रकार महाराज प्रभात और सन्ध्यासमयमें प्रतिदिन सूर्यदर्शनके लिये समुद्रतटमें जाने लगे । सदा इसी प्रकार मध्याह्नकालिक सूर्यका तालाबके जलमें प्रतिबिम्ब दर्शन करने लगे । पहले दिन ऋषिलोग महाराज के साथ थे, पीछे महाराज अकेले ही दर्शन कार्य सम्पन्न करने लगे । इस तरफ राजाश्रममें जय, विजय और जयन्तीने भी सूर्यदर्शन और ओंकारोच्चारण विधिपूर्वक करना प्रारम्भ किया ।

एक दिन महारानी और जयन्ती दासी अन्तःपुरमें प्रवेश कर निर्दिष्ट स्थानमें बैठ गईं । कुछ देर विश्राम करनेके पीछे जयन्तीने

कहा—हे महारानी! मेरे मनमें धर्म्मके विषयमें अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न हुए हैं, यदि आपको कुछ कष्ट न हो तो मैं धर्म्मके विषयमें कुछ प्रश्न करना चाहती हूं।

महारानी शतरूपा देवी कहने लगीं—जयन्ती! दुःख और सुख संसारमें हुआ ही करते हैं यह कोई अपूर्व बात नहीं है; और मैं उसे बहुत दिनोंसे छोड़ चुकी हूं, क्या तुझे यह मालुम नहीं है? इस वास्ते तेरी जिस समय जो इच्छा हो वह मुझसे पूछ सकती है। यथार्थमें तुझे कुछ पूछनेकी इच्छा होने पर मुझे छोड़ पूछनेका और स्थान ही नहीं है जहां जाकर तू पूछे! जयन्ती इस प्रकार महारानीके अभय युक्त वचनोंको सुनकर आनन्द सहित नानाप्रकारके प्रश्न करने लगी।

(१ प्रश्न) आत्मा और अनात्मा किसका नाम है?

(१ उत्तर) जो तीनों देहोंसे भिन्न है, पञ्च कोशोंसे विलक्षण है, तीनों अवस्थाओंका साक्षी और सच्चिदानन्दस्वरूप है उसका नाम आत्मा है। और अनित्य जड़ दुःखात्मक समष्टि व्यष्टि स्वरूप

जो तीन शरीर हैं उनको अनात्मा कहते है ।

(२ प्रश्न) तीन शरीरोंके क्या क्या नाम हैं और शरीर किसे कहते हैं ।

(२ उत्तर) स्थूल सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरोंको शरीरत्रय कहते हैं । जौर पञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंका जो कार्य्य हो कर्मसे उत्पन्न होता हो और जन्म आदि छः भावविकारोंसे युक्त हो, ऐसे पदार्थको शरीर कहते हैं । इसी वास्ते कहा गया है कि सञ्चित कार्मोंकी सहायतासे पञ्चीकृत पञ्च-भूतोंसे जो उत्पन्न हो और जो सुख और दुःख अनुभव करनेका स्थान हो उसका नाम शरीर है। वचपन कुमारावस्था जवानी और बुढापा इत्यादि अवस्थाओंसे ही यह धीरे धीरे नष्ट होजाता है, इस वास्ते इसका नाम शरीर पड़ा है ।

(३ प्रश्न) हे माता! तीन ताप किन्हें कहते हैं?

(३ उत्तर) जो ताप या दुःख शरीरको अधि-कार करके वर्तमान रहते हैं उनको आध्यात्मिक ताप कहते हैं जैसे मस्तिष्कके रोग इत्यादि । किसी अन्य जीवसे उत्पन्न होने वाले दुःखको आधिभौतिक कहते हैं जैसे व्याघ्र आदि हिंसक

जंतुओंसे अथवा चोर आदिसे होनेवाला दुःख और सञ्चित कर्मके फलसे देवताओंके द्वारा जो दुःख प्राप्त होता है उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं; जैसे बिजलीके गिरने आदिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख।

अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंसे उत्पन्न होनेवाले सत्रह पदार्थोंसे बनेहुए शरीरको लिङ्गशरीर कहते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय प्राण आदि पांच वायु, बुद्धि और मन ये सप्तदश पदार्थ हैं। कर्ण, त्वक्, चक्षु, रसना, और, नासिका इन पांचके नाम ज्ञानेन्द्रिय हैं।

जो कर्ण नहीं है किन्तु कर्णके छिद्रको आश्रय करके शब्दका प्रत्यक्ष करता है उसको श्रवणेन्द्रिय कहते हैं।

जो इन्द्रिय त्वक् नहीं है परन्तु त्वक् का आश्रय करके स्थित है और पैरसे लेकर शिर तक व्याप्त है। ठण्ढा गरम आदि स्पर्शको जाननेकी जिसमें शक्ति है उसे स्पर्शनेन्द्रिय कहते हैं।

जो रसनासे भिन्न है किन्तु रसनाके आश्रित है और रसनाके अग्रभागसे स्थित रसके गृहण करनेकी शक्ति रखती हो उसे रसनेन्द्रिय कहते हैं!

जो नासिका नहीं है परन्तु नासिकाके आश्रित रहकर नासिकाग्रवर्ती गन्धको गृहण करनेमें समर्थ इन्द्रिय है उसे घ्राणेन्द्रिय कहते हैं।

वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ, ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं।

जो वाग् यन्त्रको आश्रयकर आठ स्थानोंमें रहनेवाले शब्दके उच्चारण में समर्थ इन्द्रिय है उसे वाग् इन्द्रिय कहते हैं।

हृदय, कण्ठ, शिर, ऊपरका ओष्ठ, नीचेका ओष्ठ दोनों तालू और जिह्वा यह आठ स्थान हैं।

जो हाथ नहीं है किन्तु हाथका आश्रय करके स्थित है और लेने देनेकी शक्ति वाली इन्द्रिय है उसको पाणीन्द्रिय कहते हैं।

जो पाद तल नहीं है किन्तु पादतलका आश्रय लेकर स्थित है और पैरसे रहनेवाला जाने आनेकी शक्तिसे युक्त है उसे पादइन्द्रिय कहते हैं।

जो गुह्य स्थान नहीं है, किन्तु गुह्य स्थानमें आश्रित है और मल परित्यागकी शक्ति रखता है उसे पायु इन्द्रिय कहते हैं ।

जो उपस्थ नहीं है और उपस्थको आश्रय कर मूत्र और शुक्र त्यागनेकी शक्ति रखता है उसे उपस्थ इन्द्रिय कहते हैं । इन पांचोंका नाम कर्मेन्द्रिय है ।

मन बुद्धि चित्त और अहंकारका नाम अन्तःकरण (भीतरी इन्द्रिय) है । गला मनका स्थान है । मुख बुद्धिका, नाभि चित्तका और हृदय अहंकारका स्थान है ।

संशय, निश्चय, धारण और अभिमान, ये चार अन्तःकरण चतुष्टयके यथाक्रम कार्य हैं ।

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पांच वायु हैं । हृदयमें प्राण, गुह्य स्थानमें अपान, नाभि स्थानमें समान, कण्ठमें उदान और सारे शरीरमें व्यान वायु स्थित होकर अपना अपना काम करते हैं । प्राण वायुका स्वभाव बाहिर जाना, अपानका नीचे जाना, उदानका ऊँचे जाना, समानका खाये हुए आहारको बराबर

करना, और व्यानवायुका स्वभाव समस्त शरीरमें गमन करना है। इन मुख्य पांच वायुओंके अन्तर्गत पांच उपवायु हैं; जैसे—नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय। उद्गिरण (उगलना) करनेवाले वायुको नाग; उन्मीलन (खोलना) करनेवाले वायुको कूर्म; क्षुत—करनेवाले वायुको कृकर; जृम्भण (जमुहार) करनेवाले वायुको देवदत्त और पोषण करनेवाले वायुको धनञ्जय कहते हैं।

इन ज्ञानेन्द्रियादिके देवता इस प्रकार हैं। कर्णइन्द्रियका अधिपति दिशा है; स्पर्शइन्द्रिय (त्वक्) का वायु; चक्षुका सूर्य्य; रसनाका वरुण; नासिका (घ्राण) के अश्विनीकुमार; वाक् इन्द्रियका वह्नि; पाणीका इन्द्र; पादका उपेन्द्र; वायुका मृत्यु; और उपस्थका चन्द्रमा; मनका ब्रह्मा; बुद्धिका रुद्र; चित्तका क्षेत्रज्ञ ईश्वर; और अहंकारका अधिष्ठाता देव विश्वयोनिसे उत्पन्न होनेवाले विश्व स्रष्टा हैं। इस प्रकार श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं।

अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंसे उत्पन्न होनेवाले पूर्वोक्त पञ्च प्राण मन बुद्धि दशों इन्द्रियें

ये सत्रह वस्तु मिलकर लिंगनामसे अभिहित होती हैं।

यह सूक्ष्म अवयवोंवाला है और भोगका साधन है। यह शरीर अपने अपने कारणोंमें लीन होजाता है, इस वास्ते इसे लिंग और धीरे धीरे शीर्ण होजाता है, इसवास्ते इसे शरीर नामसे पुकारते हैं। पृथ्वीको आगे करके धीरे धीरे लिंग शरीरका क्षय होता है अर्थात् लिंग शरीर भस्मीभूत होता है। दिह उपचये इस वृद्ध्यर्थक दिहधातु द्वारा देह यह नाम रक्खा गया। इससे वृद्धि और पूर्वोक्त क्षि धातुसे क्षयकी अवस्थादि कही जाती हैं।

जिस समय इन्द्रियगण वाक् आदिके आकारमें परिणत होते हैं उस समय इसकी वृद्धि अर्थात् वढ़नेकी अवस्था है। और जिस समय यह संकुचित होकर अपने अपने कारणमें स्थित होता है उस समय क्षयावस्था समझनाँ। इन स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरोंका कारण अनादि अनिर्वचनीय जीव और ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे जिसका नाश होता है ऐसा जो अज्ञान उसे कारण

शरीर कहते हैं । इन स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामकी तीन उपाधियोंसे आत्माको स्वतन्त्र जानना चाहिये ।

ब्रह्म और आत्माकी एकताका ज्ञान होते ही इसका नाश होजाता है। इसवास्ते इसको शरीर और पृथ्वीसे लेकर प्रत्येक वस्तु अपने अपने कारणमें लीन होजाती हैं । और कारण शरीर भी ब्रह्ममें लीन होजाता है अर्थात् जीव सब उपाधियोंसे छूटकर अपने यथार्थ स्वरूप परमात्मामें मिलकर उन्नत हो जाता है इस वास्ते इसे देह कहते हैं।

यह कारण शरीर अनृत जड़ और दुःखात्मक है भूत वर्तमान और भविष्यत् इन तीनों कालोंमें जो सत्तारहित अर्थात् वर्तमान नहीं है उसे अनृत कहते हैं।

(४ प्रश्न) हे माता ! समष्टि और व्यष्टि किसे कहते हैं ? और मनुष्यकी समस्त अवस्थाओंका वर्णन करके मेरे मनके अज्ञान रूपी अन्धकारको दूर कीजिये ।

(४ उत्तर) जब अनेक वस्तुऐं एक साथ मिली हों तो उन्हें समष्टि और एक एकको

व्यष्टि कहते हैं, जिस प्रकार अनेक वृक्ष मिलकर वन और अनेक जल मिलनेपर जलाशय नामसे कहे जाते हैं; और एक एक वृक्ष और एक एक जलको वृक्ष और जलकी व्यष्टि कहते हैं। इसी प्रकार अनेक शरीर मिलकर शरीर समष्टि और एक एक शरीर व्यष्टि कहलाते हैं।

अवस्था तीन प्रकारकी हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। जिस समय इन्द्रिय समूह विषयोंका अनुभव करता है उस समय जाग्रत् अवस्था कहलाती है। जिस समय जाग्रत् अवस्थाके संस्कारोंसे विषयोंका ज्ञान होता है उसे स्वप्न-अवस्था कहते हैं और जब कुछ भी विषयोंका ज्ञान नहीं होता उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। जाग्रत् अवस्थामें स्थूल शरीरके अभिमानी चैतन्यको विश्व कहते हैं। स्वप्नअवस्थामें सूक्ष्म शरीरके अभिमानी चैतन्यको तैजस कहते हैं, और सुषुप्ति अवस्थामें कारण शरीरके अभिमानी चैतन्यको प्राज्ञ कहते हैं।

अब पांच कोशोंके नाम सुनोः—(१) अन्नमय (२) प्राणमय (३) मनोमय (४) विज्ञान-

मय और (५) आनन्दमय ये पांच कोश हैं। अन्नमय कोशको अन्नका विकार, प्राणमय कोशको प्राणका विकार, मनोमय कोशको मनका विकार, विज्ञानमय कोशको विज्ञानका विकार और आनन्दमय कोशको आनन्दका विकार समझो। इस स्थूल शरीरको अन्नमय कोश कहते हैं। क्यों कि माता पिताका खाया हुआ अन्न वीर्यके रूपमें परिणत होता है; और उन दोनोंके संयोगसे वह वीर्य संवलित होकर शरीरका आकार धारण करता है। अतः यह केवल अन्नहीका विकार है और इसी वास्ते इस शरीरको अन्नमय कहते हैं। जिस प्रकार तलवारका कोश (म्यान) तलवारको ढक लेता है, उसी प्रकार इसने आत्माको ढक रक्खा है। अतः इसको कोश कहते हैं। जिस तरह म्यान तलवारको, भूसी चावलको और जरायु गर्भस्थित सन्तानको ढक कर रखता है उसी तरह यह अन्नमय कोश अपरिच्छिन्न आत्मा (परिच्छिन्न जन्मादि ६ विकार रहित) को जन्मादि विकारोंसे युक्त और तीन तापोंसे रहित आत्माको तीन तापोंसे युक्त करके ढक देता है।

पांच कर्मेन्द्रिय और पांच वायु मिलकर प्राणमय कोशके नामसे पुकारे जाते हैं । यह प्राणमय कोश ही प्राणोंकी विकृतिके द्वारा वक्तृत्वहीन (जो बोलनेवाला नहीं है) आत्माको वक्ता (बोलनेवाला) दातृत्वरहित आत्माको दाता, गमनादि चेष्टाओंसे रहित आत्माको गमनादि चेष्टाओंसे युक्त, और भूखप्याससे रहित आत्माको भूखप्याससे युक्त बनाकर ढक देता है।

पांचो ज्ञानेन्द्रिय और मन मिलकर मनोमय कोशके नामसे पुकारे जाते हैं । मनके विकारोंसे यही मनोमय कोश आत्माको संशय, शोक, मोह आदि और दर्शन आदि क्रियाओंसे युक्त करके ढक देता है ।

पांचो ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि मिलकर विज्ञानमयकोशके नामसे पुकारे जाते हैं । इसीको व्यवहारदशामें कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अभिमानसे युक्त (इस) परलोकमें जानेके योग्य जीव कहते हैं । यह विज्ञानमय कोश बुद्धिके विकारोंसे अकर्ता और अविज्ञाता आत्माको कर्ता और ज्ञाता और निश्चय रहित और जड़ता और मन्दता आदिसे

विहीन आत्माको निश्चय और जड़तादिसे युक्त करके आच्छादित करता है ।

प्रिय सन्तोष और आनन्दकी वृत्तियोंसे युक्त अज्ञान प्रधान अन्तःकरणको आनन्दमय कोश कहते हैं। यह प्रिय सन्तोष और आनन्द-राहित आत्माको प्रिय, मोह, प्रमोदवान्, अभोक्ता आत्माको भोक्ता, परिच्छिन्न और सुखयुक्तके समान करके आवृत करता है।

आत्मा स्थूल सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंसे विलक्षण है। यह प्रतिपादित किया जाता है।

आत्मा सत्यस्वरूप है और देह असत्य स्वरूप है। अतः आत्मा देह नहीं हो-सकता और देह आत्मा नहीं होसकता, और आत्मा सुखस्वरूप है और शरीर दुःख स्वरूप है, अतएव आत्मा देह नहीं होसकता और शरीर आत्मा नहीं होसकता। इस प्रकार आत्माको तीन शरीरोंसे विलक्षण प्रतिपादन करके जाग्र-दादि तीन अवस्थाओंका साक्षी आत्मा है यह प्रतिपादन किया जाता है। मैं जाग्रत था जाग्रत

हूं और जाग्रत होऊंगा। मैं स्वप्नावस्थामें था स्वप्नावस्थामें हूं और स्वप्नावस्थामें होऊंगा, मैं सुषुप्त था सुषुप्त हूं और सुषुप्त होऊंगा । इस प्रकार भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों समयोंमें आत्मा अधिकारी (साक्षी) रूपसे जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंका प्रत्यक्ष करता रहता है—इसी वास्ते इसको तीनों अवस्थाओंका साक्षी कहते हैं।

आत्मा जिस प्रकार पांच कोशोंसे विलक्षण है यह प्रतिपादित किया जाता है। जिस प्रकार आदमीको यह ज्ञान होता है कि यह मेरी गाय है, यह मेरा बछड़ा है, यह मेरा लड़का है, यह मेरी लड़की है, यह मेरी स्त्री है इत्यादि। परन्तु वह आदमी कभी तन्मय नहीं होता है, अर्थात् गोरूप अथवा लड़कीरूप ही नहीं होता है; किन्तु इन सबसे पृथक् है। इसी तरह मेरा विज्ञानमय कोश, मेरा अन्नमय कोश, मेरा प्राण मय कोश मेरा मनोमय कोश, मेरा आनन्दमय कोश; इस प्रकारके अभिमानसे युक्त आत्मा पञ्च कोशरूप अर्थात् उन पंच कोशोंसे अभिन्न नहीं

होसकता; प्रत्युत इन पांच कोशोंसे सम्पूर्ण पृथक् विलक्षण और साक्षीस्वरूप है ।

आत्मा शब्द (श्रोत्र) स्पर्श (त्वक्) रूप (नेत्र) रस (रसन) और गन्ध (घ्राण) इन पांचों इन्द्रियोंसे भिन्न है । अव्यय अर्थात् वृद्धि और क्षयसे रहित, अनादि और अनन्त है । परन्तु यह प्रकृतिके सम्बन्धसे उससे सम्बद्ध और वस्तुतः उससे सदा निर्लिप्त पुरुष है । इसको यथार्थ रूपसे जान लेनेहीसे मृत्युके मुखसे छुटकारा मिलजाता है ।

(५ प्रश्न) हे माता! देहके तत्त्वके सम्बन्धमें आपने जो कुछ आज्ञा की उसे मैंने विस्तारपूर्वक समझ लिया । इस समय उस पवित्र परमात्माका तत्त्व, जिस प्रकारसे जानसकूं यह वर्णन करके मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर कीजिये । मैंने आपके 'मुंहँसे सुना है कि' तत्त्वमसि महावाक्य है । किन्तु इस तत्त्वमसिका अर्थ क्या है यह मुझे मालूम नहीं है । इस वास्ते 'तत्त्वमसि' इस वाक्यकी विस्तार पर्वक व्युत्पत्ति वर्णन कीजिये !

(५ उत्तर) हे जयन्ति! यदि तुझे "तत्त्वं" पदके अर्थको जाननेकी इच्छा हो तो 'तत्त्वमसि' इस वाक्यके 'त्वं' पदके अर्थकी विवेचना कर! अर्थात् 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें 'तत्' 'त्वं' और 'असि' यह तीन पद हैं, इस वास्ते पूर्वोक्त तीन पदोंवाले 'तत्त्वमसि' इस वाक्यके अर्थके समझनेसे ही 'तत्त्वं पदका अर्थ समझा जासकता है। पहिले 'त्वं' पदके अर्थका विचार करो। 'त्वम्' शब्दका अर्थ "तू यह है" "तू कौन?" यह जो स्थूल देह दीख पड़ता है वह त्वं पदका अर्थ नहीं है। क्यों कि शरीर दृश्य है अर्थात् देखा जासकता है और जो 'त्वं' पदका अर्थ है वह अदृश्य है अर्थात् देखा नहीं जासकता। यह शरीर जातिवाला है। "वह पशु है" "यह मनुष्य है" इत्यादि जातिका व्यवहार इस देहके ही सम्बन्धमें होता है। और खासकर यह शरीर भौतिक (पञ्च महाभूतोंका बना हुआ) अशुद्ध और अनित्य है; किन्तु जो त्वं पदका अर्थ है वह जातिमान् भौतिक अशुद्ध वा अनित्य नहीं है। इसवास्ते किसी तरह देह त्वं पदका अर्थ नहीं होसकता।

जो त्वं पदका अर्थ है वह दृश्य नहीं है; क्यों कि वह रूपसे रहित है, और इसी वास्ते इसको कोई देख नहीं सकता। उसकी कोई जाति नहीं है। वह भौतिक पदार्थ नहीं है । वह शुद्ध और नित्य है। जो पदार्थ दृश्य है अर्थात् देख पड़ता है वह कभी भी द्रष्टा अर्थात् देखनेवाला नहीं हो सकता, और जो द्रष्टा है वह दृश्य नहीं होसकता जैसा कि घट पदार्थको सब कोई देख सकता है, परन्तु घड़ा किसीको नहीं देख सकता है; उसी तरह त्वं पदका अर्थ द्रष्टा है वह दृश्य नहीं होसकता।

इस तरह पूर्वोक्त रीतिसे यह प्रतिपादन करके कि स्थूल देह त्वं पदका वाच्य नहीं है। अब यह प्रतिपादन करते हैं कि सूक्ष्म देह भी त्वं पदका अर्थ नहीं है। इन्द्रिय आदि सूक्ष्म शरीर भी त्वं पदका अर्थ नहीं है, क्यों कि श्रुति-में भी यही कहा गया है कि इन्द्रियादि करण हैं। त्वं पदका अर्थ कर्ता है करण नहीं । जो कर्ता है वह कदापि करण नहीं होसकता; इस वास्ते "तू" इन्द्रिय आदि करणोंसे भिन्न है।

और 'तू' ही उन इन्द्रियादि करणोंका प्रेरणा करनेवाला है। इस वास्ते सूक्ष्म देह भी त्वं पदका वाच्य नहीं कहा जा सकता। इन्द्रिय आदि करण अनेक प्रकारके हैं। परन्तु तू एक ही प्रकारका है इस वास्ते इन करण रूप इन्द्रियोंसे तू सदा भिन्न है। यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है।

सर्वत्र अहं अर्थात् मैं यह प्रतीति होती है। इससे यह मालूम पड़ता है कि तू एक है और जो वस्तु एक है वह कदापि अनेक नहीं होसकती। यदि यह कहो कि इन्द्रियें अनेक हैं इस वास्ते त्वं पदकी वाच्य नहीं होसकतीं, तो इन्द्रिय समुदाय तो अनेक नहीं है इस वास्ते इन्द्रिय समुदाय ही त्वं पदका वाच्य कहो तो यह भी नहीं होसकता, कारण कि इन्द्रिय समुदायमेंसे एक इन्द्रियके नष्ट होनेपर भी उस व्यक्तिका नाश नहीं होता। यदि इंद्रियोंका समुदाय ही त्वं पदका अर्थ होता तो एक इन्द्रियके नष्ट होने ही से "अहं" (मैं) यह प्रतीति नहीं होती।

पहिले कह चुके हैं कि इन्द्रिय समूह त्वं पदका अर्थ नहीं है। परन्तु इन्द्रिय समूह-

मेंसे हरएक इन्द्रियको यदि आत्मा कहें तो क्या हानि है । इस संदेहको मिटानेको कहते हैं कि इस शरीरके अनेक स्वामी हैं । मन, बुद्धि, अहंकार इन्द्रियें ये सब इस शरीरके स्वामी स्वरूप हैं । इन सब मन, बुद्धिकी भी एकता नहीं है, क्यों कि जिस समय एक इन्द्रिय की गति एक ओर होती है उस समय दूसरी इन्द्रिय दूसरी ओर जाती है । इस वास्ते जब इन्द्रियोंमें इस तरह भिन्नता दृष्टि गोचर होती है तो इद्रियोंको स्वतन्त्र रूपसे भी आत्मा नहीं कह सकते । विरुद्ध विषयताके कारण आत्माका बहुत्व भी नहीं माना जासकता । पहिले आत्माकी एकता प्रतिपादन कर चुके हैं । इस समय वह भी नहीं कह सकते कि वह नाना है; क्यों कि एकत्व और बहुत्व यह परस्पर विरुद्ध धर्म हैं । जिस प्रकार इस पृथ्वीका राजा एक होने परभी उसके अधीन में अनेक राजा विद्यमान हैं उसी प्रकार एकमात्र आत्मा ही देहका स्वामी है इन्द्रियगण उस आत्माके अधीन हैं ।

मन अथवा प्राण इनमें कोई भी त्वं पदका अर्थ नहीं है, क्यों कि वे दोनों ही जड़ हैं। विशेषतः " मेरा मन और जगह चला गया है " यह प्रतीति सर्वदा ही होती है।

इससे मन और मैं दोनों भिन्न पदार्थ हैं। यह बात अच्छी तरह समझ में आसक्ती है।

इससे सिद्ध हुआ कि मन और आत्मा एक वस्तु नहीं है। इसी वास्ते मनको त्वं पद-का अर्थ नहीं कह सकते। मेरे प्राण क्षुधा और तृषासे दुःखित होते हैं इस तरहकी प्रतीति सर्वदा होती है। इससे मालूम होता है कि आत्मा प्राणसे भिन्न है; इस वास्ते प्राणको आत्मा नहीं मान सकते। इस वास्ते मन और प्राण दोनोंका द्रष्टा कोई है। वह द्रष्टा मन और प्राण नहीं है।

जिस प्रकार घटका द्रष्टा और घट दोनों एक नहीं हैं उसी प्रकार मन और प्राणका द्रष्टा और मन और प्राण दोनों एक नहीं होसकते।

हे जयन्ति! बुद्धि भी त्वं पदका प्रतिपाद्य नहीं है; क्यों कि बुद्धि निद्रावस्थामें लीन

होजाती है। जाग्रत् अवस्थामें समस्त देहको आश्रयकर स्थित रहती है; इस वास्ते बुद्धि आत्मा नहीं है। बुद्धि यदि आत्मा होती तो उसका जाग्रत् अवस्थामें भेद नहीं दीख पड़ता। इस समय त्वं शब्दका जो प्रतिपाद्य है अर्थात् तू कौन है इसका निरूपण किया जाता है।

बुद्धि चञ्चल अर्थात् अनेक रूपको धारण करनेवाली है। वह बुद्धि जाग्रत् अवस्थामें नाना प्रकारकी होती है और निद्राके समय विलीन होजाती है।

इसी वास्ते तू उस बुद्धिको देखने वाला है अर्थात तू ही बुद्धिको विषयोंमें लगाकर उसके अनेक रूप उत्पन्न करता है। बुद्धिकी चञ्चलता विलीनता और वहुरूपताको तू देखता है, इस वास्ते तू उस बुद्धिसे मिला है। सुषुप्तिके समय और देह आदिके न रहनेपर तू उसके साक्षीरूपसे विराजमान रहता है। सुषुप्तिको और देह आदिके भावको तू ही अनुभव करता है।

बुद्धि प्रमाणको जान सकती है परन्तु जो यह कहते हैं कि प्रमाणसे बुद्धि जानी

जाती है वे बिलकुल भ्रममें हैं; क्यों कि उनके मतमें लकड़ी अग्निको जला सकनी चाहिये।

जिस प्रकार अग्नि ही काष्ठको जला सक्ती है काष्ठ कदापि अग्निको नहीं जला सकता, उसी प्रकार बुद्धि कभी प्रमाणसे उत्पन्न (ज्ञान) नहीं होसकती।

आत्मा ही इस सम्पूर्ण जगत्को अनुभव करता है, यह जगत् कदापि आत्माको नहीं अनुभव करसकता। आत्मा इस जगत्को प्रकाशित करता है। परन्तु जगत् इस आत्माको प्रकाशित नहीं करसकता। जो सत है उसको इस प्रकारका है या उस प्रकारका है यह कुछ भी नहीं कह सकते, और जो पक्ष नहीं है अर्थात् जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता है, वह ब्रह्म ही तू है, तू सब जगत् है। तू द्रष्टा है, किन्तु देह आदिकी तरह दृश्य नहीं है; अर्थात् तुझे कोई देख नहीं सकता। जो द्रव्य अपनेसे भिन्न है और सन्मुख उपस्थित है वही इदं शब्दका अर्थ है। इसवास्ते सन्मुख स्थित पदार्थ भी तू नहीं है, क्यों कि वह सब ही तुझसे

भिन्न है । जिन जिन पदार्थोंको इदं शब्दसे उल्लेख किया जा सकता है; अर्थात् "यह" ऐसा कहा जा सकता है, उन सबको तेरा स्वरूप नहीं कहा जासकता, और तुझे भी "यह" शब्दसे निर्देश नहीं किया जासकता । विशेषतः तुम स्वप्रकाशक हो, इस वास्ते तुम सबके ही अज्ञेय हो, अर्थात् यदि तुम स्वयं न जाने जाओ तो कोई तुमको नहीं जान सकता ।

किसी उपलक्ष्यके द्वारा लक्ष्यको कथन किया जाय वह तटस्थ लक्षण कहा जाता है । जैसे आकाश क्या वस्तु है यह समझानेके लिये यह कहा जाय कि इस भीतकी ओर देख, इस भीतकी जिस जगह समाप्ति होगई है वही आकाश है, तो यहांपर इस भीतकी सहायतासे आकाश जाना गया है; इस वास्ते यह भीत रूप पदार्थ आकाशके तटस्थ लक्षणमें विशेषण हुआ, इस तरह ब्रह्मको भी तटस्थ लक्षण द्वारा जान सकते हैं। जो सत्य-ज्ञानमय और अनन्त है वही ब्रह्म है । तुम भी सत्य ज्ञानमय और अनन्त होनेके कारण उस ब्रह्मके स्वरूप हो । ब्रह्मके जो सत्यत्व, ज्ञानमयत्व

आदि लक्षण हैं वे तुम्हारेमें भी विद्यमान हैं, इस वास्ते तुम भी ब्रह्मस्वरूप हो। इस तरह त्वं और ब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करने पर भी जीव और ईश्वर इन दोनोंके परस्पर विरुद्ध धर्म होनेसे इनकी एकता कैसे हो सकती है? इस शंकाको मिटानेके वास्ते जीव और ईश्वरकी उपाधिका भेद बतलाया जाता है। केवल एक चैतन्य सत् वस्तु है, जीव उस चैतन्यका प्रतिबिम्ब है, देह आदि उस जीवकी उपाधि हैं, ईश्वरकी उपाधि माया है, वे इस मायाके नियन्ता हैं। इस वास्ते जो देह आदि उपाधियोंसे मुक्त है वह ईश्वर है। इन उपाधियोंके द्वारा ही जीव और ईश्वरका पृथक् ज्ञान होता है। जिस समय इस पंच कोशमय देहस्वरूप जीव उपाधिका और मायारूप ईश्वर उपाधिका ज्ञान होता है उसी समय इन दोनों उपाधिके अवभासक एकमात्र स्वयं प्रकाशमान चैतन्यरूप परब्रह्म प्रकाशित होजाता है।

लौकिक वस्तुओंको जाननेमें जिस तरह नेत्र आदि कारण हैं उसी तरह ब्रह्मात्मज्ञानमें एकमात्र वेदवाक्य ही मुख्य कारण हैं। वेदवाक्यके

द्वारा ही उपाधिका बाध होकर ब्रह्मका ज्ञान होजाता है। इसके सिवाय और तरहसे नहीं होसकता। परन्तु वस्तुओंको नेत्र आदिके द्वारा प्रत्यक्ष करके उनके विषयमें ज्ञान प्राप्त किया जासकता है; किन्तु ब्रह्म कदापि नेत्र आदियोंके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होसकता, इसवास्ते उसको जाननेके लिये वेदवाक्यके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। "तत्त्वमसि" आदि वेदवाक्य प्रमाण और युक्ति द्वारा जिस तरह ब्रह्मका ज्ञान होसकता है, वह विशेष रूपसे कहा जाता है, अर्थात् "तत्त्वमसि" आदि वेदवाक्य निर्णय और युक्ति बतलाकर यथार्थरूपसे ब्रह्म पदार्थका प्रतिपादन किया जाता है। "तत्त्वमसि" इस वाक्यके अर्थके निर्णय करनेके लिये त्वम् पदका अर्थ जानना आवश्यक है।

वाक्यके अन्तर्गत शब्दोंके अर्थको जाने विना वाक्यका अर्थ जाना नहीं जासकता। इस वास्ते त्वम् पदका अर्थ निरूपण किया गया है। इसी प्रकार "तत्त्वमसि" इस वाक्यके अन्तर्गत 'तत' और 'असि' पदोंके अर्थके निरूपण होनेसे 'तत्त्वमसि' इस वाक्यका अर्थ जान लेनेसे ही ब्रह्मका

ज्ञान होजायगा। इस समय त्वम् पदका वाक्यार्थ निरूपण किया जाता है—जो त्वम्शब्दका प्रतिपाद्य है वह शरीर और इन्द्रिय आदि धर्म्म मिथ्या आरोप करके मनुष्यकर्तृत्व आदि अभिमानसे युक्त होते हैं। अज्ञानी लोग 'मैं करता हूं' 'मैं भोक्ता हूं' इत्यादि प्रकारसे देहादि उपाधि स्वीकार करके अभिमान प्रकाशित करते हैं; और उस उपाधि या धर्मको त्वं पदका वाच्यार्थ रूपसे जानते हैं; अर्थात् देहको त्वंपदसे निर्देश करते हैं। इस समय त्वं शब्दका लक्ष्यार्थ निर्णय होता है जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है। शरीरमें होनेवाली क्रिया आदियोंके साक्षी होने पर भी जो देह और इन्द्रियादियोंसे भिन्न है उसको त्वं पदका लक्ष्यार्थ कहकर निरूपण किया जासकता है। जिस प्रकार दीपककी आवश्यकता होनेपर लोकमें अग्नि शिखाको लक्ष्य किया जाता है, दीपकका आधार और बत्ती आदि लक्षित नहीं होती, उसी प्रकार त्वंपदका अर्थ जब निरूपण किया जाय तो जो देह इन्द्रिय आदियोंसे विलक्षण है उसीका लक्ष्य करना पड़ता है। इस समय

तत् पदका लक्ष्यार्थ वर्णन किया जाता है । जो वेदवाक्यका प्रतिपाद्य है । इस विश्वसे अतीत अविनश्वर अद्वय विशुद्ध (सव तरहके विकारोंसे रहित) और जो स्वयं परिज्ञेय (स्वयं ही जाना-जाय ऐसा) है वही तत् पदका लक्ष्यार्थ है ।

" तत् " और " त्वं " इन दोनों पदोंका समानाधिकरण्य सम्वन्ध है । इस सम्वन्ध द्वारा तत् और त्वं इन दोनों पदोंके अर्थका ऐक्य प्रतिपादन करके ब्रह्मात्मैकता (ब्रह्म और आ-त्माकी एकता) प्रतिपादित की गई है दो पद भिन्नार्थक कहाते हुए भी एक विभक्त्यन्त होकर एक ही वस्तु में आवृत हों अर्थात् एक ही वस्तु को वोध करावें तो उन दोनों पदोंका जो ऐक्य रूप सम्वन्ध है, उसको सामानाधिकरण्य सम्वन्ध कहते हैं । जैसे " नीलोत्पल " यहां पर नील शब्द और उत्पल शब्द एक अर्थका प्रतिपादक नहीं है, किन्तु दोनों शब्द एक वस्तुमें प्रवृत्त हुए हैं । इसी वास्ते इस जगह " नील " और 'उत्पल' इन दोनों शब्दोंका सम्वन्ध सामानाधिकरण्य नामसे प्रसिद्ध है । " तत्त्वमसि " इस वाक्यमें

भी भागत्याग लक्षणा द्वारा अर्थ बोध हुआ है। 'त्वं' पदसे विरुद्ध प्रत्यक्त्वादि जीवधर्मोंको और 'तत्' पदसे सर्वज्ञत्व परोक्षत्वादि धर्मोंको दूर करके "तत्त्वं" इस पदका अर्थ करना चाहिये। उस तत् पदसे शुद्ध कूटस्थ अद्वैत परमवस्तुका बोध होता है। और तत् और त्वं इन दोनों पदोंकी एकता होने पर तू ही वह शुद्ध कूटस्थ अद्वैत पर-ब्रह्म है और शुद्ध कूटस्थ अद्वैत परब्रह्म ही तू है। इस प्रकारका अर्थ होता है। इसी वास्ते 'तत्त्व-मसि' इस वाक्यके प्रकृत अर्थकी विवेचना करने पर तू ही ब्रह्म है। इस तरहका अभेद ज्ञान होगा; इस वास्ते जीव और ब्रह्मकी एकता जानना ही 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंका प्रयोजन है। जिसको पूर्वोक्त रीतिसे तत्त्वमसि इत्यादिके अर्थको जाननेसे मुक्तिके साथ ही अहम्ब्रह्मास्मि (मैं ही ब्रह्म हूं) इस प्रकारका ज्ञान उत्पन्न हो वह पुरुष शोकसागरसे उत्तीर्ण होसकता है।

(६ प्रश्न) जयन्ती बोली—हे माता! "तत्त्व मसि" का भावार्थ जो कहा सो मैंने अच्छी तरह से समझ लिया, परन्तु उस आत्माको निर्विकार,

निर्गुण, निर्लिप्त, सच्चिदानंद स्वरूप इत्यादि कहनेका तात्पर्य मैं नहीं समझी; क्योंकि हम भी तो आत्मा हैं, हममें जब कामादि षड्रिपु इन्द्रियादि और मन बुद्धि इच्छा यह सब रहते हैं तो जगदात्मा (ओंकार) निर्विकार, निर्गुण इत्यादि कैसे हुआ? क्योंकि जगदात्मा भी ओंकार त्रिगुणान्तर्गत रहता है, और त्रिगुणका कर्म भी करता है, और गुणातीत अद्वैत निर्विकार सच्चिदानंदस्वरूप परमात्माने जब इस जगतको उत्पन्न नहीं किया तब परमात्माको जगत्के उत्पन्न करनेमें इच्छा कैसे हुई? इस विषयमें मेरी शंकाको विस्तार पूर्वक वर्णन करके समाधान करें।

(६ उत्तर) महारानीजीने जयन्तीके मुखसे इस प्रकार वचन सुनके और जयन्तीको सम्बोधन करके कहा—हे जयन्ति! तुह्मारा प्रश्न श्रवण करके मुझको अति आनंद हुआ। तुमने ठीक प्रश्न किया, तुमको ऐसा ही करना चाहिये, और तुम प्रश्न करनेके योग्य हो। अत एव तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देती हूं, सो एकाग्रचित्त होकर सुनो। जब पूर्णरूप परमात्माने इस जगतको उत्पन्न नहीं किया था,

तब एक ही परमात्मा पुरुषरूपी, निर्विकार निरञ्जन पवित्र परमात्माके असीम धाममें अवस्थित था। इस समयमें भी उसी पूर्णरूप परत्माका अर्धांश पुरुषरूपी परमात्मा निर्विकल्प होकर विकार शून्य पवित्र असीम धामवाला है, जिससे मानवदेहमें स्थूल सूक्ष्म कारण इन शरीरत्रययुक्त जीवात्माका वामांग तो प्रकृति है और दक्षिणांग पुरुष है, इस मनुष्यशरीरमें वामांग इडा, गंगा, चन्द्र इत्यादि शीतल पदार्थ हैं। तथा दक्षिणांगमें पिंगला यमुना, प्राण, सूर्य इत्यादि उष्ण पदार्थ हैं। इसी प्रकार हम बहिर्जगत्में भी देखते हैं। विराट् जगतके वामांगमें अर्थात् इस दृश्यमान जगत्के उत्तर दिशामें चन्द्र अपान गंगा, इडा आदि शीतल पदार्थका प्राधान्य है। वैसे ही दृश्य जगत्के दक्षिण दिशामें सूर्य, प्राण, यमुना, पिंगला आदि यह उष्ण पदार्थका प्राधान्य जानना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि मानव जगत् तथा विराट् जगत् दोनों हीके वामांग तो प्रकृति है तथा दक्षिणांग पुरुष है। किन्तु दोनों अंगोंमें आत्मा तो एक ही है; अर्थात्

इन पुरुष प्रकृति दोनोंमें आत्मा भिन्न भिन्न नहीं है। वैसे ही इस दृश्य जगत्के निर्माणके पूर्व वे परमात्मा प्रकृतिके साथ एक पुरुष रूपहीमें स्थित थे, और गुणशून्य अत एव निर्विकार, सच्चिदानंद स्वरूप, अगोचर, अतीन्द्रिय अवस्थामें स्थित थे, जव किसी प्रकारसे परमात्माका शरीर ही नहीं रहा तव कोई गुण भी नहीं, सुतरां विकार भी नहीं। यदि यह कहो कि इस जगत्में हम लोगों-को जो समस्त विकार युक्त पदार्थ पृथक् २ रूपसे स्थित पंचमहाभत और वही पंचभत एकत्रित-होकर नाना प्रकारके रि[illegible] काम क्रोधादि युक्त शरीर यह सव विकारके कार्य एवं त्रिगुणयुक्त जीवके आहार करनेके वस्तु आदि दिखाई देते हैं, यह सकल पदार्थ कहां थे? क्यों कि आत्मा सर्व-व्यापक है, आत्मासे अतिरिक्त कोई स्थान नहीं है। जव आत्मासे अलग कोई स्थान ही नहीं है तो आत्मासे भिन्न पदार्थका होना कभी नहीं होसकता। इससे विदित होता है कि आत्मामें ही सव कुछ है। इसका उत्तर यही है कि विकार युक्त समष्टिरूपसे स्थित जो पंचभूत आदि पदार्थ

हैं वे समष्टिरूपसे व्यष्टिरूप होकर अचल अ-
मिश्र और जड़ अवस्थामें परमात्माके वामांगमें
अर्थात् प्रकृति आत्माके अंगमें लीन थे। सुतराम्
एकएक परमाणुकी सृष्टि अवस्थामें विकारकी
कोई संभावना नहीं है, क्योंकि एकएक परमाणु
में शक्ति नहीं है। जब तक इन पांच भूतोंके पर-
माणु समष्टि नहीं होंगे तब तक विकार
होनेका कोई कारण नहीं होसकता, और
इसी कारण प्रकृति युक्त पूर्ण परमात्मा
निर्विकार निर्विकल्प है। किसी समय पूर्ण परमा-
त्माके वामाङ्गमें अर्थात् प्रकृतिआत्माके अङ्गमें
पंचभूत परमाणुओंमेंसे वायुके परमाणुओंके
किसी कारणसे अल्पपरिमाणमें समष्टि होनेसे
अति सामान्य रूपसे (अतिन्यूनतासे) मन्द
मन्द वायु चलित होने लगा, उसी वायुसे
शनैः शनैः पञ्चभूतोंके परमाणु कुछ कुछ समष्टि-
होनेसे प्रकृति अंगमें अर्थात् पूर्ण परमात्माके वा-
मांगमें मन पूर्ण रूपसे गठित हुआ। जब मनकी
उत्पत्ति हुई तब मनके संग बुद्धिका भी आवि-
र्भाव हुवा, क्योंकि बुद्धिकी उत्पत्ति और स्थितिका

स्थान आत्मा है । जब मन और बुद्धिका योग हुआ तब इच्छादि क्रमसे आप ही आप बुद्धि और मनके साथ सम्मिलित हुई; इस वास्ते उन समस्त पदार्थोंका कर्ता परमात्मा है ।

उस समय परमात्माकी इच्छा हुई कि जब पंच महाभूतोंके परमाणु व्यष्टिरूपसे समष्टि होनेसे यह जगत् विषय उपस्थित हुआ है तो अब इस पञ्चभत समष्टिके विकारको भग्नकरके पूर्ववत् परमाणु रूप व्यष्टि अवस्था करके निर्विकार निर्विकल्प होकरके इस आनन्दमय कोश अर्थात् पञ्चभूतोंके सार नाना रंग विशिष्ट कमलाकृति ज्योतिपर परिस्थित होऊं। उस संकल्पके पश्चात् पूर्ण परमात्मा दो अंशोंमें बराबर विभक्त हुआ किन्तु मन, बुद्धि, इच्छादियोंका विकार उस पर्ण परमात्माके वामांगमें अर्थात् प्रकृति आत्मांगमें ही रहगया । इसलिये विशुद्ध पूर्ण परमात्माका दक्षिणांग अर्थात् उस पूर्ण परमात्माका अर्धांश (पुरुषांग) पवित्र सम्पूर्ण विकार रहित सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकल्प होकर उस असीम पवित्र धाममें प्रकृति आत्मासे पृथक्

अर्थात् पूर्ण परमात्माके वामांगसे पृथक् रूपसे रहा; किन्तु प्रकृति अंगसे उसका संयोग अवश्य है, जैसे समुद्र और नदीके मीठे और खारे जलका संयोग होता है; और कमलपत्रका जलसे सम्बन्ध होता है; किन्तु अब पूर्ण परमात्माका वामाङ्ग जो प्रकृति आत्मा है उसने सोचा कि मैं विकारयुक्त अपवित्र हूं; ऐसा समझकर मेरा पतिस्वरूप जो परमात्मा अर्धांग है सो मझको परित्याग करके अद्वैत निर्विकल्प होगया है। अब मेरा कर्त्तव्य यह है कि मैं भी इन सब विकारोंकी अथवा पञ्चभूतोंके परमाणुरूप जो समष्टि है उसकी व्यष्टि करके पूर्ववत् होकर अपने अद्वैत परमात्मा जो मेरा पतिस्वरूप है उसके अर्धांगसे मिल जाऊं। इस प्रकार विचार करके प्रकृति आत्माने मन, बुद्धि, इच्छादियोंको अपने अङ्गमें रख बाकी समस्त (चारों) भूतोंके व्यष्टिरूप परमाणुओंका पृथक् पृथक् (मृत्तिका तेज, जल वायुरूपसे) पृथक् पृथक् आकाशके मध्यमें समष्टिक्रिया अर्थात् जगत् तथा जगत्के बीचमें जो जो पदार्थ वा जीवादिकोंके लिये जो

आवश्यक है सो सम्पूर्ण उत्पन्न किये। पश्चात् प्रकृति आत्मा तीन अंशोंमें विभक्त हुआ, प्रथमांश प्रकृति आत्मामें जो विकार अर्थात् मन, बुद्धि इच्छादि हैं सो द्वितीय अंश प्रकृतिआत्माको समर्पण करके प्रथम अंश प्रकृति आत्मा शुद्ध आत्मामें परिणत होकर जगत्के ललाटमें जो शुद्ध पांचभौतिक साधारण नानावर्णविशिष्ट कमलाकृति ज्योतिं है उस केवल सत्वगुण विशिष्ट ज्योतिके मध्यमें प्रवेशकर साक्षीस्वरूप निर्विकार अवस्थामें रहा।

अब द्वितीयांश प्रकृति आत्मा इन, मन, बुद्धि इच्छादियोंको तृतीयांश प्रकृति आत्मामें अर्पण कर द्वितीयांश आत्मा पवित्र शुद्ध आत्मामें परिणत होकर जगतके हृदयमें सूक्ष्म शरीर अर्थात् त्रिगुणयुक्त अग्निके मध्यमें प्रवेश करके रज और तम गुणोंमें निर्लिप्त होकर सत्व-गुणमें स्थित होता है, उसी सत्वगुण द्वारा त्रिगुण-युक्त सस्यादिकी उत्पत्ति होती है। एवं उन त्रिगु-णयुक्त सस्यादिकोंको जीव भक्षण करते हैं, इस वास्ते रजोगुण तमोगुणके कार्य्य जीवोंके द्वारा होते हैं। किन्तु हम लोग देखते हैं वह ओंकार

ही उस जगत्के समस्त जीवादियोंकी रक्षा एवं प्रलय करते हैं। वास्तवमें ओंकार तीनोंगुणोंसे निर्लिप्त है, उससे कुछ भी नहीं करता। ओंकार केवल जगत्के हृदयमें, आकाशमें, सूर्याग्निमें अवस्थित रहता है।

इस सूर्य और आत्माके तेजसे यह समग्र पृथ्वी या सूर्य चक्राकार होकर घूमती है। इसीसे दिन और रात्रि होती है। इसलिये उष्ण और शीत दोनों कारणोंसे पृथ्वी शस्यादि उत्पन्न करके देती है, और उसी सूर्याग्निके तापसे नीचे का जल आकर्षण होकर बाष्परूपसे आकाश में मेघ बनके पृथ्वीमें अन्नादियोंके वास्ते वर्षा होती है। अतएव हे जयन्ति! वही पवित्र निर्विकार परमात्मा अद्वैत और समान ओंकार इस जगतके जनक ऋषि हैं।

तृतीयांश प्रकृति आत्मा बहुत अंशोंमें विभक्त होकर उनही बहुत अंशोंका जो एक अंश प्रकृति आत्मा है। सो फिर दो अंशोंमें विभक्त होकर उनही दोनों अंशोंके प्रथम एकांश प्रकृति आत्मामें सम्पूर्ण विकार जो प्रथमांशका

है, सो द्वितीयांश प्रकृति आत्माको अर्पण करके प्रथमांश पवित्र निर्विकल्प मनुष्योंके मस्तकोंमें अशरीरावस्थामें अद्वैत परमात्मा होकर रहा; और द्वितीयांश प्रकृति आत्मा फिर दो अंशोंमें विभक्त हुआ, फिर उन्हीं दो अंशोंके बीचमेंसे जो प्रथमांश प्रकृति आत्मा है उसने जो कुछ भी उसके अङ्गमें विकार हैं उन सम्पूर्ण विकारोंको द्वितीयांश प्रकृति आत्मासें अर्पण कर वही प्रथमांश पवित्र होकर मनुष्योंके ललाटमें निर्गुण ब्रह्मसे लगा हुआ नीचे सत्त्वगुणविशिष्ट साधारण कमलाकृति ज्योतिके मध्यमें प्रवेश किया। और बाकी द्वितीयांश प्रकृति आत्मा मनुष्योंके हृदयमें अर्थात् त्रिगुण युक्त अग्निके मध्यमें प्रवेश करके उन त्रिगुणमें लिप्त होकर जीवात्मा नामसे इस जगत्में विख्यात है। अतएव हे जयन्ति ! आत्मा त्रिगुण युक्त जीवमें लिप्त है और ओंकार त्रिगुणमें है परन्तु लिप्त नहीं है, क्योंकि ओंकार निर्विकार निर्विकल्प है। और इसी ओंकारके समान तुम भी जीव आत्मा हो अर्थात् जीवको परित्याग कर तुम भी आत्मा हो।

(प्रश्न) स्थूलदेहधारी विकारयुक्त मनुष्यजीवकी मुक्तिके लिये परमात्माकी उपासनाके सम्बन्धमें क्या कर्तव्य है ?

(उत्तर) परमात्माकी उपासना करनेसे पहले द्वैत पदार्थकी उपासना करनी ही चाहिये । क्योंकि अद्वैत परमात्माके पास जानेके लिये उस ओंकार सत्त्वगुणको छोड़के दूसरा मार्ग नहीं है । सुतरां द्वैत ओंकार छोड़के और उपाय नहीं है । मनुष्यजीवको अद्वैत परमात्माकी ही आवश्यकता है, परन्तु अद्वैतकी उपासना असम्भव है, क्योंकि अद्वैत परमात्माका कोई रूप नहीं है । इसवास्ते धारणा, ध्यान हो नहीं सकता, सुतरां फललाभकी भी कोई आशा नहीं है । इस कारण मनुष्यजीवके लिये उसी द्वैत ओङ्कारकी उपासना करना नितान्त आवश्यक है । सुतरां वही ओङ्कार आत्मा ही मनुष्यजीवका समस्त कार्यकर्ता और मुक्तिदाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है । और भी कहते हैं उस ओंकार और परमात्मामें कुछ भेद नहीं है, ये दोनों पवित्र हैं; क्योंकि विकारका समस्त कार्य स्थूल शरीर युक्त जीवात्माके द्वारा

ही होता है । वही द्वैत ओंकार अपनी शक्तिद्वारा केवल जीवको कामादि रिपुयुक्त स्थूलशरीरकी रक्षाके लिये त्रिगुणयुक्त भोजनपदार्थ (सस्यादि) सत्वगुणसे आपसे आप सृजन होता है। उसी भोजनके वास्ते शरीर त्रिगुण जीवात्मा विद्यमान रहते हैं। अतएव वही द्वैत ओंकार जीवात्माके समस्त कार्योंका कर्ता है । सुतरां उसी द्वैतआत्माकी उपासना करना सर्वतोभावसे युक्त है। दूसरा उपाय नहीं है। उस ओंकारकी उपासना और परमात्माकी उपासना वरावर हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं, जो मनुष्य इस विराट जगतरूपी ओंकारको छोड़कर अद्वैत अदृश्य परमात्माकी अनुमान व कल्पना करके उपासना करते हैं वे मनुष्य किसीप्रकार परमात्माका लाभ नहीं करसकेंगे । अतएव उस द्वैत आत्माको छोड़-करके जो मनुष्य भजन करते हैं वह निष्फल है।

(प्रश्न) द्वैत और अद्वैत किसको कहते हैं ?

(उत्तर) पूर्ण परमात्मा इस जगत्के सृजन करनेके लिये पहले समान दो अंशोंमें विभक्त हुआ, तव पूर्णरूप परमात्माका दक्षिण

अंग पूर्णरूपसे पुरुषांग निर्विकार है। और उसी प्रकृतिसंयुक्त पूर्णरूप परमात्माका वाम अङ्ग पूर्णरूप ही प्रकृतिआत्मा है; वही पूर्णरूप प्रकृतिआत्मा अनन्तरूप धारण करसकती है, जिस कारण प्रकृतिके अंगमें पञ्चभूत परमाणुरूपमें जड़ अवस्थामें व्यष्टिरूपमें रहते हैं। उस प्रकृतिआत्माका भी कोई रूप नहीं है, सुतरां परमात्मा और प्रकृतिआत्मा एक ही पदार्थ है इसमें कुछ सन्देह नहीं। परन्तु वह चारो भूत अर्थात् पृथिवी अप, तेज, मरुत् परमाणुरूप उसी व्यष्टि अवस्थामें प्रकृतिआत्माके अंगमें रहनेके कारण उन्हीं परमाणुरूप चारों भूतोंसे प्रकृतिआत्मा आकाशके मध्यमें नाना रूप धारण करती है। पहले अंगसे चारो परमाणुओंके व्यष्टिरूपकी समष्टिद्वारा इस ओंकारका जगत् रूपी विराट् शरीर सृष्ट हुआ। पीछे पूर्णरूप प्रकृति आत्मा समान तीन अंशोंमें विभक्त होकर पहले अंश प्रकृति आत्मा पवित्र होकर जगत् शरीरमें स्थित होनेके निमित्त जगतके ललाटके वीचमें नानावर्णविशिष्ट केवल सत्त्वगुण विशिष्ट साधारण

ज्योतिमध्यमें अव्यक्त रूप और सत्त्वगुणमें स्थित रहा। और दूसरा अंश प्रकृतिआत्मा पवित्र होकर जगत्के हृदयमध्यमें अग्नियुक्त त्रिगुण मध्यमें सत्वगुणमें स्थित रहा । और तृतीय अंश प्रकृति-आत्मा बहु अंशोंमें विभक्त होकर इसके एक अंशसे एक एक मनुष्य जीवशरीर उत्पन्न हुआ। मनुष्यशरीर भिन्न रज तमोगुण एवं सत्त्वगुणका लेशमात्र तर्थात् ओंकारकी अङ्गज्योति लेशमात्र-द्वारा अन्यान्य समस्त जीव शरीर उत्पन्न हुए। अत एव हे जयन्ति, उसी पुरुषरूपी गुणातीत निष्क्रिय पूर्णपरमात्माका दाक्षिण अंग अद्वैत कहा जाता है ।

उसी पूर्णः परमात्माके वाम अङ्ग प्रकृति आत्मा अर्थात् पञ्चभूत युक्त आत्माको द्वैत कहते हैं, क्योंकि आत्मा और पञ्चभूत यह दो पदार्थ एक होनेसे और उसी प्रकृतिआत्माके अंश विभाग होनेके लिये द्वैत कहते हैं।

(प्र.) हे माता, आपकी वेदप्रतिपादित बहुविध यज्ञकी कथा आपके मुखसे सुनी है। अत-

एव वह समस्त यज्ञ किस प्रकार और कितने प्रकारका है, इसका सविस्तर वर्णन कीजिये।

(उ.) ब्रह्म और आत्माके एकत्रदर्शी संन्यासी गण ब्रह्माग्निसे ही अपनेको आहुतिप्रदान करते हैं; अर्थात् परब्रह्मसे समाधि करके जीवात्माका लयस्वरूप यज्ञ करते हैं। दूसरे योगिजन संयम-स्वरूप अग्निमें श्रोत्रादि इन्द्रियोंको आहुति प्रदान करते हैं, अन्य योगीजन इन्द्रियोंके विष-योंमें शब्दादिगुणोंको इन्द्रियाग्निमें आहुति प्रदान करते हैं।

कोई कोई योगिगण, ज्ञानदीपित आत्म संयम स्वरूप योगाग्निमें इन्द्रिय और प्राण क्रिया-की आहुतिप्रदान करते हैं, अर्थात् समस्त इन्द्रिय और प्राणकी क्रिया आत्मामें विलीन करते हैं, और कोई साधुगण दानके ही यज्ञज्ञानमें अनुष्ठान करते हैं, कोई कृच्छ्र चान्द्रायणादि तपश्चर्यास्वरूप यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। कोई चित्तवृत्तिनिरोध स्वरूप समाधिके ही यज्ञज्ञानमें अनुष्ठान करते हैं। कोई वेदपाठस्वरूप यज्ञका अनुष्ठान करते हैं और तीव्रब्रह्मचारी यतिगण वेदार्थ ज्ञानस्वरूपमें यज्ञका

अनुष्ठान करते हैं। कोई कोई व्यक्तिगण पूरक करके अपान अग्निमें प्राणकी आहुति देते हैं; कोई रेचक द्वारा प्राण अग्निमें अपानका होम करते हैं। कोई कुम्भकके अनुष्ठान पूर्वक प्राण, अपानकी गति रोककर प्राणायाम परायण होते हैं। कोई योगी-जन नियताहार होकर पञ्चप्राणोंमें पञ्च प्राणाहुति देते हैं। अर्थात् प्राण, और अपानादिके मध्यमें जिसको जय करसकते हैं उसमें ही अन्यान्य प्राणवर्गका विलय करते हैं। यह समस्त यज्ञ तत्त्ववित्—यज्ञमें अवशिष्टान्नभोजी महात्मा गण सबके ही पूर्वोक्त यज्ञानुष्ठानके द्वारा निष्पाप होकर पीछे ज्ञानोत्पत्ति द्वारा सनातन ब्रह्मलाभ करसकेंगे। हे जयन्ति, जिसने इनमेंसे कोई यज्ञ नहीं किया उस स्वल्प सुख सम्पन्नको यह मनुष्य लोक भी नहीं मिल सकता, इससे देवलोकादि अन्य लोक कैसे मिल सकेंगे? यह जो वेदप्रतिपादित बहुविध यज्ञकी बात कहीं यह सब ही कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियासे ही सम्पन्न होती हैं। आत्मा कोई यज्ञसम्पन्न नहीं करता यह समझना चाहिये क्योंकि आत्मा निष्क्रिय है!

इस प्रकार ज्ञान दृढमूल होकर अक्षुण्ण धारणा होनेसे इस संसार बन्धनसे विमुक्त होसकेंगे ।

(प्रश्न) हे माता, आपने कहा यह समस्त यज्ञानुष्ठान जब आत्मा नहीं करे तब आत्माको छोड़कर दूसरा चेतन पदार्थ जरूर ही है क्योंकि शरीरत्रय (स्थूल, सूक्ष्म कारण) के और स्थूल शरीरके बीचमें ६ रिपु आदि और इन्द्रिय आदिके सालोक अर्थात् कर्ताकी आवश्यकता है । हम देखते हैं कि जब उस शरीरत्रयको आत्मा छोड़दे तो वही स्थल शरीर जड पदार्थ मात्र पडा रहता है, उस स्थूल शरीरके भीतर जो सूक्ष्म और कारण शरीर भी लुप्त होजाते हैं, तब क्या सूक्ष्म और कारणशरीर चेतन हैं ? अत एव हे माता ! कृपा करके इस वृत्तान्तको विस्तृत रूपमें वर्णित कीजिये ।

(उत्तर) जयन्ती तुमको इस प्रसंगके पहले भी कहा था कि यह शरीरत्रय एवं कामादि षड्रिपु और इन्द्रियादि समस्त ही चालक अर्थात् कर्ता ही जीवात्मा है, जैसे लकड़ीकी पुत्तलियोंको मस्तकमें बारीक सूत्रसे बांधके एक मनुष्य नचाता है ऐसे ही यह कायिक, वाचिक,

मानसिक, आत्माके कर्म करता है, जो कहो कि आत्मा निष्क्रिय है; तब सुख और दुःख किसको होते हैं? इसका यह उत्तर है कि जीवमें निर्लिप्त जो आत्मा उसको सुख दुःख नहीं हैं परन्तु जो आत्माजीवमें लिप्त है अर्थात् इन्द्रियादि और रिपु आदिके प्रतिबिम्ब जो आत्मामें वर्तमान हैं वह आत्मा कभी निष्क्रिय नहीं होसकता, क्योंकि क्रियान्वित पदार्थ समस्त ही उसी पवित्र आत्माके सामने रहता है, सुतरां अच्छा बुरा कार्य आत्माके बाध्य होकर करते हैं, इस कारण सुख दुःख वही जीवात्मा ही भोग करते हैं, मनुष्यशरीरमें जो आत्मा, है वह तीन अंशोंमें विभक्त है। उसके बीचमें बृहदंश आत्मा पवित्र परमात्मा नामक है, क्योंकि गुणातीत स्थानोंमें है । इस परमात्माका जगतमें कोई पदार्थ दृष्टिपथमें नहीं है सुतरां कोई क्रिया भी नहीं है और यही परमात्मा अर्धपरिमाण एकांश पवित्र आत्मा केवल सत्त्वगुणकी शेष सीमामें स्थित है । उस आत्मांशको भी निष्क्रिय कह सकते हो क्योंकि वह कोई कार्य नहीं करता साक्षीस्वरूप मात्र केवल

सत्त्वगुणमें आनन्दमयकोष अथवा कारण शरीर मध्यमें लीन होरहा है। यह आत्मांश महदात्मा कहलाता है। इसी महदात्माके समान एकांश आत्मा ही जीवात्मा है यही संसारमें लिप्त है। इसी कारण सुख दुःखका भोग करता है। अतः हे जयन्ती, जो आत्मा शुद्ध बुद्ध अर्थात् इन्द्रियादिमें लिप्त नहीं है उस आत्माको सुख दुःख भी नहीं, इसीको निष्क्रिय कहते हैं, अतएव हे जयन्ती, आत्मा निष्क्रिय कहके गृहस्थोंके संग तुम भी अज्ञानी न बनो। पर्ण परमात्माका अधिकांश निष्क्रिय और आत्मांश क्रियावान् अर्थात् जीवात्मा ही क्रियावान् है और समस्त आत्मा निष्क्रिय पवित्र है। परन्तु आत्माकी स्वाभाविक शक्तिसे जगत्के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं आत्माको कुछ ज्ञान नहीं; जैसे अग्निके द्वारा कोई पदार्थ जलता है लेकिन अग्निको ज्ञान नहीं; अतएव हे जयन्ती, जीवात्मा कर्ता नहीं होगा तो मुक्त कौन होगा ?

(प्रश्न) जयन्ती बोली—हे मातः, आपके तत्त्वोपदेशसे मनमें बड़ी पवित्रता आई, किन्तु

और एक विषयमें मुझे सन्देह है उसको कहती हूं सुनिये, भ्रान्तिनिवन्धन वा अन्य किसी कारणसे परमात्माका जीवभाव होता है इसमें कुछ हानि नहीं, परन्तु उसी जीवभावकी अनादितासे अनादिका क्षय किस प्रकार सम्भव होता है ? हे माता, जीवभावसे नित्य संसारभाव होता है; सुतरां जीवोपाधिके प्रशान्त न होनेसे किस प्रकार मोक्ष होसकता है ?

(उत्तर) महारानी वोलीं—तुमने वुद्धिमत्ताके साथ उत्तम प्रश्न किया है उसका उत्तर सुनो भ्रममें मोहकल्पना कभी प्रामाणिक नहीं है; जैसे निर्मल आकाशमें भ्रमके वश नीले काले इत्यादि वर्णकी भ्रान्ति होती है, ऐसे ही असंग निष्क्रिय और आकाररहित परमात्माके सम्वन्धमें विषय-सम्वन्ध घटना भ्रम छोड़कर कुछ नहीं। निर्गुण, निष्क्रिय, सर्वभूत साक्षि ज्ञानमय और आनन्द-स्वरूप आत्माका जीवभाव वुद्धिभ्रमसे ही कल्पित [illegible] हता है, वास्तवमें वह झूठा है। क्योंकि आत्मांश[illegible]में जड़स्वरूप जीवभावका भी ध्वंस होता कोई कार्य [illegible]निवन्धन रज्जुसे सर्पका भ्रम होताहै।

परन्तु भ्रान्तिके छूट जानेसे उस अज्ञानका भी नाश होजाता है तैसे ही भ्रान्तिके वशसे मिथ्याज्ञान द्वारा जीवभावका प्रकाश रहता है; परन्तु भ्रान्ति दूर होनेसे जीवभाव नष्ट होजाता है। जैसे सुषुप्तिकालमें दृष्ट पदार्थ जागृत अवस्थामें नष्ट होजाते हैं ऐसे ही अविद्या अनादि है, और अविद्याका कार्य भी अनादि है; किन्तु विद्याके आविर्भावमें अनादि अविद्या और तत्कार्य अनादि होनेसे भी हम लोगोंके सम्बन्धमें विलासभावनाके समान प्रकाशित होते हैं और अनादि होनेसे भी प्रागभावका नाश देखा जाता है, किन्तु आद्यन्तहीन आत्माका केवल बुद्धिके साथ उपाधिसम्बन्ध जीवत्वकल्पित होता है, इससे भिन्न कोई हेतु देख नहीं पड़ता। आत्मा स्वभावसे ही सभी वस्तुओंसे विशेष लक्षणाक्रान्त है, सुरतां बुद्धिके साथ आत्माका सम्बन्ध केवल मिथ्याज्ञानके वशसे ही होता है। सम्यक्ज्ञान होनेसे अलीक ज्ञान तिरोहित हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जीवात्माके सहित परमात्माकी एकता ज्ञानको ही सम्यग् ज्ञान कहते हैं, यह वेदोंमें स्पष्ट है। बुद्धियोगमें परमात्मा और

जीवात्माका अनन्य विचार द्वारा ही सम्यग्ज्ञानकी सिद्धि होती है; इसवास्ते जीवात्मा और परमात्माका विचार करना चाहिये, जैसे जल और पङ्क (कीच) विभिन्न वस्तु होनेपर भी पङ्कही कहाजाता है । पीछे पङ्कके नाश होनेसे जल ही प्रकाशित होता है । जब सद्बुद्धिके प्रभावसे मिथ्याज्ञान नष्ट होजाता है तब सर्वभूतस्थ परमात्माका ज्ञानप्रकाशित होता है । सुतरां आत्माके सम्बन्धमें अहंभावयुक्त पदार्थगत ज्ञान भलीभांति छोड़ना चाहिये । परमपुरुष परमात्माका विज्ञानमय कोश भी नहीं कहा जाता विज्ञान मय कोशमें विकारिता जड़ता परिच्छन्नता, दृश्यता, व्यभिचारिता इत्यादि नाना प्रकारके दोष देख पड़ते हैं। सुतरां अनित्य विज्ञानमय कोष नित्य पदार्थ नहीं है। आनन्द प्रतिबिम्ब विशिष्ट तमरति द्वारा प्रकाशित प्रियाप्रिय गुणयुक्त निज अभीष्ट प्राप्ति द्वारा उदय शील देह पुण्यशील समुदाय पुण्यानुभव होनेसे स्वयं आनन्दरूपमें प्रकाशित होता है जिसमें देहीमात्रको ही सहजमें आनन्द प्राप्त होता है, इसका नाम ही आनन्दमय कोश है । सुषुप्ति अवस्थामें

वही आनन्दमय कोष बड़ी स्फूर्तिवाला रहता है। सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्थामें अभीष्ट दर्शनके लिये इसको थोड़ा प्रकाश होता है। उपाधियुक्तता प्रकृतिकी विकारिता और पुण्य-क्रिया सम्बन्धी विकारका मेल होनेसे यही आनन्दमय कोष परमात्मा नहीं कहा जासकता। वेदोंमें यही कोशपञ्चक परमात्मासे प्रतिषिद्ध होनेसे वह प्रतिषिद्धकोश सीमास्वरूप जो साक्षी ज्ञानस्वरूप अवशिष्ट रहता है वही आत्मा है। आत्मा स्वयं ज्योतिःस्वरूप कोषपञ्चकसे विशेष लक्षण युक्त है, वही तीन अवस्थाओंका साक्षी, नित्य, विकारहीन निरञ्जन सदानन्दमय है, जो सुधीगणसे अपने आत्मरूपमें ज्ञात होता है। तब जयन्ती कहने लगी-मिथ्यात्वनिबन्धन प्रतिषिद्ध उस पञ्चकोषके भीतर सर्वाभावभिन्न अन्य कोई दृष्ट नहीं होता। अतएव हे माता, आत्मा और अनात्माके विचार सुननेकी हमारी इच्छा है। विवेकीके सम्बन्धमें कौन पदार्थ ज्ञान रहा। महारानी शतरूपा बोलीं—तुम आत्मा अनात्मा विचार करनेकी उपयुक्त पात्री हो, परन्तु अविद्या और उसका कार्यसमूह त्याग न होनेसे परमात्मा प्रकाशित

नहीं होता। जिसको कोई अनुभव करनेका सामर्थ्य नहीं है, अथवा जो समस्त वस्तुका अनुभव करते हैं सूक्ष्म बुद्धिबलसे इसीको निखिल विज्ञाता आत्मा जानना चाहिये और जो जो मनुष्यकर्तृक अनुभव जिस जिस पदार्थका अनुभव होता है वही वही मनुष्य उसी उसी द्रव्यका साक्षी स्वरूप है, परन्तु बिना जाने हुए पदार्थमें किसी विषममें साक्षिता सम्भव नहीं है। सुतरां आत्माका आत्मभाव इसी साक्षिस्वरूप द्वारा ही अनुभव होता है, क्योंकि परमश्रेष्ठ परमात्मा साक्षात् स्वयं विद्यमान है; दूसरा पदार्थ नहीं। जो परमात्मा नाना रूपमें प्रतिभूतस्थ आत्मस्वरूपमें नियत है वह हम हमारा इत्याकारमें अन्तरमें स्फूर्तिमान होकर जाग्रदादि अवस्थामें बहुत स्पष्टरूपमें प्रकाशित होता है। एवं जो नाना विकारभागी अहंबुद्ध्यादि वस्तु समूहको देखकर नित्यानन्द चित्स्वरूपमें अपने आप प्रकाशित रहता है, उसीको आत्मा कहते हैं। उसीको निजस्वरूप जानकर अन्तःकरणमें प्रत्यक्ष करना चाहिये; जैसे मूर्ख मनुष्य घड़ेमें रखेहुए जलमें सूर्यका प्रतिबिम्ब देखकर

उसीको आदित्य मानते हैं उसीको रूपक जड-बुद्धि व्यक्तिके उपाधिगत चित्के अभावमें भ्रमस अहं रूपका अभिमान जानते हैं।

बुद्धिमान् मनुष्य घटस्थित जल और उसमें पड़े प्रतिबिम्बके रूपको छोड़, प्रकृत शून्यको ही देखते हैं। ऐसे ही आत्मोन्नतिप्रिय मनुष्य देह इन्द्रिय और मायाके प्रकाशक स्वप्रकाश स्वरूपमें निज आत्माको देखते हैं इसप्रकार शरीर, बुद्धि और चित्प्रतिबिम्बको विसर्जन करके बुद्धिरूपी गुहामें संस्थित साक्षिस्वरूप अखण्ड ज्ञानमय सर्व प्रकाशक, सदसाद्विलक्षण, नित्य, प्रभु, सर्वव्यापी, सूक्ष्मतर, अन्तरबाहिः शून्य और अपनेसे अपृथक् आत्माको स्वस्वरूपमें भली-भांति जानकर पुरुष निष्पाप, रजसे शून्य और मृत्युहीन होके रहे। निःशोक घनानन्दस्वरूप सर्वव्यापक परमात्माको कहीं भय विद्यामान नहीं होता। सुतरां मुक्तिकामी व्यक्तिके उसी परमात्मारूप आत्मतत्त्व ज्ञान व्यतिरिक्त संसार पाशसे मुक्तिके लिये दूसरा उपाय नहीं है।

ब्रह्मके साथ अपनी अभेद बुद्धि संसारके मोचनका हेतु है, उसीके बलसे बुद्धिमान् व्यक्ति अद्वितीय आनन्दमय ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। ब्रह्मस्वरूप बुद्धिमान् जन संसारमें पुनर्जन्म नहीं लेते । सुतरां अपने आप ब्रह्मके अभेद स्वरूप स्थित हो जाते हैं। सत्यज्ञानानन्द, विशुद्ध-स्वरूप नित्यानन्दमय प्रतिभूतस्थ आत्माके अभेदस्वरूप परब्रह्ममें सर्वदा ही विराजते हैं । आत्माको छोड़कर दूसरे पदार्थके अभावनिबन्धनसे यही परमात्मा सत्स्वरूप एवं परमात्मा द्वैतवत्, अत्युत्तम परमार्थ तत्त्वको ज्ञान अवस्थामें केवल एकमात्र ब्रह्मको छोड़कर दूसरा कुछ विद्यमान नहीं है । यहं जो समस्त स्थावर जंगमात्मक ब्रह्माण्ड अज्ञानके वश नाना प्रकारसे अनुमित होता है, उस नाना प्रकारकी भावनारूप दोषका ध्वंसकारी ब्रह्म है । मृत्तिकाका कार्य रूपमें परिणामप्राप्त वस्तुसमूह मृत्तिकासे पृथक् नहीं है । सर्वत्र ही मृत्तिकास्वरूप वस्तुसे घड़ा उत्पन्न होता है; किन्तु घड़ेका अलग रूप नहीं देखपड़ता । कुम्भ नाम असत्य कल्पनामात्र है । कोई मनुष्य नहीं दिखलासकता कि घटका स्वरूप मृत्तिकासे

भिन्न है। सुतरां मोहवशसे 'घट' ऐसा नाम कल्पित होता है, यथार्थमें मृत्तिका ही सत्य है। सत् ब्रह्मका कार्य भी सत्स्वरूप है वही स्थावर जंगमात्मक सभी ब्रह्म है, उसको छोड़कर और कुछ नहीं है। जिनका अज्ञान दूर नहीं हुआ वही मनुष्य कहते हैं ब्रह्म छोड़के दूसरा पदार्थ है। उस मनुष्यका वाक्य सोएहुए मनुष्यके प्रलापके समान है।

अथर्ववेदान्तर्गत श्रुतिके प्रमाणसे जाना जाता है कि यह विश्वब्रह्माण्ड सभी ब्रह्म सुतरां ब्रह्माण्डाधार ब्रह्मसे आधेय ब्रह्माण्डसे भेद कल्पित नहीं होता, जगत् सत्य होनेसे आत्माकी अनन्तताकी हानि होती है, वेदोक्त प्रमाणसे विरोध होता है, और ईश्वरके लिये असत्यभाषिता होती है। सुतरां यह तीनों महानुभाव गणोंके अनुमोदित नहीं। सर्व द्रव्यके तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें ईश्वरकी उक्ति है कि हम पदार्थरूप भूतग्राममें संस्थित नहीं हैं, एवं भूतरूप दीर्घसमूह भी हमसे स्थित नहीं है। संसार झूठ न होनेसे सुषुप्ति अवस्थामें प्रतीति क्यों नहीं होती। सुतरां जब सु-

षुप्ति दशामें किसी वस्तुकी प्रतीति नहीं होती तब विश्व सत्य किस प्रकार होसकता है। इस कारण केवल जाग्रत् अवस्थामें दृश्यमान विश्व स्वप्नके समान निष्फल है। यह निश्चित हुआ।

(प्रश्न) जयन्ती बोली–हे माता ! आपकी बात श्रवण करके मन पवित्र होगया, इस समय अविद्या किसको कहते हैं और उस द्वारा जीवात्माका क्या क्या कार्य सिद्ध होता है यह विस्तृतरूपमें वर्णन कीजिये ।

(उत्तर) माया और उसके अन्तर्गत कामादि षड्रिपु इन्द्रियादि समस्तका एक नाम अविद्या है। अविद्याका अर्थ ज्ञानका अभाव नहीं है परन्तु यथार्थ ज्ञानके विरुद्ध ज्ञान (विपरीत ज्ञान) को अविद्या कहते हैं; अर्थात् आत्माको भ्रम उत्पन्न करनेवाला, जैसे शवदहन करनेवालेको चिताशय्यामें शवदाह करने तक संसारकी अनित्यता बड़ी तीव्र होती है पीछे घरमें आनेपर सांसारिक कार्यों में फसजानेसे वह वैराग्य नष्ट होजाता है; इसी प्रकार इस भ्रमकी उत्पादक भी अविद्या कही जाती है, यही संसारमें विशुद्ध आत्माको आवरण करके रखती है ।

जिस कारण जीवात्मा आबद्ध होता है वह सुनो—जैसे हम लोग पुष्प मधु पीते हैं किन्तु हमको यह शक्ति नहीं है कि पुष्पसे पवित्र मधु पान करें। सुतरां वही मधुमक्खी पुष्पोंसे मधु मुखमें रखकर वृक्षशाखामें संग्रह करती है उसमें उसके थूक आदिका विचार न करके हम उसका पान करते हैं इसी प्रकार संसार है। अतएव हे जयन्ती, वही अविद्यादि नहीं होनेसे यह अस्थिर संसार थोड़े समयके वास्ते भी स्थित नहीं होसकता, और भविष्यमें आत्माकी मुक्ति भी नहीं होसकती। इस वास्ते संसारमें अविद्या नितान्त आवश्यक पदार्थ है।

यह अविद्या आत्माको आवरण करके रखती है, और इसी अविद्याके द्वारा उसका आवरण छूट जाता है, उस अविद्यासे आत्माकी उन्नति किस प्रकार होसकती है इसका विचार करना चाहिये।

रजोगुणका काम न होनेसे जीवदेह तैयार नहीं होता है। सुतरां शरीर न होनेसे प्रकृति-आत्मा अर्थात् जीवात्माकी मुक्ति नहीं होसकती, अत एव काम रिपुकी नितान्त आवश्यकता है।

सत्वगुण–इसी सत्वगुणसे जीवके आहार करने योग्य वस्तु सस्यादि उत्पन्न होता है, उसी सस्यादिके आहार द्वारा जीवन धारण करते हैं, और जीवात्मा चिन्ताशक्ति और वाक्शक्ति मन एवं बुद्धिशक्ति द्वारा इन्द्रियादिसे परमात्माको आकर्षण करके ज्ञानलाभ करते हैं, उसी ज्ञानसे मुक्तिलाभ करते हैं । एवं दूसरे जीवात्माको ज्ञानलाभ कराके मुक्ति कराता है इत्यादि इत्यादि ।

तमोगुण–क्रोध न होनेसे कामादि रिपुगणका युद्धमें पराजय नहीं करसकता, मूल बात यह है कि युद्धही नहीं होता । एवं मनुष्यको मुक्तिका उपयोगी ज्ञान भी नहीं होता; क्योंकि मृत्यु ही शिव है ज्ञानदाता जगद्गुरु को ही शिव कहते हैं । यही जगतके जीवोंका कल्याण कारक देवादिदेव महादेव नामसे संसारमें विख्यात हैं । लोभ अर्थात् आकांक्षा न होनेसे जगतके जीवका कोई काम नहीं होसकता; क्यों कि इच्छा न होनेसे कार्य कौन करेगा ? मोह— अर्थात् दृढचित्त न होनेसे कोई कार्य सम्पन्न नहीं

होता । मद–अर्थात् नशा न होनेसे कोई कार्य आरम्भ नहीं होसकता । मात्सर्य–अहंकार वा अभिमान न होनेसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होसकता। इससे प्रतिज्ञा करके कि ' या तो हम मन्त्र साधन करेंगे नहीं तो देहपात ही होगा ' इसको अहंकार कहते हैं । इन समस्त कार्योंका कर्ता जीवात्मा है। कर्मकर्ता कर्मेन्द्रिय हैं, अतएव जीवात्माका कर्तव्य सत्त्वगुणयुक्त बुद्धि द्वारा मनको स्थिर करके रिपु आदि कर्मेन्द्रियोंसे स्वकार्य अर्थात् संसार और मुक्ति यह उभय कार्य्य सावधानतासे सम्पन्न करनेका है ।

(प्रश्न) हे माता ! उन्हीं त्रिगुण अन्तर्गत रिपु आदि और इन्द्रियादि समस्त हैं । इन तीन गुणोंकी उत्पत्ति पञ्चभूतों द्वारा किस प्रकार हुई ?

(उत्तर) हे जयन्ति ! इस जगतकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें तुमको पहले भी कहा था वह तुमको स्मरण होगा । जिस समय महाप्रकृति आत्माके अंगसे यह पञ्च महाभूत परमाणुरूप व्यष्टिसे समष्टि हुई, अर्थात् इस जगतकी सृष्टि हुई उस समय इन पञ्चभूतोंके महासार

जो पञ्च रंग विशिष्ट ज्योति पृथक् पृथक रूपसे (लाल, पीत, श्वेत, नील, धूसर) ऊपरको प्रकाशित होकर भासता है, उसने पञ्चरंग एक कमलाकृति रूप धारण किया है, वही कमलरूप ज्योति जगत्के ललाटमें स्थित हुआ। उसी कमल से रंगरंगमें मिलित होकर त्रिगुणकी उत्पत्ति हुई। नीचे अर्थात् पृथिवीमें जलमें उसी त्रिगुणका प्रवाह रस्सी स्वरूप सर्वदा ही पतित होता है।

लोहित वर्णकी ज्योति रजोगुण है, किन्तु पीत वर्णकी ज्योतिकी सहायता न होनेसे केवल लाल वर्णकी ज्योतिमें रजोगुण प्रकाश नहीं करसकेगा, सुतरां पीतवर्णकी ज्योति किंचित् पूर्णरूप लोहितवर्णमें मिलकर रजोगुणकी उत्पत्ति हुई। पीतवर्णकी ज्योति सत्त्वगुण है, श्वेतवर्णकी ज्योतिकी सहायताके विना सत्त्वगुणके कार्य प्रकाश नहीं करसकती, सुतरां श्वेतवर्णकी ज्योति थोड़ा पूर्णरूप पीतवर्णकी ज्योतिमें मिलकर सत्वगुणकी उत्पत्ति हुई। नीलवर्णकी ज्योति तमोगुण है, वही नीलवर्ण ज्योति धूसरवर्णकी सहायता विना तमोगुणके कार्यका प्रकाश नहीं होसकता, सुतरां

धूसरवर्णकी कुछ ज्योति, नील वर्णकी पूर्ण ज्योतिमें मिलकर तमोगुणकी उत्पत्ति हुई ।

(प्रश्न) हे माता ! उस त्रिगुणद्वारा शरीरकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? यह विस्तृतरूपसे वर्णन करके इस अधीनाकी जिज्ञासा पूर्ण कीजिये ।

(उत्तर) हे जयन्ति, महाराजा और मेरा जन्म रजोगुणमें नहीं है यह तुमसे पहले कहचुकी । ओंकारके स्वभावसे हमारी उत्पत्ति है । हमारे सन्तानगणकी रजोगुणी उत्पत्ति हुई और होती है । मनुष्यकी उत्पत्ति–जैसा कुम्भकार बेचनेके लिये मृत्तिका द्वारा बहुत खिलौने बनानेकी इच्छा करके पहले एक खिलौना अपने हाथसे बहुत सुन्दर रूपमें प्रस्तुत करके आगमें जलाकर पक्का करते हैं, उसी पक्के खेलौने द्वारा अत्युत्तम मिट्टीसे सांचा बनाकर वही सांचा फिर आगमें तपाकर पक्का करलेते हैं । पीछे परिष्कृत मिट्टीसे वही सांचा भर भरके, जल्दी जल्दी बहुत खिलौने बनालेते हैं, ऐसे ही उसी पवित्र ओंकार वा आत्मासे महाराज और हमारा सच्चा स्वरूप बना है । इसी मनुष्यसे ही त्रिगुण द्वारा सृष्टि, स्थिति, प्रलय यह तीनों कार्य पृथिवीमें चलते हैं ।

इसी मनुष्य शरीरमें त्रिगुणकी स्थिति रखनेके वास्ते उसी ओंकारसे केवल सत्त्वके द्वारा त्रिगुणयुक्त जीवके खाद्य पदार्थ सस्यादि सृजन करके जीवगणको प्रदान करते हैं। उन्हीं सकल खाद्य पदार्थोंको जीवगण आहार करके देह और त्रिगुणकी रक्षा करते हैं, और रजोगुणके द्वारा जीवदेहसे ही जीव देहकी सृष्टि होती है। वह जीवगण जो समस्त भोजन करते हैं, उनसे जीवशरीरमें रक्त होता है। वह रक्त जमकर मांसमें परिणत होता है। उस मांसका सार मेद है, मेदका सारांश हड्डीके बीचमें मज्जा है, बाकी मेदका असारांश जमकर चर्म बनता है, उसी चर्मद्वारा शरीरस्थ मांस आवृत होता है, और वही अस्थिमध्यमें जो मज्जा है उसका सारांश वीर्य है, उसका सारांश वही पाञ्चभौतिक महासार निर्मल ज्योतिद्वारा उस त्रिगुणकी रक्षा होती है। उस त्रिगुणसे सृष्टि, स्थिति, प्रलय यह तीन कार्य संसारमें चलते हैं और जीवशरीरमें बुनियाद (मूल) जो अस्थि है वहां वह वीर्य जमकर उसी अस्थिमें परिणत होता है।

(प्रश्न) जयन्ती बोली–हे माता! हम देखते हैं इस पृथिवीमण्डल पर आपके वंशोद्भव वहुत मनुष्योंने जन्म धारण किया; उनके बीचमें प्रत्येक मनुष्यके स्वभाव और आकृति अलग अलग होनेका कारण क्या है? इसका विस्तृत रूपसे उत्तर देकर हमारा मनोमालिन्य दूर कीजिये।

(उत्तर) हे जयन्ती, मनुष्यजाति जब पहले उत्पन्न हुई अर्थात् मेरे पुत्र और कन्यागण सबके ही रूप लावण्य, बुद्धि धर्म इत्यादि सब प्रशंसनीय एक ही प्रकारकी थी। इस समय भी पुत्र और पौत्रादिक सभी एक ही प्रकारके देखे जाते हैं। जब सात पीढ़ी व्यतीत होगयीं तब इस संसारमें जन्म और मृत्यु भी आरम्भ होने लगा। इस ही समयसे पाप पुण्य और मानवरूपान्तर और बुद्धिशक्ति इत्यादि प्रकाशित होने लगे। किन्तु वही समस्त पाप, पुण्य रूपान्तर अथवा भिन्न २ चारित्र होनेमें परमात्माकी इच्छा नहीं है। यह सब जीवात्माके कर्मानुसार होता है। इसी प्रकार वतमानमें भी प्रचलित है। इसका कारण सुनो।

जीव शरीरमें तीन गुण (रज, सत्त्व, तम) हैं। उन्हींके अनुसार मनुष्योंके चरित्त, आकृति, धर्म, अधर्म, बुद्धि इत्यादि नाना प्रकारके गठित होते हैं। यह समस्त ऋषिगणोंने भूत, वर्तमान और भविष्य जानकर निश्चय किया है इसमें कुछ सन्देह नहीं। इस कारण ऋषिगणने बहुत मनुष्योंको इकट्ठा करके चारों प्रकारके मनुष्योंके वर्ण और आश्रम नियत किये हैं। जिन मनुष्योंने सत्त्वगुणका परित्याग करके केवल रज और तमोगुणके कार्य करके देहोंका त्याग किया है वही फिर केवल रज और तमोगुण युक्त देह धारण करके इस पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करके ठीक युवा अवस्थामें उन्ही रज और तमो-गुणके कार्योंमें लिप्त और धर्माधर्म ज्ञान शून्य रहते हैं। केवल पशुतुल्य व्यवहार करते हैं। एवं जगत्में बहुत मनुष्योंमें निन्दित होकर जीवयात्रा व्यतीत करते हैं। इनही रज और तमोगुणयुक्त पुरुषशरीरके लक्षण–लिंग अत्यन्त विशाल घोड़ेके लिंगके समान चिह्न-वालेका नाम अश्वजातीय पुरुष और उसी जातीय स्त्रीको हस्तिनी नामसे ऋषियोंने कहा है। जो

मनुष्य सत्त्वगुणके कार्य थोड़े परिमाणमें व्यवहार करते हैं, रज और तमोगुणके कार्योंमें अधिक लिप्त रहते हैं। इसी प्रकार दूसरे जन्ममें भी उन्हीं रज और तमोगुण पूर्ण थोड़े सत्त्व गुण युक्त शरीर धारण करके युवावस्थामें सदा विषय वासनामें लिप्त रहते हैं । ऐसे मनुष्योंके लक्षण—वृषभके लिंगके समान लिंग होनेसे वृषजातीय और स्त्रियोंको शंखिनी मुनियोंने कहा है । और जिन मनुष्योंने सत्त्व और रज गुणके कार्य बराबर किये और तमोगुणके कुछ अधिक किये, ऐसे मनुष्योंके शरीरके लक्षण—मृगके लिंगके समान लिंग होनेसे उनको मृगजातीय और उस जातिकी स्त्रियोंको ऋषियोंने चित्रिणी कहा है।

जिस मनुष्यने त्रिगुणमध्यमें सत्त्वगुणके कार्योंका अधिक सेवन किया, रज और तमोगुणके कर्म आवश्यकतानुसार ऋतुरक्षा और रात्रिमें साधारण निद्रा इत्यादि किये, ऐसे पुरुषके लक्षण—शशक लिंगके समान लिंग अति छोटा होता है। इसवास्ते इस जातीय पुरुषको शशकजातीय पुरुष और उसी जातिकी स्त्रीको पद्मिनी कहा है ।

फिर ऋषिगणने इन्हीं चारों जातीय पुरुषोंको चार ही प्रकारके कार्य और ज्ञानानुसार चारो प्रकारसे वर्णाश्रमकी व्यवस्था की । जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । उस शशकजातीय पुरुषके धर्मभाव अधिक होते हैं। क्योंकि उसने सत्त्व गुणके कार्य अधिक किये हैं। इसवास्ते उनको ब्राह्मणवर्ण कहकर व्याख्या की है; क्योंकि वे ब्रह्म जानते हैं। मृगजातीय पुरुष सत्त्व रजके कार्य और तमोगुणके कार्य किञ्चित् अधिक करते हैं, इससे उनको ऋषियोंने क्षत्रिय कहा है ।

वृषजातीय मनुष्योंने त्रिगुणोंमें सत्त्वगुणके कार्य थोड़े किये, रज और तमोगुणके कार्य पूर्ण रूपसे भी अधिक परिमाणमें व्यवहार करनेसे ऋषियोंने उनको वैश्यवर्ण कहके व्याख्या की है।

अश्वजातीय मनुष्योंने सत्त्वगुणके कार्य कुछ भी नहीं किये । केवल रज और तमोगुणके कार्य पूर्ण रूपसे किये, इससे उनको शूद्रवर्ण कहके ऋषियोंने वर्णन किया ।

यह चारों जातीय और वर्णाश्रम अर्थात चारों जातिके पुरुष और स्त्रियोंका दृष्टान्त

भविष्यतमें पूर्णरूपमें स्पष्ट होगा । इस-समय पहले ही हम तुमको कहते हैं सुनो. शशकजातीय पुरुष और पद्मिनी स्त्री—जैसे लक्ष्मी और नारायण; मृगजातीय पुरुष और चित्रिणी स्त्री जैसे—शिव और पार्वती; वृषजातीय पुरुष और शंखिनी स्त्री जैसे कामदेव और रति; अश्वजातीय पुरुष और हस्तिनी स्त्री—जैसे रावण और मन्दोदरी; यह रावण और मन्दोदरी त्रेता युगमें प्रकट हुए। हे पाठकगण ! आपको स्मरण होगा कि पहले स्वायम्भुव मनु और सप्त ऋषियोंके प्रश्नोत्तरमें इन चारों जातिके पुरुष और चार जातिकी स्त्रि-योंका वर्णन विस्तृत रूपसे लिखा गया है ।

(प्रश्न) जयन्ती बोली—हे माता, उन चारों वर्ण और आश्रमोंके मध्यमें ब्राह्मण वर्णकी मुक्ति अनायास साध्य है, क्यों कि वह सात्त्विक कार्य अधिक करते हैं । क्षत्रिय वर्ण उससे कुछ विल-म्बमें मुक्त होसकेंगे, क्योंकि सत्त्वगुणके कार्य उन्होंने ब्राह्मणोंसे कुछ ही कम प्रायः पूर्ण रीतिसे किये हैं । वैश्यवर्णके मनुष्योंने सत्वगुणका कार्य कुछ ही किया, इससे उनके मुक्त होनेकी आशा

वहुत कम है। परन्तु सत्त्वगुणके अंशके प्रभावसे कुछ आशा है। और शूद्रवर्णके सत्त्वगुणके कार्य लेशमात्र भी नहीं होनेसे उनके मुक्त होनेका क्या उपाय होगा? इसका विस्तृत वर्णन कीजिये।

(उत्तर) हे जयन्ती, सत्य, त्रेता, द्वापर इन तीन युगोंमें ब्राह्मण वर्णाश्रमी और क्षत्रिय वर्णाश्रमी ही अधिक मुक्तिलाभ करेंगे, अल्पपरिमाणमें बाकी रहेंगे। वैश्य और शूद्र वर्णाश्रमी अधिक संख्यामें अयुक्त रहेंगे। यह लोग कलियुगकी शेष अवस्थामें अधिक संख्यामें मुक्त होंगे, क्योंकि समस्त जीवोंका एक आचार होजायगा। सुतरां उस समय वर्णाश्रम लुप्त होजायगा, भक्तिभाव नहीं रहेगा। तीर्थादि ग्रामदेवता लुप्त होजावेंगे। ऐसा होनेपर भी ब्राह्मणका बिलकुल अभाव तो हुआ नहीं; भेद न होनेपर भी जो ब्राह्मणत्व रहेगा उसका शूद्रके साथ सम्पर्क होजानेसे सत्वगुणके मिश्रण होनेके कारण दोनोंकी मुक्ति होजायगी।

जयन्ती बोली—हे माता; धर्मप्रचारक गुरुगण मुक्तिके लिये किस प्रकार उपदेश करेंगे?

महारानी बोलीं—हे जयन्ती; पहले द्वैत आत्माकी ही धारणा, ध्यान, दर्शन, आकर्षण इत्यादि उपदेश करेंगे; उसीके अनुसार कार्य करके जल्दी जल्दी मुक्तिलाभ करेंगे ।

(प्रश्न) जयन्ती बोली—हे माता; आपका वाक्य सुनकर आनन्द हुआ; अब मुझे एक सन्देह होता है कि सूर्याग्निकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? अर्थात् साधारण अग्निसे सूर्याग्नि किस प्रकार तेजस्वी हुआ; यह विस्तारसे वर्णन कीजिये ।

(उत्तर) हे जयन्ती, वही सूर्याग्नि जब वड़-वानल स्वरूपी अर्थात् साधारण अग्निके रूपमें भासमान था तब प्रकृति आत्माके उसी साधारण अग्निके मध्यमें प्रवेश करनेसे अति भयङ्कर समुद्रमन्थन होने लगा। उससे पृथिवी, चन्द्र, नक्षत्रादिकी उत्पत्तिके पीछे उसी साधारण अग्नि (प्रकृति आत्मा) के ऊर्ध्व पथमें जगत्के हृदय-देशमें स्थापन किया पीछे प्रकृति देवीने उसी साधारण अग्निके संलग्न ऊपरमें (सूर्याग्निके ऊपर) सहस्रों छिद्र युक्त एक थालीकी भांति गोल

सीमाबद्ध एक पर्दा सृजन करके स्थापित किया। पीछे वही साधारण अग्निसे सार (गैस) रूपी पर्दाके छिद्रसे प्रवेश करके उसी सीमाबद्ध परदेके कारण गोलाकृति धारण किया है, जैसे एक गोल तालाव खनके उसके वीचमें जल आनेसे उसी पुष्करिणीके रूपको धारण करता है उसके समान, पीछे उसी प्रकृति आत्माके तीन अंशका एक अंश पवित्र होकर (शुद्ध आत्मा-रूपमें परिणत होकर) उस एकांश आत्माने जगतके हृदयदेशमें उसी पवित्र अग्निकुण्डमें प्रवेश किया, इसको ही जगदात्मा वा ओंकार कहते हैं।

(प्रश्न) जयन्ती वोली—हे माता, आपके तत्त्वोपदेशसे मेरा चञ्चल चित्त स्थिर होगया, और एक विषयमें जिज्ञासा होती है कि उस महाग्नि सूर्यात्माके पर्वदिशामें उदय होनेके समय हमारे स्पर्शनेन्द्रियमें शीत लगनेका क्या कारण है? उस जगदात्माके हम लोगोंके निकटवर्ती होनेसे वह हमको वड़ा दिखाई देता है और उस सूर्यात्माके उदय होनेके पहले पूर्व दिशामें नाना रंगोंमें रञ्जित होनेका क्या कारण है? विस्तार-पूर्वक कहिये ।

(उत्तर) हे जयन्ती! प्रभातसे सन्ध्या पर्यन्त सूर्यात्मा अपने तेजके द्वारा नीचेकी भूमिका जल और समुद्र नदी आदिका जल बाष्परूपसे ऊपरको आकर्षण करते हैं। रातमें वह नहीं रहते, किन्तु प्रभातसे सन्ध्या तक उसी सूर्यतापमें जो भूपृष्ठ अर्थात् पृथ्वी जो उष्ण होती है वही उष्ण समस्त रातभर वर्तमान रहता है। वही पृथ्वीके गर्भमें ऊपरका जो बाष्परूपी जल है उसको पृथिवी आकर्षण करती है; क्यों कि जीवोंके खाद्य शस्यादिकी उत्पत्तिके लिये ओसरूपी जलकी आवश्यकता है। इसी लिये बाकी रहाहुआ जो शीत अंश वह सूर्योदयके समय सामने पर्दास्वरूप होजानेसे लोगोंको सूर्यकी उष्णता कम मालूम होती है। सूर्यके ऊपर चढ़ जानेसे बाष्परूप पर्दाके बाष्परूपी जलके ऊपरसे जैसा सूक्ष्म पर्दा होनेसे गर्म कम होता है थोड़े ही समयमें फिर सूर्यकी उष्णतासे उसके आकर्षणसे वही थोड़ा जल समस्त आकाशमें व्याप्त हो जाता है, सुतरां सूर्यका सम्पूर्ण ताप पृथ्वी और मनुष्योंमें लगनेसे गर्म होता है अर्थात् सूर्यात्माके महातेजमें वही बाष्परूपी ज-

लका पर्दा ऊपर उड़जानेसे जगतमें व्याप्त होजाता है। सुतरां उसी सूर्यात्माका पूर्ण तेज प्रकाशित होता है, इसवास्ते हम लोगोंको पूर्ण रूपसे गर्म लगता है। और प्रभातसमयमें सूर्यात्माके उसी बाष्परूपी जलके पर्दाके विरुद्ध दिशामें रहनेके कारण नाना वर्णविशिष्ट मेघमालामें ही बाष्परूपी जलका दर्शन होता है। उन नाना वर्णोंके कारण जगतमें जितने प्रकारके रंग हैं वह सब सूर्यमंडल में रहते हैं, और मनुष्यकी आँखके बीचमें वही नाना वर्ण हैं। और जल, सूर्यात्मा और मनुष्यके नेत्रके संग विशेष निकटता सम्बन्ध है, क्योंकि "चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः" अत एव उन्हीं तीनों पदार्थोंके संयोगसे प्रभात और सन्ध्या समय छोड़के दिनरात्रिके मध्यमें दूसरे किसी समयमें नहीं होसकता। उसी सूर्यउदय और अस्तके समय मनुष्यगण पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ सौंदर्य दर्शन करके जो आनन्दानुभव करते हैं वह समस्त पृथिवीके स्थानोंमें नहीं हो सकता। क्योंकि समस्त स्थानोंमें एक समय उदय और अस्त नहीं होसकते। कारण कि पृथिवीके सब स्थान समा-

नान्तराल नहीं हैं; अतएव निम्न अर्थात् समुद्रके निकटवर्ती स्थानोंमें सूर्यके उदय और अस्त अति मनोहर होते हैं जिस कारण जलके बहुत नजदीक सूर्योदय होता है। यद्यपि रातको बाष्प जल, थोड़ा होनेसे भी उस सूर्यतापमें सामनेके जल अथवा दूसरे बड़े जलाशयके जल बाष्परूपमें उड़ते हैं, सुतरां नाना वर्णकी मेघमाला कदम्बके वृक्षकी तरह ससज्जित रहती है। इसी प्रकार-सदा समान सूर्यका उदय और अस्त होता है, और पृथिवीके उच्च स्थानोंमें सूर्यके उदय और अस्तके समय वही बाष्प जल कभी थोड़ा, कभी अधिक होता है। इसका कुछ नियम नहीं। जिस दिन वही बाष्प जल अधिक परिमाण हो उसदिन पूर्व दिशामें थोड़ी प्रभातमें नमूनामात्र मेघमाला सुसज्जित होती है नहीं तो नहीं। क्योंकि जलके अभाव होनेसे।

(प्रश्न) जयन्ती बोली-हे माता! इसी मनुष्य देहमें रिपुआदि और इन्द्रियादि समस्त ही जब जड़ पदार्थ हैं तो उनके चलानेवाले तो हम (जीवात्मा) हैं तब यह सब कुबुद्धि क्यों संघटित होती है, यह विस्तृतरूपसे वर्णन कीजिये।

(उत्तर) हे जयन्ती ! उसी पञ्चभूतनिर्मित मनुष्यशरीरके मध्यमें इन्द्रियादि, षड् रिपु आदिक स्थान परमात्माने इस अनुसार निर्माण किये हैं कि वह सदा आत्माके दृष्टिपथमें हैं । अर्थात् उन समस्त इन्द्रियादिके प्रतिबिम्ब सदा आत्मामें पड़नेसे सद्बुद्धिका अभाव होजाता है । इससे मुक्तिमार्ग रुकजाता है, क्योंकि जीवात्मा देहरा-ज्यका कर्ता है। इसवास्ते सर्वदा उस देहराज्यके सब ओर सर्वदा जीवात्माकी दृष्टि है; जैसे जग-त्का कर्ता ओंकार समस्त जगत्को नेत्रपथमें रखकर देखभाल करता है। जैसे राजा अपने समस्त राज्यको दृष्टिपथमें रखकर सदा उसका शासन संरक्षण करता है। और जैसा एक दीपक समस्त घरको प्रकाश करता है, इसीप्रकार। परन्तु जीवशरीर विकारयुक्त है और जगत्शरीर ओंकार-का विराटरूप विकारयुक्त नहीं है, क्योंकि जगत्र शरीरके पञ्चभूत अलग अलग हैं, इससे विका-रकी संभावना नहीं, और मनुष्यशरीर पञ्चभूत मिलकर तैयार हुआ है, इसवास्ते विकारयुक्त है; जैसे मीठा, कड़ुआ, कसैला, खट्टा, चरपरा, खारी

इत्यादि षड् रस एकट्ठा करनेसे विकारयुक्त स्वाद होजाता है ऐसे ही यही पञ्चभूत एक जगह मिलकर नाना कार्ययुक्त एक देह होजाता है। हे जयन्ती ! इस विषयमें तुमको पहलेभी कहा है कि ओंकार (जगदात्मा) से विकारके कार्य कुछ नहीं होत, किन्तु यह विकारके कार्य जलचर, स्थलचर, खेचर इन तीनों स्थानोंके नाना-प्रकारके जीव शरीर द्वारा होते हैं। और उसी समस्त विकारयुक्त शरीरधारी जीवात्माके शरीरसे विकार-रक्षा करनेके लिये ओंकारके स्वभावसे केवल सत्त्वगुण द्वारा त्रिगुणयुक्त भोजनीय पदार्थ सृजन होते हैं। जब विचार करके देखा जाय तो वह ओंकार कुछ नहीं करता, क्योंकि ओंकारके सूक्ष्म शरीर सूर्यात्माके तेजमें आपसे आप सब कार्य होते हैं। उस आहारको छोड़कर जीव प्राणधारण नहीं कर सकते। इसी वास्ते अन्नको ही मुनियोंने ब्रह्म कहा है। अत-एव हे जयन्ती! मनुष्यगणको इस भयङ्कर संसा-रसे मुक्त होना कठिन है। इसीसे हमने जन्मसे ही उसी ओंकार (सूर्यात्मा) की उपासना की है।

बहुत दिनोंमें जब समाधिस्थान अर्थात् प्रलय-स्थान और उसके कर्ता इन दो पदार्थोंका दर्शन हुआ तब मुझे निश्चय हुआ कि यह संसार झूठा है; केवल ज्योतिरूप आत्मा ही सत्य है; किन्तु जितने दिन महाराजने यह संसार नहीं छोड़ दिया उतने दिन हमको किसी चीजका दर्शन नहीं हुआ। महाराजने जिस दिन संसार छोड़दिया उसी दिनसे मेरी प्रवृत्ति संसारके संबन्धसे क्रमसे निवृत्त होने लगी। पीछे प्रायः ४ वर्ष उपरान्त जब मैंने संसारकी समस्त प्रवृत्तिकी निवृत्ति की तब कारण शरीर–युक्त आत्मा और नाना प्रकारक पदार्थोंका दर्शन होने लगा। पहिले रजोगुण अर्थात् पद्मयोनि (ब्रह्मा) का दर्शन हुआ। इसमें भी मुझको कुछ ज्ञानलाभ नहीं हुआ। पीछे जिस दिन उस समाधिस्थान और उसके कर्ता जगद्-गुरु मृत्युञ्जय, महाकाल, देवाधिदेव महादेव, सबके कर्ता, शिव, महेश, विश्वनाथ, केदारनाथ, नकुलेश्वर, पशुपतिनाथ और अमरनाथ इत्यादि नामोंसे संसारमें विख्यात ज्योतिःस्वरूपका दर्शन किया; उसी दिनसे यह भयंकर संसार

नरक व मिथ्या प्रतीत होने लगा। महारानीके इस प्रकार कहते कहते ईश्वरके प्रेमसे अश्रुवारि निकलने लगे और वह कुछ वोल न सकीं।

जयन्ती वोली—हे माताजी! उन देवाधिदेव महादेवजीका स्वरूप कैसा है? इसके सुननेकी मुझे वड़ी उत्कण्ठा है। यदि कहनेमें कुछ कष्ट न हो तो कहिये।

महारानी प्रेमगद्गदस्वरसे कहने लगीं—हे जयन्ति! वह समाधिस्थान पृथिवी नहीं है और मैं कहां रही इसका भी मुझे कुछ ज्ञान नहीं। आकाशमार्गमें जिस स्थानमें तीसरे प्रहर जहां सूर्यदेव रहते हैं अनुमानसे उसी स्थानमें पूर्ण गोलाकृति चन्द्रदेवसे प्रायः १० गुने वड़े सुवर्ण-वर्ण विशिष्ट वह निष्कलंक, स्थिर, अचलभावमें विराजते हैं। आकाशमण्डल एक नीले वर्णका है, नक्षत्रादि वहां कुछ नहीं; और न कुछ वृक्षादि वहां देखपड़े। निश्शब्द, शीत और उष्णके वोधसे रहित, उस स्थानमें जीवोंमें केवल मैं ही वहां रही, वसन्त ऋतुमें जैसा समशीतोष्ण रहनेसे उत्तम समय रहता है उस भांति और महादेव-

जीकी अंगज्योतिसे असीम स्थान प्रकाशमय है वहांका सुखस्थान श्मशान है जिससे अधिक सुखका स्थान दूसरा नहीं, मनुष्यजीवके ज्ञानका मूलस्थान वही है ।

जयन्ती बोली–हे माता! जीवात्माकी ऐसी इच्छा हो कि इस देहराज्यमें जो कामादि ६ रिपु और इन्द्रियादि हैं, उन्ह अच्छी तरह शासनमें रखेंगे । अर्थात् अधर्मबुद्धि प्रकाश न होने देंगे, मेरा विश्वास है कि यह सब शक्ति जीवात्माकी है । महारानी बोलीं-हे जयन्ती! तुम कुछ नहीं जानती, इसी संसार संबन्धमें परमात्माने ऐसी कुछ मिठास डाली है कि उसके लोभमें कोई जीव भूल न सके। वह मिठास ही काम रिपुहे । जैसे विषकुम्भ पयोमुख, ऐसी ही यह मिठास है अर्थात् १ घड़ेमें प्रायः विष भरा हो मुखमें कुछ मीठा रक्खा हो तो हम लोग जानसकतेहैं कि यह सब मीठा ही है । अतएव जीव इसीको अमृत जान लोभमत्त होकर विषपूर्ण ऊपर मधुवाले उस विषको पान करलेतेहैं, किन्तु उस थोड़े अमृतको छोड़देना अति कठिन है । इसी मधुके लोभसे अज्ञ जीव जीवन-

पर्यन्त भी विसर्जन करदेते हैं; यह भलीभाँति देखा गया है ।

यह संसार ही जीवात्माके बन्धका कारण है। जयन्ती महारानीके मुंहसे अति मधुर तत्त्वसम्बधी वाक्य श्रवण करके आनन्द पुलकित होकर उनको भक्तिपूर्ण प्रणामपूर्वक कहनेलगी—हे माता! आज मैंने आपको अत्यन्त कष्ट दिया, अब मैं देखती हूं कि जय विजय क्या करतेहैं? आहार आदिकी भी चेष्टा करनी पड़ेगी, और महाराज क्या करतेहैं मैं सबका अनुसन्धान करके आती हूं। यह कह जयन्ती महारानीसे विदा मांग चली गयी ।

उधर जय विजय ऋषियोंसे धर्मके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी जिज्ञासा करने लगे, ऋषिगणने भी सब प्रश्नोंका उत्तर दिया; जय विजय ऋषियोंको प्रणाम कर राजाश्रमकी ओर चले गये।

इधर जयन्तीने महाराजाकी ओर देखा तो महाराज! पद्मासन लगाये ध्यानमें मग्न हैं, यह देखकर पीछे रन्धनगृहमें चलीगई । वहां देखा तो जय विजय नहीं हैं तब जयन्ती अकेली

भोजनवस्तु रन्धनके लिये आयोजन करके पाकशालाका द्वार बन्द कर महारानीके पास जानेको उद्यत हुई। उस समय जय विजय उपस्थित होकर जयन्तीसे कहने लगे–कहां जाती हो? जयन्ती बोली–तुम लोग कहां चले गये? जय, विजय–जिस कार्यके लिये तुम गईथी हम भी उसी कार्यके लिये गये। जयन्ती कुछ हंसके बोली-हां, समझलिया तुम लोग भी ऋषिआश्रममें गये थे किस २ सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर हुए? कहो। जय बोला–अधिक कर आत्मा परमात्माके सम्बन्धमें ही चर्चा हुई। पीछे सांसारिक वार्ता भी हुई जयन्ती बोली–सांसारिक वार्ता क्या हुई। जय, बोले–जब हम लोगोंने प्रतिज्ञा की किं हम संसारके कर्म न करेंगे, तब सांसारिक वातोंकी क्या आवश्यकता है। जयन्ती बोली–गृहस्थ आश्रम न करनेपर भी उसकी बातोंका ज्ञान आवश्यक है, देखो ऋषिलोग गृहस्थधर्म न करने पर भी गृहस्थोंको उपदेश देते हैं। अतएव इस जगतके समस्त कार्यौके जाननेकी हमको नितान्त आवश्यकता है। विजय बोले–जयन्ती, चुप रहो तुम

समझी नहीं, इस संसारके सम्बन्धमें और शिक्षा नहीं करनी होगी, जव हम लोगोंको तत्त्वज्ञान होगा तव अपने आप जगतके समस्त ज्ञान और वुद्धि अन्तरात्मासें प्रवेश करैगी। इस समय सांसारिक वातोंमें अधिक चर्चा होनेसे हम भी संसारी होजावेंगे, अतएव मेरा मत यही है कि भजनसमयमें संसारका नाम लेना भी उचित नहीं।

जयन्ती वोली—अच्छा जाओ, अभी अपना अपना कार्य करो। यह कहकर रसोईघरका द्वार खोल और वहांकी सव सामग्री जय विजयको दिखलाकर महारानीके पास चलीगई।

इधर जय विजयने भोज्य वस्तु रन्धन करना आरम्भ किया, जयने कहा—विजयने देखा कि स्त्री जाति ही अविद्या है उसकी मुक्ति होना असम्भव है, क्योंकि हिताहितका ज्ञान उसको है ही नहीं।

उधर जयन्तीने महारानीके पास उपस्थित होकर ऋषिआश्रममें गमन किया और जय विजयसे सम्भाषण आदिका सव वर्णन महारानीसे किया।

महारानी जय विजय सम्बन्धी समस्त वार्ता सुनकर मनमें सन्तुष्ट हुईं और जयन्तीको सम्बोधन करके कहा कि,हेजयन्ती! तुम्हारा जयसे विवाह हो जाय तो तुमको सम्मत है कि नहीं ? जयन्तीने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। फिर महारानी बोलीं—जयन्ती चुप क्यों रहगई ? तब जयन्ती कुछ विरक्त होकर बोली कि इस प्रकार धर्मके निगूढ़ तत्त्वके उपदेश करनेका आपका क्या प्रयोजन है ? हमको इस संसार नरकमें डुबादेनेसे ही होजाता। महारानी बोलीं—क्यों हमने क्या संसार नहीं किया ? देखो गृहस्थ धर्म पालनके पीछे अब हम मुक्तिका यत्न कररही हैं। ऐसा ही तुम भी करोगी। जयन्ती बोली—आपके लिये परमात्माका आदेश है इससे आपने सांसारिक कर्म किया परन्तु हमारे लिये न परमात्माकी आज्ञा है न कुछ आवश्यकता है इस लिये हमें गृहस्थकी चर्चा निष्प्रयोजन है । महारानी बोलीं—तुम्हारी सांसारिक धर्मकी इच्छा नहीं हो परन्तु गुरुवाक्यको उल्लंघन न करके उसीको परमात्माका वाक्य समझो । जयन्ती बोली—

हमने मनही मन परमात्माको सत्य जानकर प्रतिज्ञा की है कि गृहस्थाश्रम ग्रहण नहीं करेंगी। इस समय आप गुरु ईश्वर होकर स्वयं विचारिये पाप पुण्य आपको है हम कुछ नहीं जानतीं।

महारानीने जयन्तीके मुखसे ऐसा सुनकर मनमें विचार किया कि, अब इस विषयमें क्या कर्तव्य है? जब यह तीनों इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होगये तो इस मार्गसे विचलित करना उचित नहीं (प्रकाशमें) अच्छा,जो होगा देखा जायगा। इस प्रकार तुम लोग उपासना सम्बन्धमें किस प्रकार कर्म करते हो? जयन्ती बोली-महारानी; जिसप्रकार महाराज कार्य करतेहैं हम लोग भी ठीक उसीप्रकार कार्य करते हैं, किन्तु ठीक समयानुसार नहीं होता। महारानी बोलीं-महाराज! जो जो क्रिया करते हैं तुम लोग उसप्रकार करना जानती हो? जयन्ती बोली-हां। महारानी बोलीं-तुम लोगोंने कबसे यह काम आरम्भ किया? जयन्ती-महाराजने जबसे यह शुभकार्य आरम्भ किया हमने भी तभीसे इसका प्रारम्भ किया। महारानी बोलीं-इतने दिनमें कुछ आनन्द मिला

कि नहीं ? जयन्ती–हे माता ! जब आनन्द नहीं मिलता तो संसारसे निवृत्ति किस प्रकार होती ? मूल बात तो यही है कि हम लोगोंको सांसारिक बातें अच्छी नहीं लगतीं। महारानी जयन्तीके ऐसे वाक्य सुनकर सोचने लगी कि इस समय भजन सम्बन्धमें विधिवत कार्य करसकें इस प्रकारका प्रबन्ध करना चाहिये, और इन लोगोंको सर्वदा धार्मिक उपदेश देने चाहिये; जिससे यह निश्चय ही परमात्मज्ञानके सुखका लाभ करेंगे। उधर जयने भोजन तैयार किया और स्वर्णपात्रमें उसको सजाके विजयने यथास्थानमें रक्खा, और वे दोनों राजागमनकी प्रतीक्षा करने लगे । महारानीके वास्ते जयन्तीने भोजन यथास्थानमें रक्खा और उसकी प्रतीक्षा करने लगी। महाराजके भोजन करलेने पर महारानीने भोजन किया। पीछे जयन्तीको भोजन करनेकी आज्ञा दी।

इस प्रकार भोजनान्तमें जय विजय और जयन्ती रसोईगृहमें एकत्र स्थित होकर उपासनाके सम्बन्धमें आलोचना करने लगे। जयने कहा–उपासना करनेके प्रातःकाल इत्यादि समय निर्दिष्ट हैं । उन्हींमें करना उचित है,

असमयमें कुछ फल नहीं। विजय बोले—उपासना दिनमें तीन समयमें प्रसिद्ध है, प्रभात, मध्याह्न और सायंकाल. उनमें भी मध्याह्न कालकी उपासनामें विशेष लाभ है, क्यों कि उसी समयमें सत्त्वगुणका सूर्यात्मामें अधिक प्रकाश होता है, और प्रभातमें रजोगुणका अधिक प्रकाश होता है, सायंकाल अर्थात् सूर्यास्त होनेके पहिले तमोगुणका अधिक प्रकाश होता है। हम लोगोंकी उपासनामें सत्त्वगुणकी आवश्यकता है।

जयन्ती बोली—हमने महारानीके मुखसे सुना है कि इसमें समय निर्दिष्ट कुछ नहीं है. जब मन स्थिर हो जावे तभी उपासना करनेसे लाभ होगा, क्यों कि सूर्यका उदय और अस्त नहीं है, इसी लिये समय और असमय कुछ नहीं, मनमानी बात है। जब कहो उस सूर्यात्माके त्रिगुणयुक्त तीन रूप देखपड़ते हैं इसका उत्तर यही है, मनुष्योंको ज्ञान देनेके वास्ते जगदात्मा तीन गुणोंसे सृष्टि स्थिति प्रलय तीन कार्य करते हैं। जय बोला—जयन्तीका कहना बड़ा युक्तियुक्त है. जब मन स्थिर होगा तब ईश्वरोपासना करनेसे फल होगा। विजय बोला—धन्य जयन्ती,

असमयमें कार्य जैसा दिनमें सोना व्यर्थ है केवल मनका सम्बन्ध ही ठीक समझना चाहिये । जय बोला-मेरे मनमें एक और बात आई, उसी प्रभात मध्याह्न और सायाह्नमें मन स्थिर अधिक होता है इसी लिये ऋषियोंने यह तीन समय नियत रखेहैं ।

विजय और जयन्ती बोले-इसकी परीक्षा करनी चाहिये, इसमें चिन्ताका कुछ कारण नहीं । जय बोले-परीक्षाकी कुछ आवश्यकता नहीं । सूर्य भगवान्के तीन प्रकारके रूप धारणा और ध्यानके लिये हैं, इसी लिये ओङ्कार तीन रूपोंमें मनुष्योंको दर्शन देते हैं । यह कहकर ऊपरकी ओर देखकर जय बोले-इस समय हम लोगोंको कुछ आहार करना उचित है, ऐसा कह-कर सब लोग आहार करने लगे ।

भोजनके अन्तमें मुखशुद्धि करके जयन्ती बोली-देखो दिनका तृतीय प्रहर हुआ; अब हमको महारानीके पास जाना चाहिये । यह कहकर जयन्ती चलीगई । केवल जय विजय जलमध्यमें सूर्यके प्रतिबिम्बका दर्शन और ओंका-रका उच्चारण करने लगे ।

इधर महाराजने भोजनके पीछे अन्तःपुरमें प्रवेश किया, महारानीने महाराजके आगमन दर्शनमें अग्रसर होकर महाराजका हस्त धारण किया और उचित स्थानमें उनको बैठाकर आप भी योग्य स्थानमें बैठगयीं । एवं उपासना सम्बन्धमें दोनों नाना प्रकार के कथोपकथन करने लगे । पीछे महारानीने जय विजय और जयन्तीके सम्बन्धमें समस्त कथा आद्यन्त वर्णन की । महाराजने महारानीके मुखसे जय विजय और जयन्तीका समस्त प्रसंग सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर महारानीसे कहा—इन लोगोंको उपासनाके सम्बन्धमें एक नियमावली लिखदेना चाहिये, उसीके अनुसार कार्य करेंगे । यह कहकर महाराज महारानीसे बिदा होकर उपासनास्थानमें चलेगये, वहां पद्मासनमें बैठकर ध्यान करने लगे ।

इधर जयन्तीने महारानीके समीप उपस्थित होकर देखा तो वह कागजमें कुछ लिखती हैं इतनेमें वह महारानीका विस्तर झाड़ बुहार करनेलगी और लेख समाप्त कर महारानी जय-

न्तीसे बोलीं—जयन्ती, यह नियमावली लो इसके अनुसार तुम लोग कार्य करना। तब जयन्तीने अति आदरसे भक्तिपूर्वक वह नियमावली ले और महारानीसे बिदा मांग जय विजयके पास प्रस्थान किया।

उधर जय विजय सूर्यदर्शन कार्य समाप्त कर घरमें आ और पद्मासनमें बैठकर ध्यान करने लगे। इस समय जयन्ती आकर बाहरसे ही जय विजयको पुकारने लगी। उन दोनोंने विरक्त होकर उत्तर दिया—जयन्ती, तुमको क्या हुआ? तब जयन्ती अति आनन्दचित्तसे कुछ मुसकुराकर बोली—देखो, इस कागजमें क्या लिखा है? यह कहकर उसके जयको हस्तमें अर्पण किया। जय उसको लेकर पढ़ने लगा, विजय और जयन्ती सुनने लगे।

नियम।

बहुत प्रातःकाल शय्यासे उठनेके पहले २८ बार ॐकारका उच्चारण करना चाहिये, क्योंकि निद्रा भंगके पीछे शरीर काँपता है। कारण कि शरीरके भीतर तमोगुण सत्त्वगुणको छोड़ देता

है । इसवास्ते निद्रा भंग होनेके पीछे कुछ विलम्बमें उठजाना अत्यावश्यक है । अर्थात् जब कम्पितशरीर स्थिर होगा तब शय्याका परित्याग करना चाहिये । पीछे शौचादिक्रिया समाप्त करके मैदान अथवा समुद्रके तटपर अर्थात् जहां सूर्योदयका दर्शन होताहो वहां जाकर सूर्यदेवका दर्शन करना चाहिये । जब तक चित्त स्थिर रहेगा अर्थात् एकाग्रचित्त रहेगा तब तक सूर्यदर्शन करना और ॐकारका उच्चारण करना चाहिये । पीछे आश्रममें आकर सिद्धासनमें बैठकर प्राणायामादि क्रिया करनी चाहिये । तदनन्तर भोज्य पदार्थ संग्रह करके भोजनके पहले जलके मध्यमें सूर्यदेवके प्रतिबिम्बका दर्शन करना चाहिये।क्योंकि सूर्यका तेज नेत्रोंसे सहन नहीं होसकेगा । पीछे प्राणायामादिक साधन करके किञ्चित् चलना चाहिये, क्योंकि उदरस्थ पदार्थोंका परिपाक होजायगा । तीसरे पहर दिनमें पद्मासनमें बैठकर सूर्यात्माकी हृदयमें धारणा कर ध्यान करना चाहिये । जब तक मनमें शान्ति रहे तब तक यह कार्य करना चाहिये। सूर्यास्तके ३।४ दण्ड पहले

पश्चिम दिशामें स्थित सूर्य नारायणका अतिप्रेमसे दर्शन और ॐकारका उच्चारण करना चाहिये। जब सूर्यदेव अस्तमित होंगे तब सूर्यके उद्देश्यसे प्रणाम करके आश्रममें आकर योग सवासनादि प्राणायाम करना चाहिये, अनन्तर आहारादि करना उचित है । तदनन्तर स्वस्तिक आसनमें वैठकर जप आदि करना अर्थात् पवित्र मन्त्र ओंकारका जप प्रेमपूर्वक करना चाहिये। आराम करनेके समय वीरासनमें वैठना चाहिये । रातमें १ प्रहर विश्राम करना उचित है।

इस नियमावलीका पाठकर जय विजय और जयन्तीको अत्यानन्द हुआ। जय विजय जयन्ती मधुर स्वरसे वोलने लगे। हे जयन्ती ! तुम धन्य हो, हमलोग तुम्हारी ही कृपासे आत्मज्ञान प्राप्तकर मुक्तिलाभ करेंगे। जय, विजय, जयन्ती सदा इन्हीं नियमानुसार भजनादि क्रिया करनेलगे। इसप्रकार अविश्रान्तक्रिया करते करते १ वर्षके भीतर जगत्के मध्य ऊपर और नीचे सब पदार्थोंका दर्शन कर शान्तिलाभ हुआ। इस प्रकार उनका मनुष्यजन्म सफल होगया।

इस तरफ महाराज स्वायम्भुव मनु ब्रह्मद-दर्शन अर्थात् आनन्दमय कोश अथवा कारण शरीर इत्यादि सबके दर्शन करलेनेके पीछे अपनी राजधानी समस्त संसार एकदम भूलकर ऋषिगणोंके साथ सर्वदा रहने लगे । इसी तरह कुछ समय व्यतीत होनेपर एक दिन ऋषिगण बोले कि आपकी योगसमाधि अभी बाकी है, शीघ्र ही इधर उद्यम कीजिये । महाराजका चित्त इसबातको सुनकर कुछ चञ्चल होगया । और उसी समय ऋषियोंसे विदा होकर अपने आश्रमकी ओर आये, इधर महारानी जय विजय जयन्ती आहारयोग्य समस्त द्रव्यसंग्रह करके महाराजके आगमनकी अपेक्षा करने लगे।उसी समय महाराज आश्रममें प्राप्त होगये और महारानीको सम्बोधन करके बोले—देवि शतरूपा, हम लोगोंका जो कठिन कार्य है वही बाकी रह गया, इस समय क्या करना चाहिये? तब महारानी बोलीं—महाराज, मनुष्योंको असाध्य इस जगतमें कोई कार्य नहीं है, अत एव मनुष्यको सर्वशक्तिमान् समझना चाहिये। मनुष्य जो कार्य मनमें विचारेंगे उसको सम्पन्न कर

सकेंगे, और अन्यान्य जीव पशु, पक्षी आदि सर्व शक्तिमान् नहीं होसकते, क्यों कि उनके पास सत्त्वगुणके अंश अत्यल्प हैं, जैसे प्रदीपाग्निके सामनेकी ज्योति और उसी प्रदीपाग्निकी बहुत दूरकी ज्योतिके समान। महारानीका वाक्य सुनके महाराजका 'शुभस्य शीघ्रं' के अनुसार विशेष चञ्चल चित्त स्थिर होगया । पीछे आहारादि सम्पन्न करके महाराज, जय, विजय और जयन्तीने शुभ समयमें समाधियोग करना आरम्भ किया ।

इधर ऋषिगण और महारानी खाद्य पदार्थ संग्रह करके प्रतिदिनं महाराज आदि योगिगणको आहारार्थ देने लगे। योगिगणको कुछ कष्ट नहीं। इस प्रकार योगिगणने योगक्रिया करते करते ६ महीनेके बीचमें योगसिद्धि करली। पीछे अति शान्ति–पूर्वक कुछ दिन आश्रममें रहकर महाराज, महारानी जय विजय, जयन्ती, सप्तऋषिगण एकत्र ब्रह्मानन्द लाभ करके राजधानीमें आये।

नीचे सब पद ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

इस प्रकार उन

उपसंहार ।

शारीरिक-धर्मकी व्याख्या.

शारीरिक धर्मसे उन कर्मोंसे प्रयोजन है जो इस स्थूल शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं, जो मृत्युके पश्चात् यहीं रहकर नष्ट होजाता है। ये कर्म जन्म धारण करते ही आरम्भ होजाते हैं, जैसे दूध पीना हाथ पांव इत्यादि शरीरके विभागोंको हिलाना, मल मूत्रका त्याग करना, सोना जागना इत्यादि । थोड़े समय तक ये कर्म स्वाभाविक ही होते रहते हैं; परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य बड़ा होता जाता है सृष्टि कर्ता इन कर्मोंके करनेका बोझा मनुष्यपर डालता जाता है। वे बालक बड़े भाग्यवान् हैं जिनके माता पिता इन कर्मोंके अच्छेपनका अनुभव करके और स्वयं उनको भले प्रकार जानकरके अपने बालकोंको बचपनसे ही इन कर्मोंके करनेका स्वभाव डाल देते हैं ।

शरीरकी बनावट वा कामोंका संक्षेपसे वर्णन ।

शरीरकी बनावट वा कामोंका वर्णन तो पारलौकिक धर्ममें जावेगा, तो भी साधारण रीतिसे देखनेमें भी इस गज डेढ़ गजके पुतलेमें अद्भुत चतुराई और बनावट दिखलाई देती है। हड्डियोंका जोड़, रग और पट्ठोंकी तारबन्दी, मांस और चर्बीका लेपन, चमड़ेका ढक्कन, फेफड़ोंमें वायुका लुहारकी धौंकनीके समान बराबर चलकर लोहूको साफ करना, दिलके द्वारा लोहूका सारे शरीरमें एक रीतिसे घूमना और उसके मलका गुरदों और चमड़ेके छिद्रों अर्थात् गिलटियोंके द्वारा निकलते रहना कैसी अद्भुत लीला रची हुई है।

आहार चबानेके लिये मुखमें दांत, उसको नर्म करने और पचानेके लिये मुखमें थूक और पेटमें पित्त, आहार पहुंचते ही अपना अपना काम कैसी रीतिके अनुसार आरम्भ कर देते हैं।

मस्तिष्क अर्थात् भेजेके बचावके लिये, कि जिसके भीतर अनेक सूक्ष्म शक्तियां काम कररही

हैं, अस्थियोंकी दृढ़ डिबियां, सर्दी और गर्मी इत्यादिसे बचनेके लिये बाल, नेत्रोंके बचावके लिये पलक, उंगलियोंके वास्ते नख और इसी रीतिसे शरीरके सारे अवयवोंके बचावके लिये जैसे चाहिये ठीक वैसे ही दृढ़ सामान बने हुए हैं। शरीरमें कोई कांटा इत्यादि चुभजावे तो उसको बाहर निकालनेका उपाय, कोई न खानेयोग्य वस्तु मुखके मार्गसे चलीजावे तो वमन वा दस्तके द्वारा बाहर निकालनेका उपाय, नाकमें कोई विरुद्ध बेमेल वस्तु जाने लगे तो बालोंसे रुकावट होनी वा छींकके द्वारा तुरन्त बाहर निकालदेना, कोई घाव लगजावे तो उसको अच्छा करनेवाला मसाला लोहू पीव इत्यादि चारों ओरसे दौड़कर घावको अच्छा करनेका यत्न करना, कैसे प्रबल प्रबन्ध हैं।

ऐसे प्रबल प्रबन्ध पर भी जब शारीरिक धर्मके नियम बारबार तोड़े जाते हैं, तो शरीरमें अनेक प्रकारके रोगादिक उत्पन्न होकर उसको दुःखमें फंसाकर अन्तमें नष्ट करदेते हैं। और यदि शारीरिक धर्मोंके नियमोंको भले प्रकार

जानकर निश्चय-पूर्वक उनकी पालना की जावे तो सब शारीरिक शक्तियां प्रवल होकर और यथार्थ रीतिसे बढ़कर पूर्ण आयु और शारीरिक सुखका कारण होती हैं ।

शारीरिक वेगोंका ठीक ठीक वर्ताव ।

शारीरिक वेगोंको अनुचित रीतिपर कभी उत्पन्न न कना चाहिये । परन्तु जब वे अपने आप स्वाभाविक उत्पन्न हों वा किसी भूलके हेतु अनुचित रीतसे ही उत्पन्न हों तो उनको रोकना बहुत ही अनुचित है और शारीरिक धर्मके विरुद्ध है ।

वेगोंको रोकनेसे वाहर निकलने योग्य पदार्थ शरीरके भीतर रहजानेसे दुःख देता है, अनुचित वर्तावसे उन वेगोंके स्थान ढीले और निकम्में होजानेसे अष्ट प्रहरका दुःख लगजाता है और शरीर यथार्थ नहीं बढ़ने पाता ।

यदि किसी वेगके समय वा चालमें कुछ परिवर्तन अर्थात् अदलाबदली करनी आवश्यक वा ठीक समझी जावे तो ऐसा परिवर्तन अर्थात् अदलाबदली धीरे धीरे अच्छी होती है, बहुत

काल तक वेगोंके ठीक ठीक बर्तावसे वे मनुष्य अधीन होजाते हैं।

धार्मिक पुरुषोंके जाननेके लिये थोड़ेसे वेगों-का संक्षेप वर्णन उनके उचित और अनुचित वर्तावके साथ इस स्थानमें किया जाता है।

१ भूख—जब पेटमें आहार नहीं रहता है तब जठराग्निका वेग उत्पन्न होता है और उस समय पेटमें आहार न पहुंचानेसे शरीर शक्तिहीन होजाता है, इस कारण आहार अवश्य पहुँचाना चाहिये। भङ्ग इत्यादि मादक वस्तुओंके काममें लानेसे यह वेग अनुचित रीतिपर उत्पन्न होता है, इस हेतु इन वस्तुओंको कभी काममें न लाना चाहिये।

२ तृषा—अर्थात् प्यास—जब शरीरमें स्वाभा-विक मात्रासे तरी कम रह जाती है तो प्यासका वेग उत्पन्न होता है और जीभ सूखने लगती है। इस वेगके रोकनेसे बहुतसे रोग—पित्तका निर्बल होना इत्यादिक उत्पन्न होते, और उसके उपरान्त मृत्युका भी डर है। ऐसी वस्तुयें जो गर्म और सूखी हों, खानेसे यह वेग अनुचित प्रकारसे उत्पन्न होता है।

३ मल त्याग—आवश्यकताके समय मलको रोकनेसे उसका प्रभाव मस्तिष्क (मगज़) में जाना आरम्भ होता है और माथा भड़कना, आधासीसी, कबज़ी, बबासीर इत्यादि अगणित रोग इस वेगको रोकनेसे उत्पन्न होते हैं ।

४ मूत्र अर्थात् पेशाव—इस वेगको रोकनेसे भी कई व्याधियां—मूत्रका बंद होजाना वा जलनसे आना इत्यादि उत्पन्न होती हैं। अधिक ठण्ढी और मूत्र लानेवाली वस्तुओंके सेवनसे यह वेग अनुचित रीतपर उत्पन्न होता है ।

५ अपान वायु—जितना चाहिये उससे अधिक आहार करलेने वा वादी चीजोंके खानेसे यह वेग बार बार उत्पन्न होता है। उचित है कि एकान्त स्थानमें जाकर इस वेगको निकाल दिया जावे; लज्जा इत्यादि कारणोंसे बहुधा बड़े बुद्धिमान् भी इस वेगको रोककर अपनी आरोग्यताको बिगाड़ देतेहैं ।

६ वमन करना—जब कोई ऐसी वस्तु जो मनुष्यके खानेकी नहीं है, पेटमें चली जाती है तो मेदा अर्थात् आँतें उसको नहीं सह सकतीं

और वमनके द्वारा निकालना चाहती हैं। घृणा लानेवाली वस्तुओंके देखने और दुर्गन्धके सूँघनेसे भी जी मिचलाकर बमन आती हुई ज्ञात होती है; ऐसे अवसर पर लोन मिलाये हुए गरम पानीसे वा गलेमें उंगली डालकर अच्छी तरह शुद्धि करलेनी चाहिये। इस वेगके रोकनेसे शीत, पित्त आर्थात् शरीर पर हाफड़ और कुष्ठ इत्यादि रोगोंका होजाना सम्भव है।

७ छींक—जब अधिक सर्दी वा सर्दी और गर्मीके एकाएकी बदलनेका प्रभाव पड़नेसे वा तीक्ष्ण वस्तुएँ जैसे मिर्च तम्बाकू इत्यादिकी धांस हवाके साथ नाकमें जातेही एक दम छींक आती है, इसको रोकनेसे सिर भड़कना, सिरका भारी होजाना, कनपटी और भंवारोंकी पीड़ा आदि कई व्याधियां उत्पन्न होजाती हैं। विना कारण बार बार बत्ती नाकमें डालकर वा हुलास सूंघकर छींकें लेना इस वेगका अनुचित वर्ताव है।

८ डकार—बहुधा जब पेट भर जाता है खानेके पश्चात् कभी २ डकार आती है, उसको धीरेसे निकाल देना चाहिये; इसके रोकनेसे

पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, पेट फूल जाता है, भोजनके समय या पीछे मुंह खोलकर जोर जोरसे डकार लेना बहुत ही अनुचित है ।

९ उवासी–ऊंघ, आलस्य और थकावटके कारणसे उवासी आती है, विना शब्द करने और यदि बहुतसे मनुष्य हों तो मुंह फेरकर और हाथ वा रुमाल इत्यादि कोई कपड़ा मुंहपर रखकर इस वेगको निकालना चाहिये । इस वेगको रोकनेसे सारे शरीर और विशेषकरके आखोंमें पीड़ा होनेका डर है ।

१० खाँसी–जब फ़ेफड़े आदिमें कोई दुःख होता है जैसे फ़ेकड़ेमें कफ़की विशेष उत्पत्ति होती है, तो खांसीके द्वारा वह उस दुःखको दूर करना चाहता है । तम्बाकू वा चरसके अधिक पीनेसे, या खटाईके अति अभ्यास, चिकनाईपर पानी पीनेसे वा अजीर्ण इत्यादि से यह वेग उत्पन्न होता है, आर इसके बढ़जानेसे क्षय इत्यादि प्राणघातक रोगादिक उत्पन्न होनेका भय है ।

११ नींद–शरीर जब थक जाता है तो सुख चाहता है, विशेष करके वचपनमें आठसे दस

घंटे तक, युवा अवस्थामें छः से बारह घंटे तक और बुढ़ापेमें जितनी नींद आजावे उतनी ही लेना चाहिये, और रहनगतके हिसाबसे न्यूनाधिक भी योग्य है। जैसे अति परिश्रम उठावे वा किंचित् अधिक सोवे; जहां तक सहसके, सोनेके समय मुंहको वस्त्रसे नहीं ढकना चाहिये। जिससे अच्छी हवा सांस लेसके। जब मल वा मूत्रकी शंका हो, वा भूख प्यास लग रही हो, वा आहार पचा नहो, उस समय सोना शरीरकी आरोग्यताको बिगाड़ता है। सोनेके पश्चात् मुँहके थूकको जलसे कुल्हा करके अच्छी तरह शुद्ध करलेना उचित है। खेल तमाशा, परीक्षाकी सामग्री- और घरमें किसी रोगीकी टहल करनेके कारण इस वेगको रोकनेसे मस्तकमें पीड़ा, शरीरका भारी होना, शरीरमें आलस्यका आना इत्यादि अनेक रोग लग जाते हैं।

१२ रोना वा आँसू निकालना—जब मनुष्यके मनपर एकाएक ही आनन्द वा दुःख व्यापता है तो आपसे आप रोना आता है और आसूं टपकने लगते हैं और कभी कोमल हृदयका पुरुष अपने

किये हुए दुष्ट कर्मोंसे बचनेका सच्चे मनसे प्रण करता है, उस समय आखोंसे आसूं निकलने लगते हैं। जीवके द्वारा धार्मिक पुरुषोंके विचारके अनुसार उसके पिछले पापोंका वल न्यून हो जाता है। जब किसी कारणसे सच्चा रोना आवे तो उसके वेगको कदापि नहीं रोकना चाहिये। तनिक तनिकसी बात पर रोनेका स्वभाव डालना वा घरमें किसी शोकके समय लोगोंको दिखला वटकी रीतिपर रोना इस वेगका अनुचित वरताव है। इस वेगको रोकनेसे मस्तक और कनपटीमें पीड़ा आंखोंकी पीड़ा और कभी कभी दस्तोंकी व्याधि होजाती है, जिसका कारण यह है कि शोककी चोटका प्रभाव जो नेत्रोंपर होना था वह आंतोंपर होता है।

१३ काम अर्थात् वीर्यका वेग—इस वेगका अधिक सम्बन्ध मनके साथ है और इसी कारणसे इसको केवल शारीरिक वेग नहीं समझना चाहिये, जहां तक होसके बुरे विचारोंको रोकना चाहिये। इसका यथार्थ वर्णन मानसिक धर्मके विभाग ब्रह्मचर्य और गृहस्थ धर्मके विभाग सन्ता-

नोत्पत्तिमें किया जावेगा; वीर्य संपूर्ण शरीरका राजा है और सर्व शरीरमें ऐसा फैला हुआ है जैसे दूधमें मक्खन, गन्नेमें मिठास, तिलोंमें तेल, मस्तिष्क (मग़ज़) की ताकत, शारीरिक बल, दृष्टिकी तीक्ष्णता और मुखकी कन्ति वीर्याधीन ही है, इसीके द्वारा विशेष विचारशक्ति और परिश्रम उठानेकी शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसी अच्छी उपयोगी वस्तुको कोई लुटाना नहीं चहता और उत्पात्ति उसकी खर्च करने ही पर है। इस हेतु ईश्वरने इसके निकासमें भी एक निराला स्वाद रख दिया है। धर्मपर चलनेवालोंको चाहिये कि सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकताके समय तो व्यय करें और केवल स्वादके वश होकर ऐसी असूल्य वस्तुको न लुटावें, क्योंकि ऐसा करना इस वेगका अनुचित कर्म होगा। जिस समय कामके कोपसे शरीरमें वीर्यका वेग उत्पन्न होता है तो वह सब शरीरके अवयवोंसे निकलना आरम्भ होजाता है और उस समय मनको मुख्य आनन्द प्राप्त होता है।

मस्तकके पिछले विभागमें एक मुख्य स्थान है जहांसे कामका वेग उत्पन्न होता है। जब कपालके उस मुख्य स्थानमें हल चल मचजाती है तो उसी समय लोहू इत्यादि और सब अवयवोंमें भी कामका वेग उत्पन्न होजाता है और वीर्यका प्रभाव पहिले उसी स्थानसे चल-कर पीठकी वीर्यबाहिनी नाड़ियोंमें होता हुआ और उनके रसोंको साथ लेता हुआ अण्डकोषमें आता है, और वहां श्वेत रंगका द्रव्य वनकर गर्भाधानकी शक्ति उत्पन्न करनेवाला होजाता है। इससे यह बात निकलती है कि वीर्यके निकलनेके तीन द्वार हैं। उनमेंसे पहिला द्वार मस्तकका पिछला भाग है; इस पहिले द्वारमें शुभ विचा-रोंका ताला लगना बहुत ही आवश्यक है।

निर्लज्जताकी वातें वा कहानियोंके पढ़ने सुननेसे वा स्त्रीको पुरुष और पुरुषको स्त्रीके मुख्य अवयवोंके दृष्टिगोचर होनेसे कामका वेग अनुचित रीतिसे उत्पन्न होता है।

ऐसी अयोग्य रीतियोंसे विशेष करके वाल्य अवस्थामें इस वेगको कदापि उत्पन्न न

होने देना चाहिये, जिसका व्यवहारोचित उपाय केवल यह है कि रात दिन सत्संगमें रहना चाहिये, सारे संसारके धार्मिक पुरुषोंने सत्संगकी बहुत ही महिमा वर्णन की है और धर्म–सम्बन्धी साधनोंमें उसको बहुत बड़ा साधन माना है।

यदि बचपनमें आदिसे ही बच्चोंका पूरा प्रयत्न रक्खा जावे तो जब तक प्रयत्न रहैगा कामका वेग प्रगट न होगा, न्यूनसे न्यून लड़कोंकी २०वर्षकी अवस्था तक और लड़कियोंकी १५ वर्षकी अवस्था तक संभाल रखनी आवश्यकहै। इस संभाल से उनका वीर्य अच्छी तरहसे पुष्ट होकर शरीरकी आरोग्यता आदि सुख देनेका कारण होगा और उनकी सन्तति भी पुष्ट और नीरोग होगी, यदि ऐसा होना किसी रीतिसे भी सम्भव न हो तो लड़कोंके वीर्यकी १६ वर्ष तक और लड़कियोंकी १२ वर्ष तक अवश्य ही रक्षा रखनी चाहिये।

योगाभ्यासकी व्याख्या।

योगाभ्यास उन साधनोंको कहते हैं, जिनके द्वारा मनकी वृत्तियां रुकते रुकते और संकल्प विकल्प कम होते होते मन अत्यन्त

शुद्ध और वलवान् होजाता है। उत्तम उत्तम और नवीन नवीन विचारांश उत्पन्न होने लगते हैं। वहुतसी मनकी शक्तियां, जो वहुधा गुप्त रहती हैं धीरे धीरे प्रकट होनी आरम्भ होजाती हैं; और चाहे जितने ही दुःख व क्लेश पड़ें वे सब सहन होसकते हैं और उनसे निवृत्तिका साधारण उपाय ध्यानमें आसकता है; शारीरिक आरोग्यता उत्तम होनी और दीर्घ आयु होनेका भी यह एक वड़ा साधन है।

योगाभ्यासका आनन्द।

थोड़े काल तक अभ्यास करनेसे मनको एक ऐसा आनन्द प्राप्त होता है कि जिसकी उपमा किसी सांसारिक आनन्दसे नहीं दी जासकती। और जिह्वा वा लेखनीको सामर्थ्य नहीं है कि वह वर्णन कर सके, परन्तु इतना कहा जासकता है, कि जैसे कोई पथिक धूपकी गर्मी और जलकी तृषासे व्याकुल होकर किसी मरुस्थलमें घवराकर घूम रहा हो, उस अवस्थामें छायादार वृक्ष और शीतल जल मिलनेसे उसको जैसी तृप्ति मिलनी सम्भव है, उससे भी अधिक शान्ति योगके साधनोंसे होती है, और यही शान्ति अभ्यासीको भविष्यत

कालमें उन्नति करते रहनेके लिये उत्साह दिलाने वाली होती है।

योगाभ्यासका अधिकारी।

प्रत्येक देश और प्रत्येक मत और संप्रदायोंके संपूर्ण मनुष्य, स्त्री हों वा पुरुष-योगाभ्यासके अधिकारी हैं। इन साधनोंमें न तो द्रव्यव्यय करनेकी आवश्यकता है और न घर बार त्याग करनेकी, किन्तु जैसा जैसा योगाभ्यासमें रस आता जाता है और उत्तमोत्तम सुख प्राप्त होता जाता हैं वैसाही वैसा तुच्छ सुखोंकी इच्छायें स्वयं छूटती जाती हैं।

योगाभ्यासका समय।

यद्यपि योगाभ्यास आरम्भ करने और उससे पूर्ण लाभ उठानेके लिये उत्तम समय तो १५ वर्षसे ४५ वर्षकी अवस्था तक है, तो भी जिस मनुष्यने बचपनमें ब्रह्मचर्य्य सेवन किया हो और युवावस्थामें विषय भोगमें अत्यन्त लम्पट न रहा हो, वा पूरी इच्छा रखता हो वह ४५ वर्षके स्थानमें सत्तर वर्षकी अवस्था तक भी योग साधन आरम्भ करके पूरा लाभ उठा सकता है।

योगाभ्यासके साधन ।

वे योग साधन, जिनकी महिमा ऊपर कही गई है, नीचे लिखे अनुसार हैं। मनकी वृत्तियोंको जो नेत्र, कर्ण इत्यादि इन्द्रियोंके द्वारा नाना प्रकारके बाह्यपदार्थोंमें फैली हुई हैं, सब पदार्थोंसे हटाकर अन्तरिक प्रकाश देखने और अनाहत शब्द सुननेमें लगायाजावे। ये साधन बाह्य और आन्तरिक भेदसे दो प्रकारके हैं और अवश्य आरोग्यता, चाल चलन रहन गति बुद्धि और विद्याकी अपेक्षा, इनकी असंख्य अवस्थायें हैं, जिनका संक्षेपसे वर्णन करना उचित जान पड़ता है।

अधिकारके अनुसार साधन करना ।

प्रत्येक पुरुष वा स्त्रीको अपने अधिकार अर्थात् योग्यताके अनुसार साधन आरम्भ करनेसे शीघ्र और उत्तम रीतिसे सफलता होनी सम्भव है। इस बातका अनुमान कि कौन मनुष्य किस अवस्थाके योग साधन करनेका अधिकारी है, वह स्वयं सचाईके साथ अपने शुद्ध अन्तःकरणसे स्थापित करे; और यदि उसको शङ्का रहै तो किसी दूसरे सच्चे निरपेक्ष सत्यवक्ता और

योग्य पुरुषसे सम्मति लेकर अनुमान करे, वा सावधानी के हेतु लघुपदसे ही आरम्भ करदे ।

योगाभ्यासके नियम ।

इस हेतुसे कि मनुष्यके सम्पूर्ण विचार और कर्मोंका प्रतिबिम्ब मनपर पड़कर, भले वा बुरे प्रभाव प्रतिसमय उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिये अभ्यासीको सदैव सत्संगमें रहना, और विचारपूर्वक अपने समयका विभाग करके और उसमें उचित अदला बदली करते हुए, सम्पूर्ण कामोंको विधिपूर्वक और नियत समय पर करनेका उद्योग करते रहना चाहिये ।

प्रत्येक कामको नियत समयपर ही करनेसे प्रथम तो वह काम सावधानता और उत्तमतासे किया जाता है और दूसरे यह लाभभी होता है कि मनमें किसी मुख्य समयमें सिवाय उस कामके विचारके रहनेसे जो उस समयके लिये नियत किया गया है, दूसरे विचार मनमें नहीं आने पाते, और चित्तमें एक समयमें एकही विचारके रहने और दूसरे विचारके न आनेसे योग साधनमें बहुत सहायता मिलती

है । यद्यपि भोजनका भी, विचार और कर्मपर बहुत प्रभाव पड़ता है, तो भी अभ्यासीको आरम्भ के समय भोजनकी अदला बदलीमें अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये, जैसे २ अभ्यासकी शक्ति बढ़ती जावेगी वैसे ही वैसे स्वयं सात्विक भोजनकी ओर मनकी रुचि होती जावेगी; केवल इतना विचार रहे कि दुष्पच, कच्चा, सड़ाहुआ, दुर्गन्धवाला, कटु वा, खट्टा पदार्थ काममें न लाया जावे ।

अभ्यासका समय और बैठककी रीति ।

जिस मनुष्यकी अवस्था पन्द्रह वर्षकी हो वह प्रतिदिन नियत समय पर (प्रातःकाल नित्य नियमका समय अत्युत्तम है) शुद्ध, एकान्त और रमणीय स्थानमें सिद्धासनसे बैठे । सिद्धासनसे बैठनेकी यह रीति है कि बाईं टांगको मोड़कर उसकी एड़ीको अण्डकोषके नीचेकी सीवन और दाहिनी टांगको माडकर उसकी एड़ीको अण्डकोषके ऊपरकी सींवन पर रखकर, पालथी मारकर बैठे; और ऊपरके सारे शरीरको तना हुआ रक्खे, इस आसनका चित्र पुस्तकके

प्रारम्भमें दिया गया है। इस आसनके अभ्याससे शरीरकी नीरोगता भी बढ़ती है।

यदि इस आसनमें किसी कारणसे क्लेश हो, तो जिस प्रकार सुख हो उसी भांति बैठना चाहिये; परन्तु प्रति अवस्थामें अवश्य करके गरदनको तनाहुआ रखना अधिक लाभ-दायक है।

सिद्धासनसे बैठकर, मनको शान्त करनेका उद्योग करें। यदि मनमें क्रोध वा शोक इत्यादिसे उद्वेग हो और मन शान्त न होसके, तो जब तक उद्वेग रहे साधनका आरम्भ न किया जावे। मनको शान्त करनेके पश्चात् कमसे कम पांच प्राणायाम करे। प्राणायामकी विधि नीचे लिखी जाती है।

प्राणायामकी रीति।

धीरे धीरे श्वासको उस स्थानसे जहां नाकके दोनों छिद्र एक होते हैं ऊपर खींचकर और थोड़े काल तक वहां ही रोककर, फिर उसी प्रकार धीरे धीरे बाहर निकालना चाहिये, और कुछ काल बाहर रोककर फिर ऊपर खींचना

चाहिये । श्वासको ऊपर खींचनेमें, रोकनेमें और बाहर निकालनेमें इतनी देर न लगानी चाहिये और न इतना बल करना चाहिये कि जिसमें थकावट वा क्लेश जान पड़े ।

ध्यानका जमाना ।

प्राणायामके पीछे किसी स्थूल पदार्थ पर जिसको अभ्यासी, मनके द्वारा आदर योग्य वा प्रिय जानता हो—जैसे चित्र मूर्ति इत्यादि पर पांच मिनट तक ध्यान जमावे; वा दर्पण सामने रखकर पांच मिनट तक उसपर दृष्टि जमावे । अर्थात् दोनों नेत्रोंकी पुतलियोंको देखता रहे । यदि दर्पणकी चमक अप्रिय हो तो हरे रंगका पत्र एकफुट व्यासका, गोलाकार काटकर और उसके बीचों बीचमें अंगुष्ठके नखके परिमाणका एक बिन्दु स्याहीसे बनाकर उसपर ध्यान जमावे । इसके पीछे पांच मिनट तक किसी उत्तम भजन गाने वा धर्मकी पुस्तकें पढ़ने वा धीमा सुरीला बाजा सुननेमें कानोंको लगावे । इन दोनों साधनोंको एक अठवाड़ा करनेके पीछे एक एक मिनट बढ़ाना चाहिये । जब प्रत्येक

साधनका समय आध घन्टा होजावे और इतने
समय तक आंखोंके द्वारा ध्यान, मूर्ति, चित्र
दर्पण वा पत्र पर और कानोंके द्वारा भजन, धर्म
पुस्तक पढ़ने वा सुरीले बाजेका शब्द सुननेमें
भले प्रकार जमजावे तब अभ्यासीको एक
विचित्र आनन्द आने लगेगा। उस समय बाह्य
साधन आंख और कानको जैसे कि एक एक
मिनट बढ़ाया गया था उसी प्रकार एक एक
मिनट घटाते जाना चाहिये। और पांच मिनट
तक जिस मूर्ति, चित्र वा पत्र पर ध्यानको ज-
माया हो उसीको आंखोंको बंद करके उस स्थान-
पर जहां नेत्रोंकी दोनों भाग एक होती है अर्थात्
भौंहोंके बीचमें ध्यान करना चाहिये। इसी प्रका-
रसे जिस बाजेका शब्द कानोंसे सुना था, उसी
शब्दको कान बंद करके अन्तरमें सुननेका उद्यम
करे। जब ये साधन एक एक मिनट बढ़ते बढ़ते
आधे घंटे तक पहुंच जावें तब इनसे पहिलेसे
अधिक आनन्द होगा। जब आधे घंटे तक ये
साधन भी होने लगें तब इनको भी एक एक
मिनट कम करते हुए और पांच मिनट तक

आँख मूद करके दोनों भौंवोंके वीचमें आन्तरिक प्रकाशको देखना चाहिये। और इसी प्रकार कानों-को दोनों अंगुष्ठोंसे बन्द करके पांच मिनट तक आन्तरिक शब्द सुनना चाहिये । आन्तरिक साधनोंको भी बाहरी साधनोंके अनुसार एक एक मिनट प्रत्येक अठवाड़ेमें वढ़ाना चाहिये । जब साधन भी बढ़ते बढ़ते आधे घंटे तक पहुंच जावेंगे तो पहले आनन्दसे उत्तम आनन्द और कई अनोखी बातें जान पड़ेंगी ।

प्रकट हो कि आन्तरिक साधनोंमें ध्यानको भृकुटी इत्यादिके वीचोंबीच जमाना और वढ़ाते जाना चाहिये। प्रथम तो ध्यान बीचसे किसी ओर को न टले; कदाचित् टलेभी तो दाईं ओरको, बांई ओरसे अभ्यासियोंने उत्तम माना है । इसके पीछे इन आन्तरिक साधनोंको भी एक एक मिनट कम करना आरम्भ किया जावे, और पांच पांच मिनट नेत्र मूँदे आन्तरिकप्रकाशका ध्यान और आन्तरिक शब्दका सुनना विना कान बन्द किये आरम्भ करना चाहिये; और इस अभ्यासको प्रत्येक अठवाड़ेमें एक एक मिनट

बढ़ाना चाहिये। यही योग-परिभाषामें सवि-कल्प समाधि और सम्प्रज्ञात योगका अन्तिम भाग कहा गया है। इस पद पर पहुँचकर प्राणायामके साधनका त्याग कर देना चाहिये। जिस स्त्री वा पुरुषकी अवस्था ४० वर्षसे, अधिक हो, नेत्र वा कर्णके रोग नहों, उसको बाहरी साधन प्राणायाम और नेत्र और कर्णके नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जिसकी अवस्था २० और ४० वर्षके बीचमें हो और बुद्धि तीव्र और विद्याभ्यास उत्तम हो, वह भी बाहरी साधन न करे। पहिली अवस्था वालों 'अर्थात्' ४० वर्षसे अधिक आयु वा जिनकी आरोग्यता अच्छी नहो उनको दर्पण वा पत्र द्वारा बाहरी साधनोंके बदले ओं शब्द वा और कोई शब्द जिसमें उनकी रुचि हो, इतने समय तक अर्थात् जितना समय प्राणायाम, ध्यान और भजन में लगता, सुखसे जपना चाहिये; फिर मुखके जपको एक एक मिनट कम करते हुए चुपचाप अंगुलियों पर जप करना चाहिये। फिर इस जपको भी एक एक मिनट कम करते हुए नेत्र और कर्णके आन्तरिक

साधनोंको आरम्भ करना चाहिये। दूसरी अवस्था वाले अर्थात् जिनकी बुद्धि तीव्र और विद्या उत्तम हो वे बाहरी साधन प्राणायाम, ध्यान वा भजनके बदले, धर्म-पुस्तकके सुनने सुनाने और विचार नेमें कमसे कम आध घंटा नित्य लगावें; और प्रतिदिन एक एक मिनट बढ़ाते हुए जब दो घंटों तक अभ्यास बढ़ जावे, तब पुस्तकके विचारका एक एक मिनट कम करना आरम्भ करें और नेत्र तथा कर्णके आन्तरिक साधनको पांच पांच मिनट तक करना आरम्भ करके, आधे घंटे तक पहुंचावें; और फिर इस साधनको एक एक मिनट घटाते हुए विना नेत्र और कर्ण मूंदे अन्तरमें प्रकाशको देखने और शब्दके सुननेका अभ्यास करें। जिन मनुष्योंका चाल चलन उत्तम न हो और अवस्था ३० वर्षसे न्यून और आरोग्यता उत्तम हो, वे बाहरी साधन प्राणायाम, आंख और कानके साधन और शब्दका जप और धर्म-पुस्तकोंका सुनना सुनाना और इनके अतिरिक्त व्यायाम मुख्य करके बाहु और छातीके साधन किया करें; और सात्विक

भोजनके अतिरिक्त दूसरा भोजन न करें। संपूर्ण साधनोंके लिये जो समय और नियम रक्खा गया है उसी रीतिसे करें, व्यायाममें न्यूनसे न्यून आधा घन्टा और लगाया करें; जैसे जैसे उनका चाल चलन उत्तम होता जावे और इच्छायें कम होती जावें वैसे वैसे बाहरी साधनों और व्यायामको कम करते जावें और आन्तरिक साधनोंको आरम्भ करते जावें। साधु इत्यादि ऐसे पुरुष, जिनका समय किसी मुख्य व्यापारके काममें नहीं जाता है उनको अपने अधिकारके अनुसार साधन कमसे कम दो घंटे प्रति दिन करना चाहिये; और कम बोलना कम खाना और कम सोनेका स्वभाव डालते हुए कर्म और विचारोंको उत्तम बनानेका उद्योग करते रहना चाहिये। जिस किसीको अधिक रुचि हो उसको चाहिये कि इन सब नाधनोंके अतिरिक्त, निद्रा आनेके समय और जागते और सोते रहनेके बीचके समयमें जागते रहनेका उद्योग करके ओं इत्यादिका जप करे, इस साध-नसे बहुत लाभ पहुँचेगा। निर्बल वा वृद्ध मनुष्य

इस साधनको न करें। आन्तरिक प्रकाशके ध्यान करनेवालों और आन्तरिक शब्दके सुनने वालोंको कुछ काल तक छोटे छोटे परमाणु और फिर रक्त पीले नीले इत्यादि सुन्दर रंग बदलतेहुए दीख पड़ेंगे, और इसी प्रकार कानोंके साधनमें पहिले सांई सांईका शब्द सुनाई देगा। फिर झींगरके शब्दके तुल्य रसीली ध्वनि सुनाई पड़ेगी; यह पहिला पद है—इस पदमें मन एकाग्र होना आरम्भ होताहै।

चित्त वा ध्यानमें मुख्य चिह्न:उत्पन्न होने।

कुछ कालके पीछे; जिसका समय नियत नहीं हो सका, क्योंकि यह समय अभ्यासीके अवकाश, रुचि, तीव्रबुद्धि और सच्चे विश्वासके अधीन है; चमकते हुए तारोंकासा प्रकाश दिखलाई देना आरम्भ होगा और नगारेकासा प्रकाश दिखलाई देना आरम्भ होगा और नगारेका शब्द सुनाई देगा। यह दूसरा पद है। इस पदमें सत्य ग्रहण करनेकी शक्ति उत्पन्न होकर मनुष्य ऐसा ही चाहने लगेगा; और निरर्थक बातोंसे चित्त हटने लगेगा। इस पदमें मन इतना शुद्ध

होजाता है कि अशुद्ध विचार उत्पन्न होने स्वयं वन्द होजाते हैं, परन्तु मनकी कोमलताके हेतु सत्सङ्ग और कुसङ्गका बहुत तीव्र प्रभाव होता है। इस कारण बहुत सावधानीके साथ कुसङ्गका त्याग उचित है । इसके पीछे चन्द्रमाकेसे प्रकाश वाले मण्डल और घंटेकासा शब्द जानपड़ेगा, यह तीसरी अवस्था है। इस अवस्थामें ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त होकर सत्य असत्यका विवेक करने और सत्यग्रहण करनेकी शक्ति उत्पन्न होजावेगी, जिसकी प्राप्ति होने पर अभ्यासी निर्भय और निष्पक्ष होजाता है और जिस विषयको विचारता है उसको यथायोग्य जानलेता है, और जिस कार्यका आरम्भ करता है उसको शीघ्र और उत्तम रीतिसे पूरा कर देता है। इस अवस्थामें धीरे धीरे सांसारिक कामोंमें ममता न्यून होती जाती है । इसके पश्चात् एक प्रकारका हलका और धुंधलासा फैला हुआ श्वेत रंगका प्रकाश दिखलाई देगा; और मधुर मधुर बांसुरीकीसी ध्वनि सुनाई देगी—यह चौथी अवस्था है । इस अवस्थामें बहुतसे अभ्यासियोंको महात्माओंके दर्शन होकर

उनसे प्रेरणा भी होती है और धर्मकी सत्यता ज्ञात होजाती है, जिसके कारण इस अवस्थाके मनुष्योंमें मतमतान्तरोंके भेद कभी नहीं रहते, किन्तु उनके सत्संग और उत्तम विचारोंका जितने मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है, वे भी सत्य धर्मको समझकर ऊपरी बातोंमें झगड़े नहीं करते। जैसे जैसे श्वेत प्रकाश और बांसुरीकी ध्वनि शुद्ध और उच्च पदकी होती जाती है वैसे ही वैसे उच्च पदका आनन्द और शान्तिका अनुभव और प्राप्ति होती जाती है। साथ ही सिद्धियां अर्थात् अद्भुत शक्तियां भी प्रगट होती जाती हैं, जिन पर अभ्यासीको कदापि ध्यान नहीं देना चाहिये, क्यों कि इन पर ध्यान देनेसे मनमें विक्षेप होता है और उन्नतिमें अवरोध होजाता है।

जब सिद्धियोंमें कुछ भी लोभ नहीं रहेगा और अभ्यास विना किसी विघ्नके होता रहेगा तब सब सुखोंको देनेवाली निर्विकल्प समाधि प्राप्त होगी। इस समाधिको अभ्यासी चाहे तो धीरे धीरे दिनों, सप्ताहों, महीनों और वर्षों तक बढ़ा सकता है, इन साधनोंसे अन्तःकरण शुद्ध होकर दुष्ट संस्कार भस्म होजाते हैं।

प्रश्न—यद्यपि आपने धर्मके संपूर्ण अंगोंका एक अपूर्व ढंग और नई रीतिसे वर्णन किया है तो भी बुद्धि द्वारा वे सब सत्य जान पड़ते हैं, परन्तु योगाभ्यासकी विद्याके निरन्तर अभाव होनेसे और बुद्धिके द्वारा उनका अनुमान न करके हेतु आवश्यक है कि आप किसी प्राचीन प्रसिद्ध योगीके वचनोंका प्रमाण देवें ।

उत्तर—प्रत्येक देश और जातिमें और प्रत्येक मतमतान्तरमें असंख्य मनुष्योंका मुख्य करके उनके देहान्तके पश्चात् अनेक प्रकारकी शक्तियों-वाला होना वर्णन किया जाता है—अतएव उन संपूर्णका प्रमाण दिया जाना कैसे सम्भव है ?

प्रश्न—आपने अनेक अवसरों पर भरतखण्डके ऋषियोंका प्रमाण दिया है और इस देशमें पतञ्जलि मुनि प्रसिद्ध योगी हुए हैं, जिन्होंने योग-शास्त्र रचा है उनका प्रमाण देना उचित है ।

उत्तर—पतञ्जलि मुनिने संस्कृत वाणीमें, जो उनके समयमें, सर्वत्र प्रचालित थी, योगशास्त्र रचा है; वह बोली अब बहुत प्राचीन होगई है,

और बोली भी नहीं जाती है, केवल शब्दार्थ पर वादानुवाद वालोंने कभी कभी अपनी बातको सिद्ध करनेके अर्थ एक एक शब्दके अनेक और एक दूसरेसे विरुद्ध अर्थ किये हैं—जैसा आत्माका अर्थ किसी स्थानमें चैतन्य शक्तिका लिया गया है और किसी स्थानमें जड़शक्तिका भी लिया गया है, इस कारण शब्द प्रमाणके स्थानमें सारांश वर्णन करना अति लाभदायक है, जिसको वर्णन करनेसे पहिले यह बतलाना आवश्यक है कि पतञ्जलि मुनिने योगशास्त्रके लिखनेसे पहिले योगाभ्यासके साधन करके उस विद्याको प्रकट किया था; और वे साधन यही साधारण साधन हैं जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त ऊपर लिखा गया है। वरन पतञ्जलि मुनिने अपने समयकी विद्या और धर्मभावका अनुमान करके उस समयके अधिकारियोंके लिये स्पष्ट रीतिसे लिखा है और महर्षि व्यासजीने उनके सूत्रोंकी टीका करके उनको और भी प्रसिद्ध और लाभदायक बना दिया है।

पतञ्जलि सूत्रसार ।

अर्थात्

पतञ्जलिजीके योगशास्त्रका सारांश ।

योगशास्त्रके चार विभाग हैं:–

१ समाधि पाद–जिसमें अनेक प्रकारकी समाधियोंका वर्णन है और उसमें ५० सूत्र हैं ।

२ साधन पाद–जिसमें अभ्यासकी सरल रीतियां ५८ सूत्रोंमें लिखी हैं ।

३ विभूति पाद–जिसमें सिद्धियों अर्थात् अनुपम शक्तियोंके प्राप्त होनेका वर्णन ५२ सूत्रोंमें लिखा है ।

४ कैवल्य पाद–जिसमें मोक्षका वर्णन ३४ सूत्रोंमें लिखा है । योगसे प्रयोजन चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेका है। अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंको दुष्ट संस्कार और दुष्ट कर्मोंसे हटाकर शुभ संस्कार और शुभ कर्मोंमें स्थिर करने और उनके पश्चात् संकल्पोंसे रहित होने और परमात्माके समीप पहुँचनेको योग कहते हैं।

चित्तकी संपूर्ण वृत्तियोंको पांच विभागोंमें बाँटकर पतञ्जलिजी कहते हैं कि संपूर्ण क्लेश जो ९ प्रकारके हैं उन वृत्तियोंको रोकनेसे दूर होजाते हैं।

धृतअलिजीने जैसे कि प्रत्येक ग्रन्थकारकी रीति है—सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये उपदेश किया है ।

प्रथम उत्तम अधिकारी ।

उत्तम अधिकारी उसको समझना चाहिये, जिसके संस्कार और कर्म दोनों उत्तम हों, उसको अभ्यासी महात्माओंके समीप जाकर वितर्क अर्थात् वाद विवाद करना चाहिये; यह प्रथम समाधि है । फिर एकान्तमें बैठकर वह विवाद-सम्बन्धी विचार करना चाहिये; यह दूसरी समाधि है । जब विचारमें आनन्द प्राप्त होने लगे, तो तीसरी समाधि समझना चाहिये । जब सात्त्विक बुद्धिके द्वारा आनन्दके मूल आत्मा तक पहुंच होवे, उसको चौथी समाधि कहा है । ये चारों सविकल्प समाधि कही गई हैं; और चारोंका नाम संप्रज्ञात योग रक्खा है, क्यों कि ये समाधियां इन्द्रियों मन और बुद्धिके द्वारा प्राप्त होती हैं । इसके पीछे निर्विकल्प समाधियोंके नियम और आनन्दका वर्णन है, जिनका नाम असंप्रज्ञात योग रक्खा है ।

दूसरा मध्यम अधिकारी।

मध्यम अधिकारी उसको समझना चाहिये जिसके संस्कार दुष्ट हों—परन्तु कर्म श्रेष्ठ हों। उसको प्रथम संस्कार उत्तम करने चाहिये, जिनके उपाय निचे लिखे जाते हैं।

१ निष्काम कर्म्मोंका करना—अर्थात् अपनी इच्छायें और स्वार्थको त्यागकर परोपकारके काम करना वा परमात्माकी स्तुति, प्रार्थना और उपासनामें लगा रहना।

२ तप—अलङ्कार रूपी कथामें तपकी व्याख्या इस रीतिसे वर्णन की है कि विश्वको एक मार्ग समझो, जिसके उत्तरमें अर्थात् ऊंची ओर स्वर्ग है, दक्षिण अर्थात् नीची ओर नरक है। मनुष्यका शरीर एक रथ समझो, जिसमें इन्द्रियांरूपी अश्व जुते हुए हैं, मनरूपी सारथी अर्थात् कोचवान है। आत्मारूपी राजा उसके भीतर विराजमान है और बुद्धिरूपी मन्त्री उसकी आज्ञाओंको मन तक पहुंचाता है, मार्गके दोनों ओर भांति भांतिके मनोहर पदार्थ दिखाई देते हैं और भयानक वन और कंन्दरायें भी हैं। मन उनको देखनेमें बार-

म्बार लगजाता है और अश्वोंकी पूर्ण सावधानी रखके चलानेके बदले, उनकी लगाम ढीली छोड़देता है; और रथकी खड़खड़ाहटमें बुद्धिके कहनेको नाही सुनता है । घोड़े भागने लगते हैं और कुमार्ग चलके रथके विभागोंको बिगाड़देते हैं । तपसे यह प्रयोजन है कि घोड़ों और सारथीको यथायोग्य नियममें रखकर आवश्यकताके अनुसार कभी शीघ्र और कभी धीरे धीरे चलाया जावे; और रथके संपूर्ण अंगोंको देखा जावे, जब कोई विभाग किञ्चित् भी बिगड़ा हुआ दीखे, उसी समय उसको सुधारा जावे और मार्गमें चाहे जैसी सुन्दर वस्तु दृष्टि-गोचर हों, उनपर ध्यान न दिया जावे; और चाहै जैसी कठिनाइयां हों, उनको धीरतासे सहन किया जावे। बारम्बार किसी एक शब्द ओं आ-दिका जप करने, और इस प्रकारसे मनके रोक-नेको भी तप कहते हैं । एकान्तमें बैठकर इन्द्रि-योंका रोकना भी तप कहा गया है । शारीरिक राग द्वेषोंको रोकनेके लिये व्रत करने वा पञ्च धूनी

तापने इत्यादिको भी तप कहते हैं । तपके द्वारा दुष्ट संकल्पोंका बीज भस्म होजाता है।

तीसरा कनिष्ठ अधिकारी।

कनिष्ठ अधिकारी उसको समझना चाहिये, जिसके विचार और कर्म दोनों दुष्ट हों, उसको उचित है कि परमात्माको सर्वव्यापी समझकर दुष्ट कर्म करनेसे डरता रहै और इसी प्रकार परमात्माको अन्तर्यामी समझकर दुष्टविचारका सङ्कल्प भी मनमें न लावे। यदि निराकार परमात्माको ध्यानमें न लासके, तो जो वस्तु अत्यन्त प्रिय हो उस पर ध्यान जमाना चाहिये।

चौथा अत्यन्त कनिष्ठ अधिकारी।

अत्यन्त कनिष्ठ अधिकारी उसको समझना चाहिये जिसके संस्कार भी दुष्ट हों और कर्म भी; और उनमें इतना मोह हो गया हो वा स्वभाव पड़ गया हो कि उनको त्यागनेकी इच्छा वा साहस भी न हो सके, परन्तु योगाभ्यासकी इच्छावालेके लिये अष्टांग योग है।

अष्टांग योगका विस्तारपूर्वक वर्णन।

अष्टांग योगसे प्रयोजन आठ साधनोंसे है, जिनमेंसे एक एक ऐसा साधन है कि

जिस का भले प्रकार अभ्यास करनेसे दुष्ट अवस्था बदलजानी सम्भव है; वे आठ साधन ये हैं:—

१—यम । २—नियम । ३—आसन । ४—प्राणायाम । ५—प्रत्याहार । ६—धारणा । ७—ध्यान । ८—समाधि । इन आठों की संक्षेप व्याख्या इस रीतिसे है ।

१ यम—यम शब्दका अर्थ रोकना है । योग—परिभाषामें चालचलनके पांच नियमोंसे प्रयोजन हैः—

१ अहिंसा । २ सत्य । ३ अस्तेय । ४ ब्रह्मचर्य्य- ५ अपरिग्रह ।

अहिंसा—से यह प्रयोजन है कि किसी जीवको दुःख न दिया जावे, न दुःख देनेका मनमें विचार किया जावे । यह अहिंसा २१ प्रकारकी कही गई है और इसको काममें लानेके लिये सदैव बुद्धिको काममें लाना चाहिये—जैसे किसी हत्यारेको फाँसी दी जावे वा अपने बचाव वा देशके हितके लिये किसीका प्राण तक भी लिया जावे तो वह हिंसा नहीं है, अहिंसा अर्थात् दया आत्माका एक गुण है । जब सदैव उसको उत्तम

प्रकारसे वर्ता जाता है, तो किसी जीवसे दुःख नहीं पहुँच सक्ता क्यों कि मनुष्यकी विद्युत (बिजली) जो प्रति समय शरीरसे निकलती रहती है, उसमें मनुष्यके विचारोंका प्रभाव आजाता है। दयावान् मनुष्यकी विद्युत्, जहां तक उसका प्रभाव पहुंचे दूसरे जीवोंको भी दयावान् बना देगी—यही कारण है कि बहुधा ऐसी बातें सुनी जाती हैं कि कोई महात्मा सिंह वा सर्पके सन्मुख आये, परन्तु उनको कुछ हानि न पहुंची; कारण यह है कि उनकी विद्युत्के प्रभावसे वह पशु भी दयाके गुणसे गुणी होगया।

सत्य—से यह प्रयोजन है कि जैसा मनमें हो वैसा ही कहे, करै और माने। उत्तम सत्य यह है कि जैसा भविष्यत्में होनेवाला हो उसको भी विचार करके वैसा ही कहै। सत्यवादीका मन शुद्ध होकर, उसमें प्रकाश उत्पन्न होजाता है और जो कार्य वह करता है, वह उत्तम प्रकारसे सफलताके साथ अन्तको पहुंच जाता है।

अस्तेय—से प्रयोजन किसी वस्तुको विना उसके स्वामीकी आज्ञाके न लेना, बरन

लेनेका विचार भी न करना; ऐसी प्रतिज्ञासे उसको प्रत्येक वस्तु यथायोग्य प्राप्त होती रहती है।

ब्रह्मचर्य्य—से प्रयोजन वीर्य्यकी रक्षा पूर्वक विद्याका पढ़ना है। इसका फल यह है, कि शरीर आरोग्य और बुद्धि निर्मल होकर सदैव आनन्द प्राप्त होता रहता है।

अपरिग्रह—से यह प्रयोजन है, कि सामर्थ्य होनेपर भी आवश्यकतासे अधिक पदार्थ एकत्र न करना और जितेन्द्रिय रहना। इस साधनके बहुत काल तक ठीक ठीक करनेसे जन्मजन्मान्तरके वृत्तान्त ज्ञात होने लगते हैं।

२ नियम—यह भी पांच हैं १ शौच २ सन्तोष ३ तप ४ स्वाध्याय ५ ईश्वरप्रणिधान।

शौच—से प्रयोजन शुद्धतासे है जब नित्य प्रति शरीरको शुद्ध रखनेपर भी बाहर भीतर मलिनता भरी रहती है, तब औरोंके शरीरमें भी ऐसी ही दशा होनेका विश्वास होता है, और इस कारणसे दूसरोंके शरीरसे स्पर्श करनेको मन नहीं चाहता और अकेला रहना भला लगता है, कारण

कि मनमें एक मुख्य आनन्द और एकाग्रता प्राप्त होजाती है ।

सन्तोष—से यह प्रयोजन है कि जिस वस्तुकी आवश्यकता हो उसके लिये उचित उद्योग किया जावे, फिर भी यदि प्राप्त न हो, तो सन्तोष किया जावे। जो सुख, धन आदिसे मिलता है उससे बहुत अधिक सुख सन्तोषसे प्राप्त हो जाता है; इसी कारणसे बहुधा महात्माओंने संतोषको मोक्षके सुखके तुल्य कहा है जैसा—"सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।" एक कविका वाक्य है।

दोहा।

गो धन गज धन वाजि धन, और रत्न धन खान।
जब आयो संतोष धन, सब धन धूर—समान ॥२॥

तपकी व्याख्या पहिले कही गई है।

स्वाध्याय—से उन पुस्तकोंके पढ़ने वा नित्यपाठ करनेसे प्रयोजन है, कि जिनके द्वारा अपने स्वरूपका ज्ञान होकर सच्चा आनन्द प्राप्त होता है जो मनुष्य विद्यावाले होवें आत्म—विद्याकी पुस्तकें पढ़ें। और जो विद्यावान न हों वे परमात्माका नाम जपें। वास्तवमें मनुष्यके भीतर

सच्ची विद्याका सोता उपस्थित है, परन्तु एक तङ्ग और अन्धेरे जंगलमें होकर, उस अमृतके सोते पर पहुँचना होता है, यद्यपि विद्वान् पुरुष विद्याका दीपक लेकर उस मार्गमें सुखसे जासक्ता है, परन्तु यह भी सम्भव है कि दीपकके प्रकाशसे कई मनके लुभानेवाली वस्तुओंको देखनेके कारण सच्चे सोतेपर पहुंचना न होसके। अर्थात् विद्वान्का अनेक प्रकारसे आदर होता है इस लिये बहुधा विद्वान् उस सुख और मान बड़ाईके कीचड़में फँसजाते हैं, और नामका जप अंधेकी लाठीके अनुसार है कि खटखटाता हुआ धीरे धीरे चला जाता है। स्थानके पहुंचने पर दोनोंको एकसा आनन्द होता है।

योग-साधनोंमें स्वाध्याय एक उत्तम साधन समझा गया है; व्यासजी अपने भाष्य अर्थात् योगशास्त्रकी टीकामें लिखते हैं, कि इस साधन करनेवालेके पास देवता, सिद्ध और ऋषि लोग जो अन्तरिक्ष लोकमें विचरते हैं, दर्शन करने आते हैं; और उसके उत्तम कर्मों और प्रयोजनोंमें बहुधा सहायता करते हैं।

ईश्वरप्रणिधान—से प्रयोजन यह है, कि परमात्माको अपना स्वामी समझकर उसके अतिरिक्त और किसीपर भरोसा न करना, इस साधनसे परमात्मा प्रतिसमय सहायक रहता है और उसकी सहायताके कारण सारी इच्छायें पूर्ण होजाती हैं।

तीसरा साधन अष्टांगयोगका आसन है— पतञ्जलिजी कहते हैं, कि जिस बैठकसे सुख हो बैठना चाहिये, परन्तु जिस बैठकसे बहुत काल तक एक पुरुष बैठता है उसीमें सुख जान पड़ता है, मुख्यकरके सिद्धासनसे बैठना अतिलाभदायक है। जितना दृढ़ आसन होता है उतनी ही योगसाधनमें सुलभता होती है।

चौथा साधन प्राणायाम है—जिस प्रकार अग्निमें सुवर्ण डालनेसे उसका मैल मिट्टी कटजाते हैं उसी प्रकारसे प्राणायामके द्वारा इन्द्रियोंके दोष दूर होजाते हैं, मन स्थिर होजाता है और ज्ञानकी भी प्राप्ति होजाती है।

पांचवां साधन प्रत्याहार है—प्रत्याहारका शब्दार्थ उलटे भोजनका है। कानोंका भोजन

अर्थात् विषय सुनना और नेत्रोंका भोजन देखना है। इस साधारण भोजनसे हटाके कानोंको भीतरके शब्द सुननेमें और नेत्रोंको भीतरके प्रकाश देखनेमें लगाना चाहिये, इस प्रकार दोनों इन्द्रियां रुक जाती हैं । इन्द्रियोंके रुकनेसे मनभी रुकने लगता है।

६ धारणा—से यह प्रयोजन है कि हृदय, मस्तक इत्यादि स्थानमें चित्तको लगाना और उस स्थानमें ज्योति निरंजन अर्थात् प्रकाशरूप आत्माका अनुभव करना।

७—बारम्बार इस प्रकारसे करने और उस स्थानमें चित्तके स्थिर करनेको ध्यान कहते हैं।

८—जब भले प्रकार चित्त स्थिर होनेलगे और आनन्दमें मग्न होकर, उसमें रमजावे, उसको समाधि कहते हैं। इस अवस्थाको प्राप्त होकर अन्तःकरण शुद्ध होता है, सङ्कल्प मुख्य करके दुष्टसङ्कल्प—नष्ट होजाता है, बुद्धि सात्त्विक होजाती है और सच्चे ज्ञानके सुनने और समझनेका अधिकार होजाता है।

व्यायाम।

यद्यपि मनुष्यके शरीरमें अनेक रोगादिक भरे हैं जिनको जानना बहुत कठिन है, तथापि आरोग्यताके नियमोंपर चलनेसे बहुतसे रोगोंसे बचाव होजाता है और नीरोगता बनी रखनेके लिये व्यायाम बहुत ही आवश्यक है।

व्यायाम वह दिव्य साधन है जिसके प्रतिदिन करनेसे मनुष्य बहुत फुर्तीवाला नीरोग और प्रफुल्लित रहता है और पूर्ण आयु प्राप्त करता है आर यदि कोई रोग शरीरमें हो और वह रोग बहुत पुराना और असाध्य न होगया हो तो इस साधनको लगातार और साधारण रीतिसे करनेपर उस रोगका बल घटकर शनैः २ आरोग्यता होनी प्रारम्भ होजाती है और जब वह साधन करना आरम्भ करदिया जाय तो बहुधा कोई नया रोग नहीं होने पाता, कदाचित् कोई विशेष अमर्यादा न कीहो।

व्यायाम एक स्वाभाविक साधन है, बच्चे जब बहुत ही छोटे होते हैं तब अपने हाथ पांव इत्यादि शरीरके अवयवोंको सदा हिलाते रहते हैं

और जब थोड़ेसे बड़े होते हैं तो निरन्तर दौड़ने भागने उछलने कूदनेके खेलोंमें उद्योग करते रहते हैं और उन खलोंमें प्रसन्न होते हैं और इस रीतिसे उनका सारा शरीर भले प्रकार पोषण होता रहता है और वे सदा फुरती वाले और प्रफुल्लित रहते हैं और जो बच्चा अभाग्यवश उन खेलोंको नहीं खेलने पाता तो वह जन्म भर रोगी, उदास और दुर्बल रहता है। केवल मनुष्यको ही नहीं परन्तु दैवने प्राणिमात्रको व्यायाम करना सिखलाया है और वे करते रहते हैं; यहां तक कि जो पक्षी और पशु इत्यादि मनुष्यके फन्देमें फस जाते हैं वे बन्धनमें होनेपर भी अपना बहुत समय व्यायाममें लगाते हैं, जैसा कि चिड़ियाघर और अजायब घरमें यह प्रतिदिन दृष्टिगोचर होता है कि सिंह, रीछ, मैना और तोते इत्यादि पशु और पक्षी अपने अपने पिंजरोंमें बहुतसा समय चलने फिरने, फुदकने और फड़फड़ानेमें व्यतीत करते हैं। इन कारणोंसे मनुष्यको भी व्यायाम करना सर्वथा आवश्यक है।

व्यायामका मूल तत्त्व यह है कि शरीरको भलीभांति परिश्रम होकर किंचित् पसीना आ जावे । अत एव चलना, दौड़ना, छलांग मारना, कुश्ती लड़ना, वृक्षोंपर चढ़ना, जलमें तैरना, डण्ड पेलना, मुदगर हिलाना, बोझा उठाना वा दूर फेंकना, फरी, गदका, बनेठी इत्यादि लकड़ीके खेल, चाँदमारी करना, तीर लगाना, घोड़े इत्यादि की सवारी करना तथा कई प्रकारके अंगरेजी खेल क्रेकेट, फुटबौल, लान्टेनिस, इत्यादि सब व्यायाम अर्थात् शरीरके साधन गिने जाते हैं ।

इनमेंसे जिन साधनोंमें मन लगे और जो रहन-गत वा अपने व्यापार और वृत्तिके अनुकूल हों उन्हींको करना चाहिये।व्यायामको इच्छानुसार नहीं करना चाहिये, परन्तु इसको अपना मुख्य कर्त्तव्य समझकर प्रतिदिन करना उचित है। हां, इतना विचार अवश्य रहे कि जितने भिन्नभिन्न प्रकारके और शरीरको कम थकाने वाले साधन होंगे उतने ही अधिक लाभदायक होंगे ।

स्त्रियोंके साधन पुरुषोंके साधनोंसे और भी हलके होना चाहिये, और रजस्वलाधर्म वा गर्भके

समय तो उन हलके साधनोंमेंसे भी केवल चुने हुए थोड़ेसे साधन बहुत सावधानता और पथ्यके साथ करने चाहिये । ऐसी दशाओंमें न करनेसे इतनी हानि नहीं होती जितनी कि विना विचारे व्यायाम करनेमें होती है; और उसमें भयानक फल मिनेका डर है।व्यायामका उत्तम समय स्नानके पश्चात् और भोजनसे पहिले है, यदि कोई दूसरा समय नियत करनेकी आवश्यकता हो तो शङ्का-ओंसे रहित होकर और भोजनके पूरे पाचन होजानेके पश्चात् व्यायास करना उचित है। साधन करनेके समय लंगोट अवश्यही कसना चाहिये और उत्तम तो यह है कि शेष सब शरीर नग्न रहै अथवा बहुत थोड़े वस्त्र पहिने जावें ।

खुले मैदानमें जहां निर्मल और स्वच्छ हवा आती हो, व्यायाम करना बहुत लाभदायक है, परन्तु ठण्ढी वा प्रचराड पवनसे वचना उचित है। जैसे जैसे अवस्था ढलती जावे वैसेही वैसे व्यायामके साधन हलके और कमीके साथ होने चाहियें। मनु आदि ऋषियोंका वचन है कि हर एक मनुष्यको स्त्री हो वा पुरुष, राजा हो वा रङ्क,

व्यायाम नित्यप्रति अवश्य करना चाहिये । जो कोई उस रोगनाशक साधनको नहीं करते हैं उनको भोजन विषके समान लगता है । आदिमें बहुत थोड़ा व्यायाम करना चाहिये और शनैः शनैः अपने वल और पराक्रमके अनुसार वढ़ाना चाहिये । इस रीतिसे फुरती और चालाकी धीरे धीरे आती जाती है ।

यदि व्यायामके साधनोंको अपने आप करके दिखलाने और पूर्ण रीतिसे मुखसे वर्णन करनेसे ठीक ठीक और सगमतासे समझना सम्भव है तथापि अधि समझवाले और व्यायाम सीखने के अभिलाषी पुरुषोंके हितार्थ थोड़ेसे आवश्यक साधनोंका वर्णन लिखना उचित समझा गया ।

इन साधनोंको प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार करे, मुख्य परिमाण यहहै कि शरीरमें किंचित् पसीना भले आजावे, किन्तु विशेष थकावट कदापि नहीं होनी चाहिये, नहीं तो लाभके वदले हानि होनेका भय है ।

धार्मिक पुरुषों और विशेष करके साधुओंको तथा ब्रह्मचारियों कामके वेगको रोकनेकी आव-

श्यकता हो तो उनको छाती और बाहुओंके साधनोंके द्वारा शरीरको भले प्रकार थकाना चाहिये । इन साधनोंमें यह एक गुण है कि बिना किसी सहारे अर्थात् एपरैटस आदिके हर मनुष्य हर स्थानमें सुगमतासे कर सक्ता है । यदि बूढ़ा आदमी भी अपने शरीरके बलके अनुसार परिमाणके साथ व्यायामके साधन प्रारम्भ करेगा तो कुछ कालमें उसका शरीर भी तरुण पुरुषोंके समान फुरतीवाला होजाना सम्भव है । यद्यपि एक एक साधनकी संख्या सात सात रक्खी गई है, तथापि व्यायाम करनेवाले अपने बल, अवकाश और रहनगतिके अनुसार संख्या नियत कर सक्ते हैं ।

जिनको बैठनेका वा सोच विचारका काम विशेष करना पड़े उनको उचित है कि अपने कामके बीचमें अर्थात् हर दो दो तीन घंटोंके कामके पीछे दो मिनटके वास्ते भी छाती और बाहुओंके साधन अवश्य करलिया करें और हर साधनके बीचमें थोड़ेसे समयके लिये टहल लिया करें। साधन करनेके समय जहांतक होसके दम रोक-

नेका उपाय किया जावे और नहीं तो सांस मुख बन्द करके नाककी राह निकालना चाहिये। यदि ये साधन लगातार बहुत कालतक होतेरहैं तो सारा शरीर सुडौल होजाना सम्भव है।

१ पांव और टांगोंके साधन।

(क) पांवकी उंगलियोंके सहारे खड़े होकर और बदनको तना हुआ रखकर और बाहुओंको ऊंचा करके एक स्थानमें खड़े हुए कमसे कम सात बार उछलना चाहिये।

(ख) ऊपर लिखे अनुसार एक स्थानमें खड़े रहनेके बदले सात पांवड़े तक उछलते हुए चलकर उसीरीतिसे पीछा आना उचित है।

(ग) पांवकी उंगलियोंके बल खड़े होकर अकड़ते हुए सात पांवड़े चलना और पीछा आना।

(घ) सारे शरीरको तना हुआ रखकर और टांगोंको थोडासा झुकाकर पहिले दाहनी टांगको एक पांवड़ा दूर रखना और फिर बांई टांगको उसी स्थानमें लेजाना और दाहिनी टांगको अपने पहले स्थानपर ले आना, इसीरीतिसे उछल उछलकर सात बार

करना योग्य है । कहते हैं कि, महाराजा श्रीरामचंद्रजीके दूत अङ्गदने लङ्कापति रावणके दरीखानेमें अपनी टांग पृथ्वीपर टेककर कहाथा कि कोई दर्बारी योधा मेरी टांगको उठावे; बहुधा पुरुषोनें कोशिश की परन्तु टांग हिलभी न सकी । अङ्गद ऊपर लिखा साधन प्रतिदिन १०० बार किया करता था ।

(ङ) दोनों टांगोंको चौड़ा करके और हाथोंको ऊंचा करके तथा दोनोंको मिलाकर उछलना, फिर टांगोंको मिलाकर और हाथोंको चौड़ा करके उछलना, अर्थात् जब टांगें चौड़ी हों तो हाथ मिल जावें और जब हाथ फैलें तो टांगें मिल जावें सात बार यह क्रिया होती है ।

(च) एक टांगसे पन्द्रह पांवड़े चलना और दूसरी टांगसे उतनीही दूर उलटे पांव पीछे आना

(छ) बदनको तना हुआ रखकर और घुटनेपर हाथ रखकर सात बार ऊठक बैठक करना, यह साधन बहुधा बच्चोंके लिये अच्छा है ।

(ज) तने हुए खड़े होकर पहले एक टांगको पीछे दसरी टांगको सात बार झटका देना ।

२ नाभि और कमरके साधन ।

(क) दोनों हाथोंको कमरके दाँए बाँएं रखकर और सारे शरीरको तना हुआ रखके कमरसे ऊपर ऊपरके शरीरको एक ओर कमर तक झुकाना और फिर उसी रीतिसे दूसरी ओर सात वार ।

(ख) ऊपर लिखी हुई रीतिसे खड़े होकर कमरसे ऊपरके शरीरको आधे वृत्त वा चक्रके अनुसार जल्दी जल्दी सात बार घुमाना ।

(ग) शरीरको तनाहुआ रखकर और दोनों बाहुओंको ऊंचा करके और हाथोंको मिलाकर खड़ा होना, और फिर आगेको झुककर अपने पांवके अंगूठोंको छूना, परन्तु घुटने मुड़ने न चाहिये—सात बार इसी प्रकार करना चाहिये ।

(घ) एड़ियोंको ऊंचा रख कर उकडं बैठकर उछलते हुए सात पांवड़े सामनेकी ओर चलकर उसी भाँति उलटा पीछे आना ।

३ पेट और छातीके साधन ।

(क) खड़े होकर और शरीरको तना हुआ रखकर दोनों हाथोंको ऊंचा करना और छातीसे

ऊपरके शरीरको पहिले दाहिनी ओर फिर बांई ओरको सात वार झुकाना ।

(ख) ऊपर लिखी हुई रीतिके अनुसार सात वार पीछेकी ओर झुकना । इस साधनसे पेटका वढ़ना और तिल्लीकी वीमारी नहीं होती ।

(ग) सात वार डण्ड पेलना अर्थात् दोनों हाथोंको पृथ्वीपर धरकर और पांवोंको फैलाकर तथा चौपगा होकर एक वार दाहिनी ओर और दूसरी वार वाई ओर वल करके डण्ड करना चाहिये ।

(घ) भीतसे दो पांवड़े दूर होकर दाहिने और वाँयें हाथको वारी वारीसे भीत पर रखकर सारे शरीरको वलसे सात वार झुकाना ।

(ङ) अकड़े हुए खड़े होकर दोनों वाहुओंको थोड़ा सा फैलाए हुए रखना और मूठियां वन्द करके और कोहनियां मोड़कर दोनों हाथोंको छातीके पास लाना और झटकेके साथ दोनो वाहुओंको फैलाना, परन्तु कोहनियां मुड़ी हुई हों—सात वार इस साधनका करना कफ़ इत्यादि वीमारियोंको रोकनेवाला है ।

(च) वदनको तना हुआ रखकर और वाहुओंको लम्वा करके दोनों हथेलियोंको मिलाना

और फिर जहां तक होसके दोनों बाहुओंको सात बार फैलाना।

४ बाहुओंके साधन।

(क) सारे शरीरको सीधा रखकर खड़े होना और बाहुओंको तना हुआ रखकर कोहनीके पाससे नीचेकी ओर सात बार झुकादेना।

(ख) सीधे खड़े होकर और दोनों कोहनियों-को एक साथ मोड़कर हाथोंको कंधेके पास लाना और फिर झटका देकर दोनों हाथोंको एक साथ फैलाना और फिर एकदम सात बार पीछे लेजाना।

(ग) ऊपर लिखी हुई रीतिके अनुसार हा-थोंको झटका देकर ऊपरकी ओर एक साथ फैला कर फिर एकदम कन्धोंके पास सात बार पीछे लेजाना।

(घ) पहले एक हाथको बलसे पन्द्रह बार घुमाना और फिर दूसरेको।

(ङ) दोनों बाहुओंको एक साथ चक्करकी भाँति बहुत बलसे परन्तु यत्नके साथ तीस बार घुमाना।

५ गरदन कौर कण्ठके साधन ।

(क) खड़े हो और सारे शरीरको तना हुआ रखकर पहिले दाहिने कंधेकी ओर, फिर बाँये कंधेकी ओर सात बार गर्दनको झुकाना ।

(ख) खडे हो और सारे शरीरको तना हुआ रखकर, मस्तकको थोड़ासा नीचा करके गर्दनको पहिले दाहिनी ओर फिर बाईं ओर झुकाकर और फिर सिरको ऊँचा करके गर्दन तक पीछेको सात बार झुकाना चाहिये ।

६ मस्तकके साधन ।

(क) किसी दीवारकी ओर पीठ करकें दीवारसे दो पांव दूर खड़े होना और दोनों हाथोंको कमर पर रखकर जितना होसके सिरको नीचे अर्थात् दीवारकी ओर झुकाना और फिर हाथोंको कम- रसे उठाकर पीछेकी ओर दीवारसे लगाकर सिरको पीछे लटकाना और सारे वदनको साधकर हाथोंको दीवारसे अलग करके सिरको कई पल तक लटकाए हुए रखना—दो बार ऐसा करना ।

(ख) हाथोंको भूमिका सहारा और पांवोंको दीवारका सहारा देकर एक एक मिनट तक उलटे लटके रहना ।

७ सारे शरीरके साधन।

(क) किसी ऊंची वस्तु (खूंटी वा वृक्षकी शाखा इत्यादि)को पकड़कर आधे आधे मिनट तक चार बार लटकना।

(ख) पृथ्वीपर लेटकर शरीरको तना हुआ रखकर और दोनों टांगों और बाहुओंको जहां तक होसके चौड़ा फैलाकर एक मिनट तक लेटे रहना।

(ग) ऊपर लिखे अनुसार दोनों टांगोंको मिलाकर पांवोंकी ओर, और दोनों बाहुओंको मिलाकर सिरकी तरफ़ जितना लम्बा किया जासके सारे देहको एक मिनट तक लम्बा करना।

(घ) औंधा लेट कर और दोनों हाथोंको पीठ और कमरके पास लेजाकर मिलाना और फिर छातीके बल पहिले दाहिनी ओर, फिर बाईं ओर सात बार करवट लेना।

(ङ) शरीरको साधारण तौरे पर रखकर दो मिनट तक सीधे लेटे रहना।

ये सारे साधन आध घंटेमें और अभ्यास होजानेसे उससे भी कम समयमें होसकतेहैं। यदि इस थोड़ेसे समयको ऐसे आवश्यक और उपयोगी

काममें नहीं लगाया जायगा तो रोगका दुःख उठाने और रुपया खर्च करनेके उपरान्त उससे कितना ही अधिक समय देना पड़ेगा ।

शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध अन्न और वस्त्र का काममें लाना ।

धार्मिक पुरुषों और धर्मके खोजने वालोंको शारीरिक वेगोंका ठीक वर्ताव रखते हुए और शारीरिक व्यायामको नित्यप्राति करते हुए नीचे लिखी बातों पर भी पूरा ध्यान देना चाहिये ।

वायुका ठीक वर्ताव ।

मनुष्यके लिये सबसे विशेष आवश्यक वस्तु वायु है । वह सदा अपरिमाण साँसके द्वारा पी जाती है और इसी हेतु वायु सब स्थानोंमें अधिकतासे विद्यमान है । यदि थोड़े समय भी वायु न मिले वा विषैली वायु पीनेमें आवे तो आयु पूर्ण हो जाती है, जितनी निर्मल और सुथरी वायु खुले मैदान बाग, समुद्र और नदीके तटकी मिल सके उतना ही अधिक लाभ समझना चाहिये ।

साँसके द्वारा जो वायु पेटमें जाकर पीछे बाहर निकलती है वह मलिन होजाती है, छोटे और अंधेरे घरोंमें बहुधा मनुष्यके रहनेसे

उनके श्वासोंसे निकली हुई वायु आरोग्यताको हानि पहुंचाती है, इस हेतुसे जहां तक होसके हवादार और खुला हुआ घर होना चाहिये; और सोनेके कमरेमें बहुत मनुष्य वा सामान कदापि नहीं भरना चाहिये यदि किसी मुख्य अवसर पर किसी स्थानमें अधिक मनुष्य इकट्ठे होवें तो वहां पर सुगन्धी फूल और लोबान इत्यादिको काममें लाना चाहिये।

वृक्षोंसे रातके समय गन्दी वायु निकलती है और दिनमें निर्मल; इस कारणसे रातको वृक्षोंके नीचे अधिक समय तक कभी बैठना वा सोना न चाहिये।

वायुको शरीरमें लेजाने और बाहर निकालनेके लिये घ्राण इन्द्रिय अर्थात् नाकके दोनों छिद्र हैं; जिनमें यह शक्ति भी है कि वे अच्छी और बुरी हवाको पहिचान सकें। इस हेतु जहां बुरी हवा मालूम हो और यदि वहांसे झटपट निकल जाना हो तो सांसको रोकलेना उचित है, यदि विशेष समय तक रहना हो तो जहां तक होसके धीरे धीरे सांस लेना उचित है। ऐसे अवसर पर नाकको बन्द करके मुंहके

द्वारा सांस लेना बहुत ही अनुचित और आरोग्यताको हानिकारक है। जहां दुर्गन्ध आती हो वहां सदा वा बहुत देर तक कदापि नहीं रहना चाहिये, यदि रहनाही पड़े तो उस दुर्गन्धको दूर करनेके ढंग काममें लाना आवश्यक है, यदि दूर न होसके तो सुगन्धि और दुर्गन्धको दूर करने वाली वस्तुओंके द्वारा वायुको स्वच्छ करलेना आवश्यक है।

यदि प्रतिदिन किसी रमणीय स्थानमें कमसे कम पांच वार और विशेष अपनी इच्छा, बल और अवकाशके अनुसार धीरे धीरे श्वासको ऊपर खींचता जावे और थोड़े समयके लिये वहीं रोककर फिर उसी रीतिसे धीरे २ निकालता जावे और थोड़ी देर बाहर रोककर फिर ऊपरको खींचता जावे तो इसीतरह साधन करनेसे शरीरके बहुतसे भीतरी पर्दों और फेफड़ों इत्यादिमें वायुका प्रवेश होकर शरीरके मैलके निकल जानेमें सहायता मिलती है और सारे शरीरके बहुतसे भीतरी परदों और फेफड़ों इत्यादिमें वायुका प्रवेश होकर शरीरके मैलके निकल जानेमें सहायता मिलती है; और सारा शरीर स्वच्छ और पुष्पकी

भांति प्रफुल्लित हो जाता है परिश्रमका काम अधिक किया जासक्ता है और थकावट कम आसक्ती है। इस साधनके लगातार करनेसे थोड़े समयमें प्राण स्थिर होने लगता है और मन भी एकाग्र होकर प्रकाश और ईश्वर प्रेरणा होने लगती है।

जलका ठीक वर्ताव।

वायुसे दूसरे दरजेपर विशेष आवश्यक और काममें आनेवाली वस्तु जल है और इसी कारणसे परमेश्वरने तीन चतुर्थांशके लग भग पानी रक्खा है और वनस्पति और प्राणियोंके अवयवोंमें भी बहुत कुछ जल विद्यमान है मनुष्यके शरीरमें(१००) सौमेंसे (७०) सत्तर भाग पानी भरा हुआ है शरीरके कठोरसे कठोर विभाग दांत, बाल और नखों इत्यादिमें भी जल विद्यमान है। नस और पुट्ठोंकी नर्मी, लोहूकी तेजी, और दूसरे सारे रसोंको जल ही सहारा देता है। पुट्ठोंकी लचक और मोड़ इत्यादिमें भी पानीसे मदद मिलती है और चलते समय अस्थियोंमें रगड़ न लगनेका कारण भी पानी ही है।

पानीको आहार और दवा दोनों कहते हैं कारण यह है कि कोई खाना विना पानीके नहीं बनसक्ता है और न पच सक्ता है स्वयं उसमें पचाने इत्यादिकी मुख्य शक्ति विद्यमान है।

बिना आहार बहुत समय तक मनुष्य जी सक्ता है परंतु विना जल जीता नहीं रह-सक्ता। नैरोग्य पुरुषको दो सेर जलके लगभगकी प्रतिदिन आवश्यकता समझनी चाहिये, हां; गर्म ऋतुमें कुछ विशेष और सर्द ऋतुमें कुछ कम। इतना ही पानी पसीने थूक और मूत्रके द्वारा निकलता रहता है। नीचे लिखे अवसरोंपर पानी न पीना चाहिये।

(१) व्यायामके पश्चात्।

(२) खाली पेट।

(३) तर मेवा खानेके पीछे।

(४) खट्टी और चिकनी वस्तुओंके खानेके पीछे।

(५) ऊंघ आती हो तब।

(६) विना प्यास।

ग्रीष्म ऋतुमें ठण्ढा जल वा बर्फका जल वा शर्बत इत्यादि विना प्यास वा प्याससे अधिक पीना बहुत ही हानिकारक समझना चाहिये। इसी रीतिसे भोजनके समय हर ग्रासके साथ जल पीना वा वार बार अत्यन्त जल पीना भी आरोग्यताको हानि पहुँचाता है। श्रेष्ठ तो यह है कि भोजनके एक घंटे पीछे जल पिया जावे।

मोटे मनुष्यको अवश्य ही भोजनके समय जल न पीना चाहिये वा बहुत कम जल पीना चाहिये।

जहांतक होसके स्वच्छ और सद्य पानी पीना चाहिये मरघट और कबरोंके पासके कुओं और झरनोंका पानी वा जिस कुएँका पानी बहुत दिनोंसे न खींचा गया हो वा जिस पानीके रंग, गंध और स्वादमें अन्तर जान पड़े वह कदापि काममें नहीं लाना चाहिये।

जहां नदीका जल काममें लाया जाता हो वहां वस्तीसे ऊपरका पानी बहुधा अच्छा होताहै क्योंकि उसमें मल मूत्र इत्यादिके मिलनेकी शङ्का नहीं होसक्ती।

जहां तालाबका पानी पिया जाता हो वहां स्नान करना कपड़े धोना इत्यादि काम उसमें होना ही न चाहिये बाहर कामके लिये उचित दूरीपर न्यारे न्यारे घाट बने हुए होना ठीक है, जहां कुएका पानी पिया जाता हो वहां पनघट कुएके किनारेसे इतना ऊंचा और पक्का बना हुआ होना चाहिये कि कीड़े मकोड़े और वर्षा ऋतुका मैला पानी इत्यादि उसमें न जासके; और यदि ऐसे कुएं चारों ओर वृक्षोंके पत्ते इत्यादिका कूड़ा गिरने और सड़ने न पावें और ऐसे कुओंका पानी हरसाल वर्षा ऋतुके पीछे निकाल दिया जाया करें तो बहुत लाभ होगा।

पीनेके पानीको टपका कर स्वच्छ करना बहुत ही अच्छा है परंतु जिन बर्तनोंमें पानी टपकाया जावै वे बर्तन शुद्ध रहने चाहिये, यदि शुद्ध न रहेंगे तो उनमें मैल जमकर पानीके छोटेछोटे जीव उत्पन्न होजानेका भय है।

पीनेके पानीको अग्निपर औटा लेना वा लोहा गर्म करके उसमें बुझा लेना, फिटकरीके

पानीसे शोध लेना औरं कपड़ेसे छानना बहुत अच्छा है।

कई अवस्थाओंमें गर्म पानी पीना भी लाभदायक है। घूंट घूंट करके पीनेसे प्यास बुझती है और रुधिरके घूमनेमें तेजी आती है और आंतोंमें आहारका रस अच्छी तरह बनता है, पाचन शक्ति बढ़ जाती है और मूत्रको शुद्ध करके अच्छी तरह वाहर निकाल देता है अजीर्णमें भोजनके पहिले एक छटाक गर्म पानी पीना बहुत फलदायक है। सर्दी लगगई हो वा नींद न आंती हो, वा बहुत थकावट हो तो भी गर्म पानी पीना अच्छा है। लोहेके वर्तन वा मिट्टीके घडोंमें पानी रखना बहुत अच्छा है । वे वर्तन और स्थान जहां बर्तन रखे जाते हों ऐसे शुद्ध रहने चाहिये किं वहां कोई न जाने पावे और सदा उनको ढककर रखना चाहिये।

भगवद्गीताकी भूमिका ।

आजकल भगवद्गीतानुसार कर्तव्य करना लोगोंको पसन्द हुआ है जो कि उत्तम बात है, परन्तु भगवद्गीताका यथार्थ भावार्थ न जाननेसे सभी लोगोंको परमात्माकी उपासनाके सम्बन्धमें सरलता प्राप्त नहीं होती । इसीसे आनन्दानुभव नहीं होता है; अतएव सब लोगोंके हितार्थ फलाकाङ्क्षी शब्दका यथार्थ अर्थ लिखते हैं, क्योंकि यथार्थ अर्थ जानकर ही परमात्माकी उपासना करनेसे निश्चय आनन्द प्राप्त होगा । निर्वाण मुक्ति लाभ करनेको जो कामना की जाय उसको ही निष्काम कहते हैं, क्योंकि उस निर्वाण गुणातीत, स्थानका नाम ही निष्काम स्थान है, उस स्थानमें कुछ कामना नहीं है अर्थात् वह निर्विकल्प स्थान है । सुतरां फलाकाङ्क्षा कामनादि कहांसे आवेंगे ? और इस जगत्में स्वर्गसुख भोगादिके वास्ते जो कामना है उसे ही फलाकाङ्क्षी सकामादि कहते हैं, इसवास्ते निर्वाणमुक्ति कामनाको ही निष्काम कहते हैं । अतएव हे भक्तमहोदयगण, इसी प्रकार निर्वाणमुक्तिकी कामना

दृढ रूपमें मन स्थिर करके कर्म करनेसे निश्चय आनन्द प्राप्त होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। यही गीताका प्रकृतार्थ है।

श्रीमद्भगवद्गीताका प्रकृत भावार्थ।

जगद्गुरु परमात्मा श्रीकृष्ण अर्जुनको उपदेश करते हैं, हे अर्जुन! तुम (जीवात्मा) मेरे परम मित्र हो इसवास्ते तुमको कहते हैं कि इस भयावह अनित्य संसार सागरसे निष्कृति पाओ। अर्थात् रजोगुण दुःख, तमोगुण विषाद अथवा मोह, और सत्त्वगुण सुख है। अतएव रज और तमोगुण युक्त यह संसार है। यही जन्म और मृत्युका स्थान है। इसी जन्ममृत्युको नरक कहते हैं, हे अर्जुन! इस भयङ्कर नरकसे छूटनेके लिये तुम्हें बारबार कहते हैं कि इस दुःखमय संसारको छोड़कर परम सुखदायक सत्त्वगुणका आश्रय करो। क्योंकि उस सत्त्वगुणके मार्गसे गुणातीत अद्वैत परमात्माके संग योग है, जैसे कि समुद्र और नदीका। सुतरां सत्त्वगुणको छोड़के निष्काम, निष्क्रिय, गुणातीत, अद्वैत परमात्माके संग मिलनेके लिये

मनुष्य जीवात्माका दूसरा मार्ग नहीं है । दूसरा कोई उपाय भी नहीं है । अत एव हे अर्जुन, तुम इस अनित्य संसारको छोड़कर केवल सुखदायक सत्त्वगुणावलम्बी होकर निष्काम कर्म करके निष्कामी होजाओ । निष्काम, निष्क्रिय, निर्विकल्प, गुणातीत परमात्माके पास जानेके लिये जो काम कियाजाय उसको ही निष्काम कर्म कहते हैं, और जो मनुष्य निःस्वार्थ भावसे जगत्के मनुष्योंका हिताकाङ्क्षी होकर उनका हित करे उसका भी वह निष्काम कर्म है । अत एव हे अर्जुन ! तुम पहले जगत्के हितकाङ्क्षी होकर युद्ध करो । कदाचित् कहो कि दुर्योधनके संग युद्ध कर उसका वध करनेसे संसारका क्या हित होगा ? इसका उत्तर यह है कि राजाके देहमें शम, दम आदि ६ गुण रहते हैं, दोषका लेशमात्र भी उसमें नहीं रहना चाहिये । अत एव हे अर्जुन! राजा दुर्योधनमें ६ गुण तो दूर रहें एक गुण भी नहीं है, वरन जगत्के सब दोष उसमें परिपूर्ण हैं । (छल कपट, अविचार, आततायीपन आदि) सुतरां जैसा राजा वैसी ही प्रजा होती है । हे पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम

युद्धके लिये अग्रसर हो दुर्योधनका वध कर अपना राज्य ग्रहण करो, जिससे संसारका, हित-साधन होगा। अर्थात् सत्त्वगुणके धर्मोंका संसारमें प्रचार करो । हे पाठक महोदय गण, यह सारभाव हृदयमें रखकर गीताका मर्म जानसके तो कोई दोष नहीं और आध्यात्मिक भाव भी लिखते हैं—

हे अर्जुन! तुमको क्या कर्म करना चाहिये यह कहते हैं—प्रथम तुम्हारे देहस्थ जो रजोगुण (दुष्ट दुर्योधनादि) है उसको अपने शरीरस्थ तमोगुण क्रोध रूप गाण्डीव द्वारा वध करो। जब रजोगुण नहीं रहेगा तब क्रोध भी नहीं रहेगा। जैसा कि महाभारतमें लिखा है कि श्रीकृष्णपरमात्माके परम धाम प्राप्त होनेके पहिले उन्होंने अर्जुनकी दिव्य स्वदत्त शक्तिका हरण कर लिया था, पीछे अर्जुन उस गाण्डीव को नहीं उठा सके। यह बात सर्व साधारणको विदित है कि क्रोधके समय काम रूपी शत्रु नहीं रहसक्ता है। अतएव सर्वदा समस्त मनुष्योंको काम रिपु पर क्रोध करना कर्तव्य है। प्रसिद्ध है कि महायोगी देवाधिदेव शङ्करजीकी तपस्या भङ्ग करनेको जब त्रिभुवन विजयी 'काम-

देव तत्पर हुए तो तमोगुणके आविर्भावसे शङ्करजी ने मदनको भस्म करदिया । जो कि पुराणोंमें प्रसिद्ध है । जव रजोगुण शरीरको छोड़ देता है तव तमोगुण आपसे आप नष्ट हो जाता है क्योंकि रजोगुण ही क्रोधका मूल कारण है । प्रसिद्ध है कि कार्य नहोनेसे कारण भी नहीं होता । हे अर्जुन ! यह काम, क्रोध देहसे निकल जानेसे लोभादिक अन्य शत्रुभी अपना दोष नहीं दिखा सकते । क्योंकि इसी कामके वशमें ही अन्य क्रोधादि रिपु हैं । अत एव हे अर्जुन ! तुम्हारी उत्पत्ति तमोगुणसे है । रजोगुण जो दुर्योधन उसका क्रोध रूपी अस्त्रद्वारा शीघ्र वध करो । ऐसा करनेसे निर्विकार होकर तुम गुणातीत अ-द्वैत परमात्माको प्राप्त होजाओगे । हे पाठकगण! इस प्रकार गीताका भाव ग्रहण करके कर्म करने-से भी कोई हानि नहीं यह सत्य है ।

एक प्रकारसे फिर भी भगवद्गीताका भाव लिखते हैं । मनुष्य देहधारी श्रीकृष्णने परमात्मा-की उपासनासे किस प्रकार सिद्धिलाभ किया है यहभी श्रीमद्भगवद्गीता रूपमें परिणत होगया ।

मनुष्यदेहधारी श्रीकृष्ण पहले ही अपने देहस्थित रजोगुण (दुर्योधन) के वधकरनेके लिये अपने देहस्थित तमोगुण (अर्जुन) को * अनुरोध करतेहुए हेअर्जुन ! तुम राजोगुण दुर्योधनका वध करो । इसप्रकार चिन्ता करके मनमें क्रोध करके रजो गुणका वध किया है । पीछे क्रमसे समस्तारिपु जब देहसे नष्ट होगये तब निर्विकार होकर श्रीकृष्णने परमात्माकी उपासना करके सिद्धिलाभ किया । एवं त्रिकालज्ञ परमात्मास्वरूप होकर जगद्गुरु बन गये । पीछे सांसारिक समस्त मनुष्योंको ज्ञान देनेलगे । अर्थात् जिस प्रकार कार्य करके मनुष्य देहधारी श्रीकृष्णने अलौकिक शक्तिलाभ किया है, ठीक उसी प्रकार कर्म करनेको सांसारिक मनुष्योंको शिक्षा देने लगे । इसीका नाम श्रीमद्भगवद्गीता शास्त्र है । हे पाठक महोदय ! आप लोगोंसे इन्हीं तीन प्रकारसे भगवद्गीताका भावार्थ कहा,

* पञ्चभूत ही पञ्चपाण्डवहैं उनमें अर्जुन तेज, उसके बीचमें उसी (जीवात्मा) का वासस्थान है वही जीवात्मा ज्योतिस्वरूप है । अत एव तमोगुण तेज (अर्जुन) है उसके हाथमें क्रोध (गाण्डीव) अस्त्रस्वरूप है उसी द्वारा रजोगुण (दुर्योधन) का वधकरो ।

जिस प्रकारके भावमें आप लोगोंकी अभिरुचि हो उसका ग्रहण कर फललाभ कीजिये । किन्तु इन तीनों प्रकारके भावको एक ही समझिये। श्रीकृष्णने युवावस्थामें रजोगुणके कार्य विवाह करके पुत्रादिकी उत्पत्ति की है। पीछे तमोगुणके कार्य युद्धादि किये हैं। तदनन्तर तम और रजोगुणका परित्याग कर केवल सत्त्वगुणके कार्य द्वारा त्रिकालज्ञ होकर जगत्में समस्त मनुष्योंको मुक्तिका मार्ग बतादिया। इससे प्रतीत होताहै कि जगद्गुरु श्रीकृष्ण अपनी प्रीतिसे परमात्माकी उपासना करके त्रिकालज्ञ हुए हैं।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

गी० २ अ० ४५ श्लोक.

वेदोंमें तीन गुणोंका वर्णन है, हे अर्जुन! तुम तीन गुणोंसे रहित होओ । इच्छा, सुख, दुःख आदिको मनमें कुछभी स्थान मत दो। अपने मनको स्थिर करके आत्मचिन्तन करो। अर्थात् इस अस्थायी जगत्की चिन्ता छोड़कर अपने आत्माकी उन्नति करो ।

कर्मयोग।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥
गी० २ अ० ४६।

जितना कार्य कुआ, बावडी, नदी इत्यादिसे होता है उससे अधिक कार्य समुद्रसे होताहै। इसी प्रकार जितना आनन्द वेदोक्त कर्म करनेसे होता है उससे अधिक आनन्द निष्काम ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणको एक ब्रह्मविद्यासे प्राप्त होता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥२-४७

तुम्हारा केवल कर्म करनेका अधिकार है। कर्मोंके फलोंके साथ तुम्हारा कुछ सम्बन्ध नहीं; क्योंकि कर्मोंके फल अत्यन्त उत्तेजक होते हैं। हे अर्जुन! फलका अर्थ सुनो-इस संसारमें ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोकको त्रिजगत् कहते हैं, इस त्रिलोकके बीचमें विष्णुलोक, शिवलोकको स्वर्ग कहते हैं। इस स्वर्ग सुखके भोग करनेके लिये इच्छाको ही कर्मोंकी फलाका-

ङ्क्षा कहते हैं । अतएव हे अर्जुन ! इस मिथ्या अस्थायी त्रिजगत्की समस्त वासनाओंका परित्याग करके गुणातीत, अद्वैत, निर्वाण परमात्मा के स्थानमें जानेके लिये मनको स्थिर करके केवल कर्म ही करते रहो, तब तुम्हारा आत्मा पवित्र होकर ब्रह्म ज्ञानलाभ होगा, मूल बात यह है कि निवार्ण मुक्तिके लिये जो कामना है वही निष्काम कही जाती है । क्योंकि उस निर्गुणस्थान में जाने पर फिर कोई कामना नहीं रहजाती। सुतरां उस स्थानका नाम ही निष्काम स्थान है । इसीलिये निष्कामकर्म कहा जाता है । इसलिये निष्काम कर्म अर्थात् केवल निष्काम स्थानमें मन स्थिर करके कर्म करो ।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

गी० २ अ० ४८ ।

हे अर्जुन ! योगके समय दृढ चित्त होकर केवल गुणातीत मेरा (परमात्माका) ध्यान रखकर सिद्धि असिद्धि समान जानकर कर्म करो, उस सिद्धि असिद्धि समान ज्ञानका नाम ही योग है ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥

भ. गी. अ. २०५०

जो बुद्धियोगसे चित्तको सम करके कर्म करता है वह मनुष्य पाप पुण्यको इसी लोकमें छोड़ देता है। इस लिये हे अर्जुन! तू योगकी चेष्टा कर। क्योंकि कर्मोंके बीचमें योग अत्यन्त बलवान् है। यही योगक्रिया करते करते तुम्हारी संसारकी समस्त प्रवृत्ति निवृत्त होकर ब्रह्मज्ञान लाभ होगा।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

जिस प्रकार देहमें रहनेवाले देहीका शरीरसे बचपन जवानी और बुढ़ापा होता है, उसी प्रकार उसका एक देह छोड़कर दूसरा देह बदलता है; धीर पुरुष इन बातोंमें मोह नहीं करते, परन्तु जिस मनुष्यने जन्मसे मृत्युतक कोई पाप नहीं किया, पुण्यका काम चाहे किया कि नहीं किया, ऐसे मनुष्यका उसी समय जन्म होता है। और जिस मनुष्यने जन्मसे मृत्यु तक

बहुत या कम पाप किये हैं उसको मृत्युके पीछे शीघ्र जन्म नहीं होगा; क्योंकि पापका दण्ड पहले प्रेतयोनिमें प्रवेश करके अल्प वा बहुत भोगना पड़ेगा पीछे मनुष्य देह मिलेगा। इसवास्ते सब मनुष्योंको उसी समय जन्म नहीं होता कर्मोंके अनुसार ही भोग होता है।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

अपने धर्ममें मृत्यु होना भी अच्छा है परन्तु दूसरा धर्म कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये। अर्थात् मनुष्यके शरीरमें जो तीन गुण हैं उनमें सत्त्वगुणमें जीवात्माका वासस्थान है सुतरां सत्त्वगुणका ही धर्म हमारा स्वधर्म है रज और तमोगुणका धर्म ही परधर्म है। अतएव अर्जुनको मनुष्य कहके विश्वास करेंगे तब प्रकृतार्थ सिद्धि होगी। और तेजको जब अर्जुन माना जाय तो अर्जुनको केवल तमोगुणी समझना चाहिये, क्योंकि, तमोगुण ही उसका स्वधर्म है उसके द्वारा रजोगुण दुर्योधन (अर्जुन) का वध करना है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

सर्व धर्मोंका त्यागकर एकमात्र मेरी शरणमें आजा । मैं तुझे, सब पापोंसे छुटादूंगा, तू दुःख मत कर । अर्थात् संसारमें जितना धर्म और जितनी प्रवृत्ति हैं उन्हें छोड़कर केवल मेरी (गुणातीत परमात्माकी) धारणा ध्यानमें रहो इसमें ही तुम्हारी जन्म मरणसे मुक्ति होगी ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् १॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि संसाररूपी अश्वत्थवृक्षका मूल ऊपर है और शाखा नीचे हैं । जो इसको जानता है वही वेदका जाननेवाला है । अर्थात् जो मनुष्य आत्मदर्शी (जगत्के बीचमें चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रोंके ऊपर अतिशय आश्चर्य पदार्थोंके भी ऊपर गुणातीत परमात्माका समाधि द्वारा जिसने दर्शन किया है) है वही इस वेद

(ब्रह्म क्या पदार्थ और कहां है) को जानता है। इन आत्मदर्शी मनुष्योंको छोड़कर दूसरे वेद (ब्रह्मतत्त्व) को नहीं जानसकते। क्योंकि वेदार्थ और वेदके भावार्थको तीनों गुणोंके कार्योंमें लिप्त मनुष्योंकी बुद्धि शक्ति प्रायः लुप्त अवस्थामें रहनेसे नहीं जान सकती है। इस जगत्रूपी वृक्षका मूल देश गुणातीत परमात्मा है । इस वृक्षकी दो शाखाएं (रजोगुण, तमोगुण) हैं। इन दो शाखायुक्त वृक्षकी समस्त अवस्था जाननेके लिये पहले उस वृक्षके पत्ररूप वेद जाननेसे ही चेष्टा द्वारा क्रमशः शाखा, वृक्ष और उसकी जड़ सब जानी जासकती हैं ।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः । अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

गी. अ. १५

इस जगत्रूपी वृक्षकी जड़ ऊपरको है अर्थात् गुणातीत परमात्मा मूल है उससे अग्रभाग

पर्यन्त नीचे (पृथिवी) फैली हुई है । यह वृक्ष सत्त्वगुण है; इसके मूलदेशसे लगा हुआ नीचे अर्थात् वृक्षके पहले शिखरस्वरूप जिसको शास्त्रकारोंने आनन्दमय कोश, सुदर्शनचक्र अथवा कारण शरीर कहकर व्याख्या की है । जैसा दो कमलोंको डण्डियोंकी ओर जोड़ देनेसे गोल आकार दर्शन होता है ऐसा ही केवल नानारंग विशिष्ट ज्योतिके ही कमल देखे जाते हैं। उस संसाररूपी वृक्षका शिखर देश घेरकरके चक्रके समान घूमते हैं और एकांश आत्मा भी उसी कमलमें मिलकर अत्यानन्ददायक ज्योतिस्वरूप धारण करके रहा है। इस ज्योतिका दर्शन होता है। शास्त्रकारोंने इस स्थानको गोलोकधाम और सहस्रार कहकर व्याख्या की है । इस वृक्षके शिखर देशसे कुछ नीचे प्रलयस्थान अथवा शिव-स्थान कैलासधाम कहा है। इस वृक्ष (सत्त्वगुण)

की दो शाखा हैं (रजोगुण, तमोगुण) वाहर होकर उसी वृक्ष (सत्त्वगुण) के दोनों तरफ अर्थात् सत्त्वगुणको वृक्षके मध्यमें रखकर क्रमसे नीचे (पृथिवीमें उस वृक्षके सत्त्वगुणके साथ साथ फैलरहे हैं । अर्थात् पृथिवीके साथ तीन गुण एकदम मिश्रित हुए हैं । इन्हीं दो शाखाओंके बीचमें वृक्ष (सत्त्वगुण) के उत्तर दिशाकी शाखा (रजोगुण) में फूल, फल होते हैं । उस वृक्ष (सत्त्वगुण) द्वारा कछ समयके वास्ते स्थिति रखकर उस फलके पारिपक्व होनेके लिये उस वृक्षकी दक्षिण दिशाकी शाखा (तमोगुण) द्वारा पृथिवीमें पतित होता है । एवं उस फल (वीज) से फिर इस पृथिवीमें वृक्ष, फूल, फल होता है। इसी प्रकार उस रजोगुण और तमोगुणसे जीव-देहकी सृष्टि और प्रलय होता है । सत्त्वगुणसे थोड़े समयके वास्ते स्थिति होती है। अतएव ह

अर्जुन! इस भयावह जन्ममृत्यु (नरक) यन्त्रणासे मुक्ति पानेके लिये तुम्हें अपना प्रियमित्र जानकर कहते हैं कि रजोगुण, तमोगुण जो कि संसाररूपी वृक्षकी शाखा हैं उनको ज्ञानरूपी अस्त्र द्वारा छेदन (परित्याग) करके केवल उस वृक्षके (सत्त्वगुणके) आश्रयसे इस भवयन्त्रणासे मुक्त हो।

अर्जुन उवाच।

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश! पृथक्केशिनिषूदन॥

गी० अ० १८–श्लो० १

हे महाबाहो! हम सन्न्यास और त्यागका तत्त्व अलग अलग जाननेकी इच्छा करते हैं।

श्रीभगवानुवाच।

काम्यानां कर्मणांन्यास सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।

गी० अ० १८ श्लो० २

निर्वाणमुक्तिकी कामना करके कर्म करना चाहिये । अर्थात् न्यास (योग) क्रियाद्वारा जीवात्मा परमात्मामें विलय करनेसे ही शरीर परित्याग होता है सुतरां सोऽहं सन्न्यासी कहा जाता है । और उसी समाधियोग द्वारा देह परित्याग करके गुणातीत परमात्मामें लय करनेवाले को भी त्यागी अथवा योगी कहते हैं । मूल बात यह कि, सन्न्यासी, त्यागी, योगी एक ही बात है । जब जीवात्माका परमात्मामें लय होगा तब समस्त कर्मोंका लय स्वयं होजायगा । क्योंकि गुणातीत परमात्मा ही निष्काम है, इस दशामें फलाकाङ्क्षा कौन करेगा ? हे अर्जुन ! इन दो तीन प्रकारसे कहनेका तात्पर्य यही है कि जैसा 'एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति' परन्तु कार्योंके अनुसार उसी ब्रह्मके अनन्त नाम हैं । जैसे एक मनुष्य व्यापारके करनेसे व्यापारी कहलाता है, राजकार्य करनेसे मन्त्री कहलाता है इत्यादि एक ही मनुष्य

भिन्न भिन्न कर्म करनेसे भिन्न भिन्न उपाधि-
योंसे व्यवहृत होता है।

श्रीशंकराचार्य और चैतन्यदेवके मतका भेद।

चैतन्यदेव कहते हैं कि हम (जीवात्मा) अद्वैत परमात्माके सेवक होकर आनन्दमय कोशमें रहकर आनन्द करेंगे; जिस स्थानमें सङ्कल्प विकल्प नहीं है, सुखशान्ति भी नहीं है ऐसे स्थानमें जानेकी क्या आवश्यकता। अतएव जिस स्थानमें दुःख नहीं है, सर्वदा उस आनन्दमय स्थानमें जाना ही उचित है। यही चैतन्य देव का मत है।

शङ्कराचार्य कहते हैं कि जो स्थान अन्तमें नाशवान् है उस स्थानमें जानेकी क्या आवश्यकता है? जिस स्थानका कभी नाश नहो और स्वाधीन हो, किसी प्रकारकी चेष्टाभी नहीं हो, उस स्थानमें जाना चाहिये, भविष्यत्‌में उस निर्वाण स्थानमें जाना ही होगा। ऐसी दशामें मार्गमें कुछ काल

रहनेसें क्या लाभ है? इस लिये पहले ही निर्वाण स्थानसें जाना उचित है।

चैतन्यदेव कहतेहैं कि यदि सबको ही नीचेसे क्रमशः ऊपर जाना ही होगा तो जिस स्थानमें जो सुख हो उसका भोग कर पश्चात् निर्वाण स्थानमें जानेसे क्या हानि है? जितने समय तक महाप्रलय नहीं होगा उतने समय उस आनन्दमयं कोशका आनन्द छोड़नेमें क्या लाभ है।

शङ्कराचार्य कहते हैं जो सुख नाश होगा वह सुख दुःखस्वरूप ही है। अत एव दुःख-रूप सुखकी कोई आवश्यकता नहीं; जैसे मधु (शहद) खानेमें मीठा होता है जब वह शहद जिह्वाका परित्याग करदे तो उस मधुकी मिष्टता जिह्वामें नहीं रहती। फिर उस मधुके लिये चेष्टा करनी पड़ती है। अत एव उन सब चेष्टाओंकी क्या आवश्यकता है; विशेष

करके दासत्व पराधीनता है; पराधीनतामें सुख कहां है। हम जानते हैं कि मनुष्य तो इस बातको जानते ही हैं परन्तु उनके अतिरिक्त पशु पक्षी आदि भी इस बातको जानते हैं। जैसे एक पक्षी पींजरेमें बन्द रहे उसका पालक उसको अनेक प्रकारके आहार सञ्चय करके देता है किन्तु उस बन्धनके कारण उसको वह उत्तम आहार भी रुचिकर नहीं होता। अत एव निर्वाण होना ही आवश्यक है।

संसारके पण्डित महोदयगण, प्रत्येक परम-योगी परमात्मास्वरूप महापुरुषोंको भी दोषारोपण करते हैं, इसवास्ते सङ्क्षेपमें कुछ कहते हैं विना कहे रहा नहीं जाता, शङ्कराचार्य, बौद्धाचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्यदेव इत्यादि सबका ही धर्ममार्गमें लक्ष्य एक ही है। वेदवेदान्त, न्यायदर्शन, साङ्ख्य, उपनिषद, सभी-

का मूल मर्म एक ही है। भगवान् शाक्यसिंह कहते हैं कि आकाशसे ही इस जगतकी उत्पत्ति है इसमें सन्देह नहीं; क्यों कि सामवेदमें आदिमें ही जगत् सृष्टिके सम्बन्धमें आलोचना की हुई है कि परमात्माके एक निश्वास छोड़ने से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ है । इसका तात्पर्य यह है कि आकाशमें आदिमें ही वायुके व्यष्टिरूप परमाणु समष्टिरूपमें होकर वायुकी उत्पत्ति हुई है। अत एव उस वायुके मध्यमें मृत्तिकाके परमाणु बाष्परूपी जलके परमाणु, मृत्तिका, जल, वायु इन तीनों पदार्थोंके परमाणुओंके साथ अग्निके परमाणु मिश्रित हैं अग्निके परमाणु अलग नहीं हैं। परमात्माका कोई रूप नहीं है । आकाशमय परमात्मा है । अत एव वही आकाश ही मरमात्माका रूप है । उस आत्माके अंगमें पृथ्वी, जल, तेज, (अग्नि) वायु इन चारोंभूतोंके परमाणुरूप व्यष्टिरूपमें थे। वह सब व्यष्टिरूप परमाणु निश्वास अर्थात् वायु द्वारा समष्टि होकर यह जगत् उत्पन्न हुआ । किन्तु

मूल तत्त्व वही एक आत्मा है; उस आत्मासे ही यह जगत् एवं इसके अन्तर्गत समस्त पदार्थोंकी सृष्टि हुई । क्योंकि चेतन पदार्थ भिन्न जड़ पदार्थ कभी कर्ता नहीं हो सकता । सुतरां कर्ता न होनेसे इस जगतके कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकते । इस लिये बौद्ध देवने शून्य मार्गको ही धर्मस्थान कहा है, जैसे गृहस्थाश्रमी मनुष्य घटस्थापन करके आत्माकी पूजा करते हैं किन्तु उस घटकी पूजा कोई नहीं करते । जैसे मन्दिरकी पूजा कोई नहीं करते किन्तु उसमें प्रतिष्ठा किये हुए देवकी पूजा लोग करते हैं । परन्तु व्यवहारमें लोग कहते हैं कि हमारे घरमें घटस्थापन होगा । चलिये, मन्दिरमें चलें। इसी प्रकार आकाशमेंही आत्माका वासस्थान है; इसलिये आकाशको ही धर्मस्थान कहकर बौद्धोंने व्याख्या की है। आकाशमें प्रपञ्च जड़ जगत्का प्रतिबिम्ब नहीं है । इस जगत्के समस्त जीवोंकी रक्षा करनेके लिये शस्यादि

(गेहूं चावल इत्यादि) की सृष्टिके लिये वायु द्वारा बाष्परूपी जलसे ब्रह्मपदार्थ सूर्य नारायणका थोड़ी देरके लिये आवरण होता है । इससे मालुम पड़ता है कि शङ्कराचार्य और बौद्धाचार्यके यथार्थ तत्त्वमें कोई भेद नहीं है, केवल समझनेका फेर है ।

इति उपसंहारलेकर सप्तर्षिग्रन्थ सम्पूर्ण ।

सर्वात्मञ्जगदीश ! विश्वमखिलं त्वद्भ्रूवि-
लासात्क्षणादुत्पेदेऽस्ति विलेष्यते कथमिद-
ज्ञानातु जीवोऽल्पदृक्। वेदान्तादिविचित्र-
शास्त्ररचनास्पष्टीभवत्त्वद्वपुस्सार्वज्ञ्यादिवि-
चित्रबुद्धिविभवं सर्वेश्वरं मन्महे ॥ १ ॥

अहोऽतिचित्रं सुकृतञ्जनानां वर्वर्ति मित्रं
वसुधातलेस्मिन्। देहावसानेऽपि जनुष्षु
नानास्वेकोऽनुगच्छत्यनिवारितः सुहृत् ॥ २॥

अतस्सर्वैः सर्वप्रियतम इति प्राणसदृशः
सदा संसेव्योऽयं निरुपधि जनैधर्ममतिभिः।
तदर्थं ग्रन्थोऽयं व्यरचि मुनिवर्य्याभिगदितो
बुधैरेतत्तत्त्वं मनसि विनिधेयं मुहुरिति ॥ ३ ॥

श्यामाप्रसन्नइति देवपदाभिधानैः सांसा-
रिकं विषयजालमपास्य फल्गु। विश्वस्य
चोपकृतये निजरूपबोधे साहाय्यकृद्विजय-
तां कृतिरुत्तमेयम् ॥ ४ ॥

अस्त्युत्तरस्यां दिशि कूर्मराजप्रसिद्धिमान्गो-
त्रवरः क्षमायाम्। तदेकदेशाभिजनो द्वि-
जन्मा व्यधत्त शुद्धिं हरिदत्तशर्मा ॥ ५ ॥

विज्ञापन ।

हे गृहस्थाश्रमी महापुरुषो ! आप लोगोंको गृहस्थ धर्ममें रहकर भी सांसारिक झगड़ोंसे निवृत्त रहनेके लिये मेवाड़ उदयपुरनिवासी लाला अमृतलाल पुलिस सुपरिन्टेन्डन्टकृत मानुषिक सुधार और परिणामविचार इन दो पुस्तकोंको पढ़नेसे बड़ा लाभ होगा। । मूल्य भी बहुत कम है मानुषिक सुधार ॥) आ. परिणामविचार । = आना.

पता--लाला अमृतलाल,

सुपरिन्टेन्डन्ट पुलिस

जज अदालत खफीफा,

उदयपुर (मेवाड़)

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्वाटा लेन, स्वकीय " श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेसमें छापा और वामनदेव वन्द्योपाध्यायने जयपुरमें प्रकाशित किया।